संतबानी संग्रह

भाग पहिला

(साखी)

प्रकाशक एवं मुद्रक

...लविडियर प्रिंटिंग वर्क्स,

इलाहाबाद।

...ी बार] १९८० [मूल्य १२ रु० ५० पैसे

संतबानी संग्रह

भाग पहिला

(साखी)

जिसमें

२४ संतों, साधों और परम भक्तों की चुनी हुई साखियाँ उनके संक्षिप्त जीवन-चरित्र और टिप्पनी के साथ छापी गई हैं।

"न भूतो न भविष्यति"—सुधाकर

मुद्रक व प्रकाशक

बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स,

इलाहाबाद

सातवीं बार ५००]   [सन् १६८० ई०

प्रस्तावना

यह संग्रह प्राचीन संतों और महात्माओं की बानी का जिनमें से बहुतों के पंथ भारतवर्ष में प्रचलित हैं हमारे बैकुण्ठवासी मित्र, संतबानी के रसिक, ज्योतिष विद्या के सूर्य्य महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी के आग्रह से छः बरस हुए आरंभ किया गया था और थोड़े से महात्माओं की साखियाँ और पद जो उनके जीवन समय में चुने जा चुके थे उनको दिखलाये गये जिनको पढ़ कर वह गद्‌गद होकर बोले "न भूतो न भविष्यति" इस पर महंत गुरुप्रसाद जी जो पास बैठे थे बोले कि पंडित जी आपने इस नमूने के विषय में जो "न भूतो" कहा वह तो ठीक है पर "न भविष्यति" कैसे कहा, क्या आगे इससे बढ़कर संग्रह संतबानी का नहीं रचा जा सकता ? पंडित जी ने जवाब दिया कि हाँ यदि इन सन्तों से बढ़कर महात्मा औतार धरैं या यही संत फिर देह धारण कर इससे उत्तम बानी कथैं तो हो सकता है क्योंकि इन महात्माओं की बानी का हीर संग्रहकर्ता ने काढ़ कर धर दिया है।

पंडित जी के चोला छोड़ने पर इस संग्रह के पूरा करने का उत्साह भी सम्पादक का ढीला हो गया परन्तु अब कि संतबानी पुस्तक-माला के जितने ग्रंथ छापने को थे छप चुके। अपने मित्र की इच्छानुसार इस ग्रन्थ के पूरा करने की ओर ध्यान गया और यथा शक्ति ठीक करके वह अब छापा जाता है।

इस ग्रन्थ के दो भाग रक्खे गये हैं—पहिला साखी-संग्रह और दूसरा शब्द-संग्रह। पहिले भाग में कुछ ऐसे महात्मा जिनकी साखियाँ हमको मिलीं छापी गई हैं और उनका संक्षिप्त जीवन-चरित्र हर एक की बानी के सिरे पर दे दिया गया है। ऐसे महात्मा जिनके केवल पद मिले उनका संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त दूसरे भाग में इसी प्रकार से दिया गया है। सब मिलाकर ३४ महात्माओं की चुनी हुई बानी इस ग्रन्थ के दोनों भागों में छपी हैं जिनमें से २४ महात्मा वह हैं जिनके ग्रन्थ संतबानी पुस्तक-माला में छप चुके हैं—उनमें कुछ रोचक साखियाँ और पद बढ़ा दिये गये हैं जो पीछे से मिले। इनके सिवाय १० ऐसे महात्मा जिनकी बानी पहिले इस कारण से नहीं छपी कि या तो वह बहुत जगह छप चुकी थीं या उसके थोड़े ही पद मिले उनकी चुनी हुई साखी और शब्द भी इस संग्रह में छाप दिये गये हैं चाहे वह एक ही पद हो।

बानियाँ महात्माओं की उनके जीवन समय के क्रम में रक्खी गई हैं जिससे समय समय की परमार्थी उन्नति, विवेक विचार और भाषा की दशा दरस जाय। शब्दों की अक्षर-रचना और मात्रा प्रत्येक देश की बोली और लेख के अनुसार रक्खी गई है जिसमें मूल न बदले, सबको भाषा के एक ही साँचे में नहीं ढाला गया है—जैसे पंजाबी भाषा में "कुछ" को "कुज", "बैठ" को "बहु" कहते हैं; राजपूताना में "दाँव" को "डाँव", "दीक्षा" को "दष्या", "सुना" को "सूण्या", इत्यादि। भाषाओं के पदों, शब्दों के अर्थ; संकेतों तथा किस्सा-तलब बातों की कथा या भेद फुटनोट में जता दिये गये हैं।

अन्त में हम अपने उन सहायकों को हृदय से धन्यवाद देते हैं जिन्होंने नये पद या साखियाँ भेजकर या पदों और साखियों के क्रम से बैठालने और मूल या छापे की त्रुटियों के शोधने में इस काम में सहायता की। पंडित हरिनारायण जी पुरोहित बी० ए० (जयपुर राज के अकौन्टेन्ट-जेनरल) ने महात्मा सुन्दरदासजी की उत्तम साखियाँ, और ठाकुर गंगाबख्श सिंह (ज़मींदार मौज़ा टँडवा ज़िला फैज़ाबाद) ने पलटू साहिब और दूलनदासजी की बहुत सी साखियाँ और पद भेजे, और लाला गिरधारी लाल साहिब (रईस धौलपुर) ने कबीर साहिब की साखियों की तर्तीब और नई साखियों के भेजने में सहायता की। बाबा अचिन्त सरन साधू राधास्वामी मत (इलाहाबाद) ने मूल पाठ के शोधने और संकेतों का भेद लिखने में असली और पूरी मदद दी, और बाबू वैष्णवदास साहिब बी० ए० (अकौन्टेन्ट जेनरल रियासत इन्दौर) और बाबू तेजसिंहजी बी० ए० एल० एल० बी० (गत बख्शी खुमानसिंह साहिब सी० एस० आई० इन्दौरवाले के पोते) से पदों को क्रम से स्थापन करने और प्रूफ शोधने में सहायता मिली। राव बहादुर लाला श्यामसुन्दरलाल साहिब, बी० ए०, सी० आई० ई० (मुरार, ग्वालियर) जो इस परोपकार के काम में जीवन-चरित्र आदि का मसाला भेजने में मददगार रहे उनकी सहायता किसी से कम नहीं रही। इन सब महाशयों को हम पुनः पुनः धन्यवाद देते हैं।

अब सब लिपियाँ संतबानी की जो सम्पादक ने अनुमान बीस बरस के उद्योग से इकट्ठा करके यथाशक्ति उनकी त्रुटियों को ठीक किया था छप चुकीं सिवाय पलटू साहिब की थोड़ी सी मनोहर साखियों और बहुत से उत्तम पदों के जो उन महात्मा की बानी छापने के पीछे हमको मिले। यह पुराने पदों के साथ तीन भागों में इस क्रम से रक्खी गई हैं कि पहले भाग में केवल कुंडलियाँ, दूसरे भाग में रेख्ते, झूलने, अरिल छंद इत्यादि, और तीसरे भाग में साखियाँ और रागों के पद व भजन। अनेक त्रुटियाँ भी जो पुराने छापे में रह गई थीं नई लिपि से मिलान करके सुधार दी गई हैं।

इलाहाबाद :
जनवरी सन् १९७०

संपादक
संतबानी पुस्तक-माला

सूचीपत्र

—:०:—

———

कबीर साहिब

———:०:———

ीवन समय—१४५५ से १५७५ तक। जन्म और सतसंग स्थान—काशी।
आश्रम—गृहस्थ। गुरू—स्वामी रामानंद।

कबीर साहिब का एक विधवा ब्राह्मनी के उदर से स्वामी रामानन्द के आशिर्वाद से उत्पन्न होना कहा जाता है। माता ने लाजवश नौजन्मतुआ बालक को लहरतारा के तालाब में बहा दिया जिसके किनारे नूरअली जुलाहा सूत धोने आया और बालक को बहता देख कर निकाल लाया और पाला पोसा। इसी से कबीर जुलाहा कहलाये जिस की महिमा संसार में सूरज के समान प्रकाशमान है। यह प्रथम संत सतगुरु हुए। इन्होंने मूर्ति पूजा, देवी देव की उपासना, जाति भेद, और मद्य मांस के अहार का बड़े जोर से खण्डन किया है। इनकी ऊँची गति, प्रचंड भक्ति और बैराग असदृश थे और इनके अनुभवी उपदेश और शिक्षा ऐसी अनूठी है जिसकी हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सब ही कायल हैं और उनका सविस्तर जीवन-चरित्र और बहुत से बचन और उपदेश अंगरेजी व फारसी में छापे हैं। इन्होंने मगहर (जिला बस्ती) में जाकर अपना चोला छोड़ा जहाँ के मरने से पंडितों के मति के अनुसार गदहे का जन्म मिलता है। मगहर में इनके हिन्दू शिष्यों की बनाई हुई समाधि और मुसलमानों की बनाई हुई कबर दोनों अब तक मौजूद हैं। [सविस्तर जीवन-चरित्र कबीर शब्दावली भाग १ में छपा है]।

———

॥ गुरु देव ॥

गुरु को कीजै दंडवत, कोटि कोटि परनाम।
कीट न जानै भृङ्ग को, वह करि ले आप समान ॥ १ ॥
सतगुरु सम को है सगा, साधू सम को दात।
हरि समान को हितू है, हरिजन सम को जाति ॥ २ ॥
सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपकार।
लोचन अनँत उघारिया, अनँत दिखावनहार ॥ ३ ॥
गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, का के लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिंद दियो बताय ॥ ४ ॥
सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय।
सात समुँद की मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय ॥ ५ ॥
सत्त नाम के पटतरे, देवे को कछु नाहिं।
क्या लै गुरु संतोषिये, हवस रही मन माहिं ॥ ६ ॥

मन दीया तिन सब दिया, मन की लार[1] सरीर।
अब देवे को कछु नहीं, यों कह दास कबीर ॥ ७
तन मन दिया तो भल किया, सिर का जासी भार।
कबहूँ कहै कि मैं दिया, घनी सहैगा मार ॥ ८
गुरु कुम्हार सिष कुंभ[2] है, गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै[3] चोट ॥ ९ ॥
सतगुरु महल बनाइया, प्रेम गिलावा दीन्ह।
साहिब दरसन कारने, सबद झरोखा कीन्ह ॥१०॥
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति बिस्वास।
गुरु सेवा तें पाइये, सतगुरु[4] चरन निवास ॥११॥
कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥१२॥
गुरू बड़े गोबिंद तें, मन में देखु बिचार।
हरि सुमिरै सो वार है, गुरु सुमिरै सो पार ॥१३॥
गुरू मिला तब जानिये, मिटै मोह तन ताप।
हर्ष सोक ब्यापै नहीं, तब गुरु आपै आप ॥१४॥
जल परमानै माछरी, कुल परभावै बुद्धि।
जा को जैसा गुरु मिलै, ता को तैसी सुद्धि ॥१५॥
यह तन बिष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलैं, तौ भी सस्ता जान ॥१६॥
बहे बहाये जात थे, लोक बेद के साथ।
पैंड़ा में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ ॥१७॥
ऐसा कोई ना मिला, सत्त नाम का मीत।
तन मन सौंपै मिरग ज्यों, सुनै बधिक का गीत ॥१८॥

---

(१) साथ। (२) घड़ा। (३) लगाता है। (४) सत्य पुरुष।

ऐसे तो सतगुरु मिले, जिन से रहिये लागि।
सब ही जग सीतल भया, जब मिटी आपनी आगि ॥१९॥
सतगुरु हम से रीझि कै, एक कहा परसंग।
बरसा बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग ॥२०॥
सतगुरु साचा सूरमा, नख सिख मारा पूर।
बाहर घाव न दीसई, भीतर चकनाचूर ॥२१॥
सतगुरु मारा तान कर, सबद सुरंगी बान।
मेरा मारा फिर जिये, तो हाथ न गहूँ कमान ॥२२॥
सतगुरु मारा प्रेम से, रही कटारी टूट।
वैसी अनी न सालही, जैसी सालै मूठ[1] ॥२३॥
कोटिन चंदा ऊगवें, सूरज कोटि हजार।
सतगुरु मिलिया बाहरे, दीसत घोर अँधार ॥२४॥
जीव अधम औ कुटिल है, कबहूँ नहिं पतियाय।
ता को औगुन मेटि कै, सतगुरु होत सहाय ॥२५॥
जन कबीर बंदन करै, केहि बिधि कीजे सेव।
वार पार की गम नहीं, नमो नमो गुरुदेव ॥२६॥

॥ झूठे गुरु ॥

जा का गुरु है आँधरा, चेला निपट निरंध[2]।
अंधे अंधा ठेलिया, दोऊ कूप परंत ॥ १ ॥
पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख।
स्वाँग जती का पहिरि कै, घर घर माँगै भीख ॥ २ ॥
गुरू गुरू में भेद है, गुरू गुरू में भाव।
सोई गुरु नित बंदिये, (जो) सबद बतावै दाव ॥ ३ ॥

---

(१) अनी अर्थात् नोक कटारी की जो टूट कर हृदय में रह गई वह इतना कष्ट नहीं देती है जितना मूठ का बाहर रह जाना, यानी प्रेम कटारी समूची क्यों न घुस गई। (२) जिसकी आँखें बिल्कुल बंद हैं।

कनफूका गुरु हद्द का, बेहद का गुरु और।
बेहद का गुरु जब मिलै, (तब) लहै ठिकाना ठौर ॥ ४ ॥
बंधे को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय।
कर सेवा निरबंध की, पल में लेत छुड़ाय ॥ ५ ॥
झूठे गुरु के पच्छ को, तजत न कीजै बार।
द्वार न पावै सबद का, भटकै बारंबार ॥ ६ ॥

॥ नाम ॥

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह ॥ १ ॥
आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार[1]।
कहै कबीर निज नाम बिनु, बूड़ि मुआ संसार ॥ २ ॥
कोटि नाम संसार में, ता तें मुक्ति न होय।
आदि नाम जो गुप्त जप, बूझै बिरला कोय ॥ ३ ॥
राम राम सब कोइ कहै, नाम न चीन्है कोय।
नाम चीन्हि सतगुरु मिलै, नाम कहावै सोय ॥ ४ ॥
जो जन होइहै जौहरी, रतन लेहि बिलगाय।
सोहं सोहं जपि मुआ, मिथ्या जनम गँवाय ॥ ५ ॥
नाम रतन धन मुज्झ में, खान खुली घट माहिं।
सेंतमेंत ही देत हौं, गाहक कोई नाहिं ॥ ६ ॥
ज्ञान दीप परकास करि, भीतर भवन जराय।
तहाँ सुमिर सतनाम को, सहज समाधि लगाय ॥ ७ ॥
एक नाम को जानि करि, दूजा देइ बहाय।
तीरथ ब्रत जप तप नहीं, सतगुरु चरन समाय ॥ ८ ॥
अस अवसर नहिं पाइहो, धरो नाम कढ़िहार[2]।
भवसागर तरि जाव तब, पलक न लागै बार ॥ ९ ॥

---

(१) शाखा। (२) निकालने वाला।

आसा तो इक नाम की, दूजी आस निरास।
पानी माहीं घर करै, तौहू मरै पियास ॥१०॥
नाम जो रत्ती एक है, पाप जो रती हजार।
आध रती घट संचरै, जारि करै सब छार ॥११॥
सत्त नाम निज औषधी, सतगुरु दई बताय।
औषधि खाय रुपथ[1] रहि, ता की बेदन जाय ॥१२॥
सुपनहुँ में बर्राइ के, धोखेहु निकरै नाम।
वा के पग की पैंतरी[2], मेरे तन को चाम ॥१३॥
जा की गाँठी नाम है, ता के है सब सिद्धि।
कर जोरे ठाढ़ी सबै, अष्ट सिद्धि नव निद्धि ॥१४॥
नाम जपत कुष्ठी भला, चुइ चुइ परै जु चाम।
कंचन देह केहि काम की, जा मुख नाहीं नाम ॥१५॥
सुख के माथे सिलि परै, (जो) नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय ॥१६॥
लेने को सतनाम है, देने को अन दान।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान ॥१७॥
जैसा माया मन रम्यो, तैसो नान रमाय।
तारा मंडल बेधि कै, तब अमरापुर जाय ॥१८॥
नाम पीव का छोड़ि कै, करै आन का जाप।
बेस्या केरा पूत ज्यों, कहै कौन को बाप ॥१९॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं, धूआँ ह्वै ह्वै जाय ॥२०॥
लूटि सकै तो लूटि ले, सत्त नाम की लूटि।
पाछे फिरि पछिताहुगे, प्रान जाहिं जब छूटि ॥२१॥

---

(१) परहेजी खाना। (२) जूती।

॥ सुमिरन ॥

सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुख जाय।
कह कबीर सुमिरन किये, साईं माहिं समाय ॥ १ ॥
दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय ॥ २ ॥
सुमिरन की सुधि यों करै, ज्यों गागर पनिहार।
हालै डोलै सुरति में, कहै कबीर बिचार ॥ ३ ॥
सुमिरन की सुधि यों करै, जैसे दाम कँगाल।
कह कबीर बिसरै नहीं, पल पल लेइ सम्हाल ॥ ४ ॥
सुमिरन सुरति लगाइ के, मुख तें कछू न बोल।
बाहर के पट देइ के, अंतर के पट खोल ॥ ५ ॥
माला फेरत मन खुसी, ता तें कछू न होय।
मन माला के फेरते, घट उँजियारी होय ॥ ६ ॥
कबीर माला मनहिं की, और संसारी भेख।
माला फेरे हरि मिलैं, तो गले रहट के देख ॥ ७ ॥
माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥ ८ ॥
तन थिर मन थिर बचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय ॥ ९ ॥
सहजेही धुनि होत है, हर दम घट के माहिं।
सुरत सबद मेला भया, मुख की हाजत नाहिं ॥१०॥
जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय।
सुरत समानी सबद में, ताहि काल नहिं खाय ॥११॥
जप तप संजम साधना, सब सुमिरन के माहिं।
कबीर जानै भक्त जन, सुमिरन सम कछु नाहिं ॥१२॥
कबीर निर्भय नाम जपु, जब लगि दीवा बाति।
तेल घटै बाती बुझै, तब सोवो दिन राति ॥१३॥

जिवना थोरा ही भला, जो सत सुमिरन होय ।
लाख बरस का जीवना, लेखे धरै न कोय ॥१४॥
सुमिरन का हल जोतिये, बीजा नाम जमाय ।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, तहू न निस्फल जाय ॥१५॥
देखा देखी सब कहै, भोर भये हरि नाम ।
अर्ध रात कोइ जन कहै, खानाजाद गुलाम ॥१६॥
कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई लखाय ।
उलटि ताहि सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय ॥१७॥

॥ अनहद शब्द ॥

गगन मँडल के बीच में, जहाँ सोहंगम डोरि ।
सबद अनाहद होत है, सुरत लगी तहँ मोरि ॥ १ ॥
कबीर कमल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर ।
रैन अँधेरी मिटि गई, बाजै अनहद तूर ॥ २ ॥
निझर झरै अनहद बजै, तब उपजै ब्रह्म गियान ।
अविगति अंतर प्रगटही, लगा प्रेम निज ध्यान ॥ ३ ॥
सुन्न मँडल में घर किया, बाजै सबद रसाल ।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीन दयाल ॥ ४ ॥
कबीर सबद सरीर में, बिन गुन[1] बाजै ताँत ।
बाहर भीतर रमि रहा, ता तें छूटी भ्रांत ॥ ५ ॥
सबद सबद बहु अंतरा, सार सबद चित्त देय ।
जा सबदै साहिब मिलै, सोई सबद गहि लेय ॥ ६ ॥
सबद सबद सब कोइ कहै, वो तो सबद बिदेह ।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि लेह ॥ ७ ॥
एक सबद सुखरास है, एक सबद दुखरास ।
एक सबद बंधन कटै, एक सबद गल फाँस ॥ ८ ॥

(१) रस्सी ।

सबद गुरू को कीजिये, बहुतक गुरू लबार।
अपने अपने लोभ को, ठौर ठौर बटमार ॥ ९ ॥
सबद बिना स्रुति आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावै सबद का, फिरि फिरि भटका खाय ॥१०॥
सोरठा--ज्ञानी सुनहु सँदेस, सब बिबेकी पेखिया।
कह्यौ मुक्तिपुर देस, तीनि लोक के बाहिरे ॥११॥
मन तहँ गगन समाय, धुनि सुनि सुनि कै मगन है।
नहिं आवै नहिं जाय, सुन्न सबद थिति पावही ॥१२॥

॥ चितावनी ॥

कबीर गर्ब न कीजिये, काल गहे कर केस।
ना जानौं कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस ॥ १ ॥
हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखि करि, भये कबीर उदास ॥ २ ॥
झूठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥ ३ ॥
कुसल कुसल ही पूछते, जग में रहा न कोय।
जरा[1] मुई ना भय मुआ, कुसल कहाँ से होय ॥ ४ ॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जाति।
देखत ही छिपि जायगी, ज्यों तारा परभाति ॥ ५ ॥
रात गँवाई सोय करि, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥ ६ ॥
लूटि सकै तो लूटि ले, सत्त नाम भंडार।
काल कंठ तें पकरिहै, रोकै दसो दुवार ॥ ७ ॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, जब चिड़ियाँ चुग गइँ खेत ॥ ८ ॥

---

(1) वृद्ध अवस्था।

आज कहै मैं काल्ह भजूँगा, काल्ह कहै फिर काल्ह।
आज काल्ह के करत ही, औसर जासी चाल ॥ ६ ॥
काल्ह करै सो आज करु, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब ॥१०॥
पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल्ह का साज।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज ॥११॥
कबीर नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन[1] यह गली, बहुरि न देखौ आय ॥१२॥
पाँचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग।
सो मंदिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग ॥१३॥
कबीर थोड़ा जीवना, माँडै बहुत मँडान।
सबहि उभा[2] में लगि रहा, राव रंक सुल्तान ॥१४॥
कहा गुनावै मेड़ियाँ, लंबी भीति उसारि[3]।
घर तो साढ़े तीन हथ, घना तो पौने चार[4] ॥१५॥
कबीर गर्ब न कीजिये, ऊँचा देखि अवास।
काल्ह परों भुइँ लेटना, ऊपर जमसी घास ॥१६॥
पक्की खेती देखि करि, गर्बै कहा किसान।
अजहूँ झोला बहुत है, घर आवै तब जान ॥१७॥
माटी कहै कुम्हार को, तूँ क्या रूँदै मोहिं।
इक दिन ऐसा होइगा, मैं रूँदूँगी तोहिं ॥१८॥
कहा कियो हम आइ के, कहा करैंगे जाइ।
इत के भये न उत्त के, चाले मूल गँवाइ ॥१६॥

---

(१) शहर। (२) चिंता। (३) ओसारा। (४) जीव का घर जो शरीर है उसका नाप साढ़े तीन हाथ होता है या बहुत लम्बा हुआ तो पौने चार हाथ।

यह तन काँचा कुंभ[1] है, लिये फिरै था साथ।
टपका[2] लागा फूटिया, कछु नहिं आया हाथ ॥२०॥
कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव।
कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाव ॥२१॥
मोर तोर की जेवरी[3], बटि बाँधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधै, जा के नाम अधार ॥२२॥
आये हैं सो जाइँगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंघासन चढ़ि चले, इक बाँधे जात जँजीर ॥२३॥
कबीर यह तन जात है, सकै तो राखु बहोरि।
खाली हाथों वे गये, जिनके लाख करोरि ॥२४॥
आस पास जोधा खड़े, सभी बजावैं गाल।
मंझ महल से लै चला, ऐसा काल कराल ॥२५॥
हाँकों परबत फाटते, समुँदर घूँट भराय।
ते मुनिवर धरती गले, क्या कोइ गर्ब कराय ॥२६॥
या दुनिया में आइ के, छाड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होय सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ ॥२७॥
तन सराय मन पाहरू[4], मनसा उतरी आय।
कोउ काहू का है नहीं, (सब) देखा ठोंक बजाय ॥२८॥
मैं मैं बड़ी बलाय है, सको तो निकसो भागि।
कहै कबीर कब लगि रहै, रुई लपेटी आगि ॥२६॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय ॥३०॥
कुल करनी के कारने, हंसा गया बिगोय।
तब क्या कुल की लाज है, चार पाँव का होय ॥३१॥

---

(१) मिट्टी का बड़ा। (२) ठोकर। (३) रस्सी। (४) पहरेदार।

मैं भँवरा तोहिं बरजिया, बन बन बास न लेय ।
अटकैगा कहुँ बेल से, तड़पि तड़पि जिय देय ॥३२॥
ऐसी गति संसार की, ज्यों गाड़र की ठाट[1] ।
एक पड़ा जेहि गाड़[2] में, सबै जाहिं तेहि बाट ॥३३॥
तू मत जानै बावरे, मेरा है सब कोय ।
पिंड प्रान से बँधि रहा, सो अपना नहिं होय ॥३४॥
एक सीस का मानवा, करता बहुतक हीस[3] ।
लंकापति रावन गया, बीस भुजा दस सीस ॥३५॥
इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं ।
घर की नारी[4] को कहै, तन की नारी[5] जाहिं ॥३६॥
काल चक्र चक्की चलै, सदा दिवस अरु रात ।
सगुन अगुन दुइ पाटला, ता में जीव पिसात ॥३७॥
आसै पासै जो फिरै, निपट पिसावै सोय ।
कीला से लागा रहै, ता को बिघन न होय[6] ॥३८॥
नाम भजो तो अब भजो, बहुरि भजोगे कब्ब ।
हरियर हरियर रूखड़े, ईंधन हो गये सब्ब ॥३९॥
माली आवत देखि कै, कलियाँ करैं पुकारि ।
फूली फूली चुनि लिये, काल्हि हमारी बारि[7] ॥४०॥
हम जानैं थे खाहिंगे, बहुत जमीं बहु माल ।
ज्यों का त्योंही रहि गया, पकरि लै गया काल ॥४१॥
दव[8] की दाही लाकड़ी, ठाढ़ी करै पुकार ।
अब जो जावँ लुहार घर, डाहै दूजी बार ॥४२॥

---

(१) भेड़ का झुंड । (२) गड़हा । (३) हिर्स । (४) स्त्री । (५) नाड़ी । (६) मुंह से सभी कहते हैं कि काल की चक्की चल रही है पर सच्चे मन से कोई नहीं मानता नहीं तो कीला जिसकी सत्ता से वह घूमती है अर्थात् भगवंत को ऐसा दृढ़ कर पकड़ै कि आवागवन से रहित हो जाय । (७) पारी । (८) अगिन ।

मेरा बीर[1] लुहारिया, तू मत जारै मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं जारौंगी तोहिं ॥४३॥
मरती बिरिया पुन[2] करै, जीवत बहुत कठोर।
कहै कबीर क्यों पाइये, काढ़े खाँड़ा चोर[3] ॥४४॥
जा को रहना उत्त घर, सो क्यों लोड़ै[4] इत्त।
जैसे परघर पाहुना, रहै उठाये चित्त ॥४५॥
कबीर नाव है झाँझरी, कूरा[5] खेवनहार।
हलके हलके तिरि गये, बूड़े जिन सिर भार ॥४६॥
जो ऊगै सो अत्थवै[6], फूलै सो कुम्हिलाय।
जो चुनिये सो ढहि परै, जामै[7] सो मरि जाय ॥४७॥
मनुष जन्म दुर्लभ अहै, होय न बारंबार।
तरवर से पत्ता झरै, बहुरि न लागै डार ॥४८॥
साथी हमरे चलि गये, हम भी चालनहार।
कागद में बाकी रही, ता तें लागी बार ॥४९॥
खुलि खेलो संसार में, बाँधि न सक्कै कोय।
घाट जगाती क्या करै, सिर पर पोट[8] न होय ॥५०॥

॥ भक्ती ॥

गुरु भक्ती अति कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
बिना साच पहुँचै नहीं, महा कठिन ब्यौहार ॥ १ ॥
कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास।
मन मनसा माँजै नहीं, होन चहत है दास ॥ २ ॥
हरष बड़ाई देखि करि, भक्ति करै संसार।
जब देखै कछु हीनता, औगुन धरै गँवार ॥ ३ ॥

---

(१) भाई। (२) पुन्य दान। (३) जब चोर तलवार निकाले खड़ा है उसको कैसे पकड़ सकोगे। (४) चाहै या चाह करै। (५) कुटिल। (६) अस्त होय; डूबै। (७) जनमै। (८) कर्म का बोझ।

भक्ति भेष बहु अंतरा, जैसे धरनि अकास।
भक्त लीन गुरु चरन में, भेष जगत की आस ॥ ४ ॥
देखा देखी भक्ति कौ, कबहुँ न चढ़सी रंग।
बिपति पड़े यों छाड़सी, ज्यो केंचुली भुजंग ॥ ५ ॥
भक्ति भाव भादों नदी, सबै चलीं घहराय।
सरिता सोई सराहिये, जो जेठ मास ठहराय ॥ ६ ॥
भक्ति दुवारा साँकरा, राई दसवें भाव[1]।
मन ऐरावत[2] ह्वै रहा, कैसे होइ समाव ॥ ७ ॥
भक्ति निसेनी[3] मुक्ति की, संत चढ़े सब धाय।
जिन जिन मन आलस किया, जनम जनम पछिताय ॥ ८ ॥
सत्तनाम हल जोतिया, सुमिरन बीज जमाय।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, भक्ति बीज नहिं जाय ॥ ९ ॥
जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निस्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिलै, निःकामी निज देव ॥१०॥

॥ लव ॥

लव लागी तब जानिये, छूटि कभूँ नहिं जाय।
जीवत लव लागी रहै, मूए तहँहिं समाय ॥ १ ॥
जैसी लव पहिले लगी, तैसी निबहै ओर।
अपनी देह की को गिनै, तारै पुरुष करोर ॥ २ ॥
लागी लागी क्या करै, लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये, जो वार पार ह्वै जाय ॥ ३ ॥
लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अँगार में, जाहि चकोर चबाय ॥ ४ ॥
सोओं तो सुपने मिलै, जागौं तो मन माहिं।
लोचन[4] राता सुधि हरी, बिछुरत कबहूँ नाहिं ॥ ५ ॥

(१) राई के दसवें भाग जैसा झीना दरवाज़ा भक्ति का है। (२) इन्द्र का हाथी। (३) सीढ़ी। (४) आँख।

ज्यों तिरिया पीहर[1] बसै, सुरति रहै पिय माहिं।
ऐसे जन जग में रहैं, हरि को भूलैं नाहिं॥ ६॥

॥ बिरह ॥

बिरहिनि देइ सँदेसरा, सुनो हमारे पीव।
जल बिन मच्छी क्यों जिये, पानी में का जीव॥ १॥
बिरह तेज तन में तपै, अंग सबै अकुलाय।
घट सूना जिव पीव में, मौत ढूँढ़ि फिरि जाय॥ २॥
बिरह जलंती देखि करि, साईं आये धाय।
प्रेम बूँद से छिरकि कै, जलती लई बुझाय॥ ३॥
अँखियाँ तो झाईं परी, पंथ निहार निहार।
जिभ्या तो छाला परा, नाम पुकार पुकार॥ ४॥
नैनन तो झरि लाइया, रहट बहै निसु बास।
पपिहा ज्यों पिउ पिउ रटै, पिया मिलन की आस॥ ५॥
बिरह बड़ो बैरी भयो, हिरदा धरै न धीर।
सुरत-सनेही ना मिलै, तब लगि मिटै न पीर॥ ६॥
बिरहिनि ऊभी पंथ सिर, पंथिनि पूछै धाय[2]।
एक सबद कहु पीव का, कब रे मिलैंगे आय॥ ७॥
बहुत दिनन की जोवती, रटत तुम्हारो नाम।
जिव तरसै तुव मिलन को, मन नाहीं बिस्राम॥ ८॥
बिरह भुवंगम[3] तन डसा, मंत्र न लागै कोय।
नाम बियोगी ना जिये, जिये तो बाउर[4] होय॥ ९॥
बिरह भुवंगम पैठि कै, किया कलेजे घाव।
बिरही अंग न मोड़िहै, ज्यों भावै त्यों खाव॥१०॥
कबीर सुंदरि यों कहै, सुनिये कंत सुजान।
बेग मिलौ तुम आइ कै, नहीं तो तजिहौं प्रान॥११॥

(१) मायके। (२) बिरहिन रास्ते में खड़ी होकर बटोही से पूछती है। (३) साँप।
(४) बौड़हा।

कै बिरहिनि को मीच दे, कै आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझना, मो पै सहा न जाय ॥१२॥
बिरह कमंडल कर लिये, बैरागी दोउ नैन।
माँगैं बरस मधूकरी, छके रहैं दिन रैन ॥१३॥
येहि तन का दिवला करौं, बाती मेलौं जीव।
लोहू सींचौं तेल ज्यों, कब मुख देखौं पीव ॥१४॥
कबीर हँसना दूर करु, रोने से करु चीत।
बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत ॥१५॥
हँसौं तो दुख ना बीसरै, रोवौं बल घटि जाय।
मनहीं माहीं बिसुरना, ज्यों घुन काठहिं खाय ॥१६॥
कीड़े काठ जो खाइया, खात किनहुँ नहिं दीठ।
छाल उपार[1] जो देखिया, भीतर जमिया चीठ[2] ॥१७॥
हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिउ मिलैं, तो कौन दुहागिनि होय ॥१८॥
सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै औ रोवै ॥१९॥
नाम बियोगी बिकल तन, ताहि न चीन्है कोय।
तम्बोली का पान ज्यों, दिन दिन पीला होय ॥२०॥
माँस गया पिंजर रहा, ताकन लागे काग।
साहिब अजहुँ न आइया, मंद हमारे भाग ॥२१॥
बिरहा सेती मति अड़ै, रे मन मोर सुजान।
हाड़ माँस सब खात है, जीवत करै मसान ॥२२॥
आय सकौं नहिं तोहिं पै, सकौं न तुज्झ बुलाय।
जियरा यों लय होयगा, बिरह तपाय तपाय ॥२३॥

(१) उखाड़ कर। (२) लकड़ी का चूर या बुरादा।

हवस करै पिय मिलन की, औ सुख चाहै अंग।
पीड़ सहे बिनु पदमिनी, पूत न लेत उचंग[1] ॥२४॥
बिरहिनि ओदी लाकड़ी, सपचे औ धुँधुआय।
छूटि पड़ौं या बिरह से, जो सिगरो जरि जाय ॥२५॥
तन मन जोबन यों जला, बिरह अगिनि से लागि।
मिर्तक पीड़ा जान ही, जानैगी क्या आगि ॥२६॥
बिरह जलंती मैं फिरौं, मो बिरहिनि को दुक्ख।
छाँह न बैठौं डरपती, मत जलि उट्ठै रुक्ख[2] ॥२७॥
चूड़ी पटकौं पलँग से, चोली लावौं आगि।
जा कारन यह तन धरा, ना सूती गल लागि ॥२८॥
रक्त माँस सब भखि गया, नेक न कीन्ही कानि[3]।
अब बिरहा कूकर भया, लागा हाड़ चबान ॥२९॥
बिरहा भयो बिछावना, ओढ़न बिपति बिजोग।
दुख सिरहाने पायतन[4], कौन बना संजोग ॥३०॥
बिरहिनि बिरह जगाइया, पैठि ढँढोरै छार[5]।
मत कोइ कोइला ऊबरै, जारै दूजी बार ॥३१॥
अंक भरी भरि भेंटिये, मन नहिं बाँधै धीर।
कह कबीर ते क्या मिले, जब लगि दोय सरीर ॥३२॥
जो जन बिरही नाम के, झीना पिंजर तासु।
नैन न आवै नींदड़ी, अंग न जामै माँसु ॥३३॥
कबीर चिनगी बिरह की, मो तन पड़ी उड़ाय।
तन जरि धरती हू जरी, अंबर जरिया जाय ॥३४॥
हिरदे भीतर दव[6] बलै, धुवाँ न परगट होय।
जा के लागी सो लखै, की जिन लाई सोय ॥३५॥

---

(१) उत्साह से। (२) पेड़। (३) लिहाज़, मुरौवत। (४) पैताने। (५) राख को ढँढोलता है। (६) आग।

पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक चहुटै[1] नहीं, धूवाँ ह्वै ह्वै जाय ॥३६॥
बिरह प्रबल दल साजि के, घेर लियो मोहिं आय।
नहिं मारै छाड़ै नहीं, तलफि तलफि जिय जाय ॥३७॥
जो जन बिरही नाम के, तिन की गति है येह।
देंही से उद्यम करैं, सुमिरन करैं बिदेह ॥३८॥
बिरहा बिरहा मत कहो, बिरहा है सुल्तान।
जा घट बिरह न संचरै, सो घट जान मसान ॥३९॥
सो दिन कैसा होयगा, गुरू गहैंगे बाँह।
अपना करि बैठावहीं, चरन कँवल की छाँहि ॥४०॥
बिरहिनि थी तो क्यों रही, जरी न पिउ के साथ।
रहि रहि मूढ़ गहेलरी, अब क्यों मींजै हाथ ॥४१॥
सब रग ताँत रबाब[2] तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुनि सकै, कै साँई कै चित्त ॥४२॥
आगि लगी आकास में, झरि झरि परै अँगार।
कबीर जरि कंचन भया, काँच भया संसार ॥४३॥
कबीर बैद बुलाइया, पकरि के देखी बाँहि।
बैद न बेदन जानई, करक करेजे माहिं ॥४४॥
जाहु बैद घर आपने, तेरा किया न होय।
जिन या बेदन निर्मई[3], भला करैगा सोय ॥४५॥

॥ प्रेम ॥

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुइँ धरै, तब पैठै घर माहिं ॥ १ ॥
सीस उतारै भुइँ धरै, ता पर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव ॥ २ ॥

(१) चोट लगाना। (२) एक बाजा जो मुँह से बजाया जाता है। (४) उपजाई, पैदा की।

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय॥ ३॥
प्रेम पियाला भरि पिया, राचि रहा गुरु ज्ञान।
दिया नगारा सबद का, काल खड़े मैदान॥ ४॥
छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट[1] प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय॥ ५॥
आया प्रेम कहाँ गया, देखा था सब कोय।
छिन रोवै छिन में हँसै, सो तो प्रेम न होय॥ ६॥
प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय॥ ७॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं॥ ८॥
जा घट प्रेम न संचरै[2], सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, साँस लेत बिन प्रान॥ ९॥
प्रेम बिकंता मैं सुना, माथा साटे[3] हाट[4]।
बूझत बिलँब न कीजिये, तत्छिन दीजै काट॥१०॥
प्रेम बिना धीरज नहीं, बिरह बिना बैराग।
सतगुरु बिन जावै नहीं, मन मनसा का दाग॥११॥
प्रेम तो ऐसा कीजिये, जैसे चंद चकोर।
घींच[5] टूटि भुइँ माँ गिरै, चितवै वाही ओर॥१२॥
अधिक सनेही माछरी, दूजा अल्प सनेह।
जबहीं जल तें बीछुरै, तबहीं त्यागै देंह॥१३॥
प्रीति जो लागी घुल गई, पैठि गई मन माहिं।
रोम रोम पिउ पिउ करै, मुख की सरधा नाहिं॥१४॥

(१) जो कभी घटता नहीं। (२) बसै। (३) बदले। (४) बाजार। (५) गर्दन।

जो जागत सो सुपन में, ज्यों घट भीतर स्वास।
जो जन जा को भावता, सो जन ता के पास ॥१५॥

सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुटै सौ बार।
दुर्जन कूम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार[1] ॥१६॥

जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं, तहाँ न पुधि ब्यौहार।
प्रेम मगन जब मन भया, तब कौन गिने तिथि बार ॥१७॥

प्रेम पाँवरी पहिरि कै, धीरज काजर देइ।
सील सिंदूर भराइ कै, यों पिय का सुख लेइ ॥१८॥

प्रेम छिपाया ना छिपै, जा घट परघट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं, तो नैन देत हैं रोय ॥१६॥

प्रेम भाव इक चाहिये, भेष अनेक बनाय।
भावै घर में बास करु, भावै बन में जाय ॥२०॥

पोया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड़्ग, देखा सुना न कान ॥२१॥

प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥२२॥

कबीर प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥२३॥

कबीर भाठी प्रेम की, बहुतक बैठे आय।
सिर सौंपै सो पीवसी, नातर[2] पिया न जाय ॥२४॥

सबै रसायन मैं किया, प्रेम समान न कोय।
रति इक तन में संचरै, सब तन कंचन होय ॥२५॥

साधू सीपि समुद्र के, सतगुरु स्वाँती बुंद।
तृषा गई इक बुंद से, क्या लै करूँ समुंद ॥२६॥

(१) सज्जन और साधुजन सोने के समान हैं कि सौ बार भी टूटने पर जुट जावे हैं पर दुष्ट जन मट्टी के घड़े के सदृश हैं जो एक ही धक्का लगने से चिर्रा जाता है।
(२) नहीं तो।

जैसी प्रीति कुटुम्ब से, तैसिहु गुरु से होय।
कहै कबीर वा दास का, पला न पकड़ै कोय ॥२७॥
नैनों की करि कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाय ॥२८॥
पिय का मारग कठिन है, खाँड़ा हो जैसा।
नाचन निकसी बापुरी, फिर घूँघट कैसा ॥२९॥
पिय का मारग सुगम है, तेरा चलन अबेड़ा।
नाच न जानै बापुरी, कहै आँगना टेढ़ा ॥३०॥
जल में बसै कमोदिनी, चंदा बसै अकास।
जो है जा का भावता, सो ताही के पास ॥३१॥
पासा पकड़ा प्रेम का, सारा[1] किया सरीर।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥३२॥
खेल जो मँडा खेलाड़ि से, आनँद बढ़ा अघाय।
अब पासा काहू परौ, प्रेम बँधा जुग जाय ॥३३॥
प्रीतम को पतियाँ लिखूँ, जो कहुँ होय बिदेस।
तन में मन में नैन में, ता को कहा सँदेस ॥३४॥

॥ बिश्वास ॥

कबीर क्या मैं चिंतहूँ, मम चिंते क्या होय।
मेरी चिंता हरि करै, चिंता मोहिं न कोय ॥ १ ॥
चिंता न करु अचिंत रहु, देनहार समरत्थ।
पसू पखेरू जीव जंत, तिन के गाँठि न हत्थ ॥ २ ॥
अंडा पालै काछुई, बिन थन राखै पोख[2]।
यों करता सब को करै, पालै तीनिउ लोक ॥ ३ ॥
साईं इतना दीजिये, जा में कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥ ४ ॥

---

(१) गोट। (२) परवरिश।

॥ दुबिधा ॥

दुबिधा जा के मन बसै, दयावंत जिव नाहिं।
कबीर त्यागो ताहि को, भूलि देहु जनि बाहिं॥ १ ॥
हिरदे माहीं आरसी, मुख देखा नहिं जाय।
मुख तो तबही देखई, दुबिधा देइ बहाय॥ २ ॥
चींटी चावल लै चली, बिच में मिलि गइ दार[1]।
कह कबीर दोउ ना मिलै, इक लै दूजी डार॥ ३ ॥
संसा खाया सकल जग, संसा किनहुँ न खद्ध।
जो बेधा गुरु अच्छरा, तिन संसा चुनि चुनि खद्ध॥ ४ ॥

॥ सामर्थ ॥

साहिब से सब होत है, बंदे ते कछु नाहिं।
राई तें पर्बत करै, पर्बत राई नाइँ[2]॥ १ ॥
साहिब सा समरथ नहीं, गरुआ गहिर गँभीर।
औगुन छाड़ै गुन गहै, छिनक उतारै तीर॥ २ ॥
ना कछु किया ना करि सका, ना करने जोग सरीर।
जो किया साहिब किया, ता तें भया कबीर॥ ३ ॥
जिस नहिं कोई तिसहिं तूँ, जिस तूँ तिस सब होय।
दरगह तेरी साइयाँ, मेटि न सक्कै कोय॥ ४ ॥
इत कूआ उत बावड़ी, इत उत थाह अथाहि।
दुहूँ दिसा फनि[3] फन कढ़े, समरथ पार लगाहि॥ ५ ॥
घट समुद्र लखि ना परै, उट्ठै लहरि अपार।
दिल दरिया समरथ बिना, कौन उतारै पार॥ ६ ॥
साईं तुझ से बाहिरा, कौड़ी नाहिं बिकाय।
जा के सिर पर तूँ धनी, लाखों मोल कराय॥ ७ ॥
बालक रूपी साइयाँ, खेलै सब घट माहिं।
जो चाहै सो करत है, भय काहू का नाहिं॥ ८ ॥

---

(१) दाल। (२) तुल्य। (३) साँप।

॥ बेहद ॥

हद में पीव न पाइये, बेहद में भरपूर ।
हद बेहद की गम लखै, ता से पीव हजूर ॥ १ ॥
हद में बैठा कथत है, बेहद की गम नाहिं ।
बेहद की गम होयगी, तब कछु कथना काहिं ॥ २ ॥
हद में रहै सो मानवी, बेहद रहै सो साध ।
हद बेहद दोऊ तजै, ता का मता अगाध ॥ ३ ॥

॥ निज करता का निर्णय ॥

अछै पुरुष इक पेड़ है, निरंजन वा की डार ।
तिरदेवा साखा भये, पात भया संसार ॥ १ ॥
नाद बिंदु तें अगम अगोचर, पाँच तत्त तें न्यार ।
तीन गुनन तें भिन्न है, पुरुष अलक्ख अपार ॥ २ ॥
संपुट[1] माहिं समाइया, सो साहिब नहिं होय ।
सकल माँड में रमि रहा, मेरा साहिब सोय ॥ ३ ॥
जा के मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप अरूप ।
पुहुप बास तें पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप ॥ ४ ॥
समुँद पाटि लंका गयो, सीता को भरतार ।
ताहि अगस्त अचै[2] गयो, इन में को करतार ॥ ५ ॥

॥ विनय ॥

बिनवत हौं कर जोरि कै, सुनिये कृपा निधान ।
साधु सँगति सुख दीजिये, दया गरीबी दान ॥ १ ॥
जो अब के सतगुरु मिलैं, सब दुख आखौं रोय ।
चरनों ऊपर सीस धरि, कहौं जो कहना होय ॥ २ ॥
सुरति करौ मेरे साइयाँ, हम हैं भवजल माहिं ।
आपे ही बहि जायँगे, जो नहिं पकरौ बाहें ॥ ३ ॥

---

(१) डिबिया शालग्राम के रखने की । (२) कथा है कि अगस्त मुनि ने समुद्र का पानी सब पी लिया था ।

क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहिं।
तुम देखत औगुन करौं, कैसे भावौं तोहिं ॥ ४ ॥
मैं अपराधी जनम का, नखसिख भरा बिकार।
तुम दाता दुख-भंजना, मेरी करो सम्हार ॥ ५ ॥
अवगुन मेरे बाप जी, बकसु गरीब-निवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता को लाज ॥ ६ ॥
औगुन किये तो बहु किये, करत न मानी हार।
भावै बंदा बकसिये, भावै गरदन मार ॥ ७ ॥
साइँ केरा बहुत गुन, औगुन कोई नाहिं।
जो दिल खोजों आपना, सब औगुन मुझ माहिं ॥ ८ ॥
अंतरजामी एक तुम, आतम एक अधार।
जो तुम छोड़ौ हाथ तें, कौन उतारै पार ॥ ९ ॥
साहिब तुमहिं दयाल हौ, तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को, सूझै और न ठौर ॥१०॥
साइँ तेरा कछु नहीं, मेरा होय अकाज।
बिरद[1] तुम्हारे नाम की, सरन परे की लाज ॥११॥
मुझ में औगुन तुज्झ गुन, तुझ गुन औगुन मुज्झ।
जो मैं बिसरौं तुज्झ को, तू मत बिसरै मुज्झ ॥१२॥
मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन में ढंग।
ना जानौं उस पीव से, क्योंकर रहसी रंग ॥१३॥
तुम तो समरथ साइयाँ, दृढ़ कर पकरो बाहें।
धुरही लै पहुँचाइयो, जनि छाड़ो मग माहिं ॥१४॥
भक्ति दान मोहिं दीजिये, गुरु देवन के देव।
और नहीं कछु चाहिये, निसि दिन तेरी सेव ॥१५॥

---

(१) महिमा प्रण।

॥ गुरुमुख ॥

गुरुमुख गुरु चितवत रहै, जैसे मनी भुवंग ।
कह कबीर बिसरै नहीं, यह गुरुमुख को अंग ॥ १ ॥
गुरुमुख गुरु चितवत रहै, जैसे साह दिवान ।
और कबीर न देखता, है वाही को ध्यान ॥ २ ॥
पहिले दाता सिष भया, जिन तन मन अरपा सीस ।
पाछे दाता गुरु भये, जिन नाम दिया बकसीस ॥ ३ ॥

॥ मनमुख ॥

फल कारन सेवा करै, तजै न मन से काम ।
कह कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ॥ १ ॥
सतगुरु सबद उलंघि कै, जो सेवक कहिं जाय ।
जहाँ जाय तहँ काल है, कह कबीर समुझाय ॥ २ ॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर ।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागैगा मोर ॥ ३ ॥
तेरा तुझ में कुछ नहीं, जो कछु है सो मोर ।
मेरा मुझको सौंपते, जी धड़कैगा तोर ॥ ४ ॥

॥ निगुरा ॥

जो निगुरा सुमिरन करै, दिन में सौ सौ बार ।
नगर नायका सत करै, जरै कौन की लार[1] ॥ १ ॥
जो कामिनि परदे रहै, सुनै न गुरुमुख बात ।
होइ जगत में कूकरी, फिरै उघारे गात ॥ २ ॥

॥ गुरुशिष्य खोज ॥

ऐसा कोऊ ना मिला, हम को दे उपदेस ।
भवसागर में बूड़ता, कर गहि काढ़ै केस ॥ १ ॥
ऐसा कोई ना मिला, जा से कहूँ दुख रोय ।
जा से कहिये भेद की, सो फिर बैरी होय ॥ २ ॥

---

(१) सहर की कसबी अगर सती होने का ढोंग रचै तो किस मर्द के शाथ जलै ।

हम देखत जग जात है, जग देखत हम जांहिं।
ऐसा कोई ना मिला, पकड़ि छुड़ावै बांहिं॥ ३॥
सारा सूरा बहु मिले, घायल मिला न कोय।
घायल को घायल मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय॥ ४॥
सिष तो ऐसा चाहिये गुरु को सब कछु देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिष से कछु नहिं लेय॥ ५॥
सर्पहिं दूध पिलाइये, सोई बिष ह्वै जाय।
ऐसा कोई ना मिला, आपेही बिष खाय[1]॥ ६॥
पुहुपन केरी बास ज्यों, ब्यापे रहा सब ठांहिं।
बाहर कबहुँ न पाइये, पावै संतों माहिं॥ ७॥
जिन ढूँढ़ा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठि।
मैं बपुरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठि॥ ८॥

॥ साध ॥

साध बड़े परमारथी, घन ज्यों बरसैं आय।
तपन बुझावैं और की, अपनो पारस लाय॥ १॥
दुख सुख एक समान है, हरष सोक नहिं ब्याप।
उपकारी निःकामता, उपजै छोह न ताप॥ २॥
सदा रहै संतोष में, धरम आप दृढ़ धार।
आस एक गुरुदेव की, और न चित्त बिचार॥ ३॥
सावधान औ सीलता, सदा प्रफुल्लित गात।
निरबिकार गम्भीर मति, धीरज दया बसात॥ ४॥
निरबैरी निःकामता, स्वामी सेती नेह।
बिषया से न्यारा रहै, साधन का मत येह॥ ५॥
मान अपमान न चित धरै, औरन को सनमान।
जो कोई आसा करै, उपदेसै तेहि ज्ञान॥ ६॥

(१) अपने शिष्य के बिकारों को खींच ले।

सीलवंत दृढ़ ज्ञान मत, अति उदार चित होय।
लज्यावान अति निछलता, कोमल हिरदा सोय ॥ ७ ॥
दयावंत धरमक-ध्वजा, धीरजवान प्रमान।
संतोषी सुखदायक रु, सेवक परम सुजान ॥ ८ ॥
ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू से हेत।
सत्यवान परस्वारथी, आदर भाव सहेत[1] ॥ ९ ॥
निस्चय भल अरु दृढ़ मता, ये सब लच्छन जान।
साध सोई है जगत में, जो यह लच्छनवान ॥१०॥
ऐसा साधू खोजि के, रहिये चरनों लाग।
मिटै जनम की कल्पना, जा के पूरन भाग ॥११॥
सिंहों के लेहँड़े नहीं, हंसों की नहिं पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ, साध न चलैं जमात[2] ॥१२॥
सिंह साध का एक मत, जीवत ही को खाय।
भाव-हीन मिरतक दसा, ता के निकट न जाय ॥१३॥
साध कहावन कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
डिगमिगाय तो गिरि परै, निःचल उतरै पार ॥१४॥
गाँठी दाम न बाँधई, नहिं नारी से नेह।
कह कबीर ता साध के, हम चरनन की खेह ॥१५॥
साध हमारी आतमा, हम साधन के जीव।
साधन मद्धे यों रहौं, ज्यों पय मद्धे घीव ॥१६॥
साधु साधु सब एक हैं, जस पोस्ता का खेत।
कोई बिबेकी लाल है, कोई सेत का सेत ॥१७॥
हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत है, हरिजन हरिहीं देत ॥१८॥

---

(१) सहित। (२) गरोह, भीड़ भाड़।

निराकार की आरसी, साधों हीं की देह।
लखा जो चाहै अलख को, (तो) इनहीं में लखि लेह ॥१६॥
कबीर दरसन साध का, साहिब आवैं याद।
लेखे में सोई घड़ी, बाकी के दिन बाद ॥२०॥
साध मिले साहिब मिले, अंतर रही न रेख।
मनसा बाचा कर्मना, साधू साहिब एक ॥२१॥
सुख देवैं दुख को हरैं, दूर करैं अपराध।
कहैं कबीर ये कब मिलैं, परम सनेही साध ॥२२॥
जाति न पूछो साध की, पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥२३॥
साध सेव जा घर नहीं, सतगुरु पूजा नाहिं।
सो घर मरघट सारिखा[1], भूत बसैं ता माहिं ॥२४॥

॥ भेष ॥

तन को जोगी सब करै, मन को बिरला कोय।
सहजै सब सिधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥ १ ॥
मन माला तन मेखला, भय की करै भभूत।
अलख मिला सब देखता, सो जोगी अवधूत ॥ २ ॥
हम तो जोगी मनहिं के, तन के हैं ते और।
मन को जोग लगावते, दसा भई कछु और ॥ ३ ॥
भर्म न भागा जीव का, बहुतक धरिया भेष।
सतगुरु मिलिया बाहरे, अंतर रहिगा लेख ॥ ४ ॥

॥ असाध ॥

जेता मीठा बोलना, तेता साधु न जान।
पहिले थाह दिखाइ कै, औंड़े देसी आन ॥ १ ॥
उज्जल देखि न धीजिये, बग ज्यों माँडे ध्यान।
धूरे[2] बैठि चपेटही, यों लै बूड़ै मान ॥ २ ॥

(१) सरीखा, मिस्ल। (२) एक तरह की मोटी घास।

केसन[1] कहा बिगारिया, जो मूँड़ो सौ बार।
मन को क्यों नहि मुँड़िये, जा में बिषै बिकार ॥ ३ ॥
साकट संग न बैठिये, अपनो अंग लगाय।
तत्व सरीरा झरि परै, पाप रहै लपटाय ॥ ४ ॥
सोवत साधु जगाइये, करै नाम का जाप।
ये तीनों सोवत भले, साकट सिंह रु साँप ॥ ५ ॥

॥ सतसंग ॥

[सज्जन के लिए]

संगति कीजे संत की, जिन का पूरा मन।
अनतोले ही देत हैं, नाम सरीखा धन ॥ १ ॥
कबीर संगत साध की, हरै और की ब्याधि।
संगत बुरी असाध की, आठो पहर उपाधि ॥ २ ॥
कबीर संगत साध की, जो की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिलै, साकट संग न जाय ॥ ३ ॥
कबीर संगत साध की, ज्यों गंधी का बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ॥ ४ ॥
ऋद्धि सिद्धि माँगौं नहीं, माँगौं तुम पै येह।
निसि दिन दरसन साध का, कह कबीर मोहिं देय ॥ ५ ॥
कबीर संगत साध की, निस्फल कधी न होय।
होसी चंदन बासना, नीम न कहसी कोय ॥ ६ ॥
राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधू संग में, सो बैकुंठ न होय ॥ ७ ॥
बंधे को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय।
कर संगति निरबंध की, पल में लेइ छुड़ाय ॥ ८ ॥
जा पल दर्सन साधु का, ता पल की बलिहारि।
सत्त नाम रसना बसै, लीजै जनम सुधारि ॥ ९ ॥

---

(१) बाल।

कबीर खाई कोट की, पानी पिवै न कोय।
जाय मिलै जब गंग से, सब गंगोदक होय ॥१०॥
एक घड़ी आधी घड़ी, आधी हूँ से आध।
कबीर संगति साध की, कटै कोटि अपराध ॥११॥

॥ सतसंग ॥

[दुर्जन के लिए]

संगति भई तो क्या भया, हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़ै, तऊ न भीजै कोर ॥ १ ॥
हरिया जानै रूखड़ा, जो पानी का नेह।
सूखा काठ न जानही, केतहु बूड़ा मेह ॥ २ ॥
साखी सबद बहुत सुना, मिटा न मन का दाग।
संगति से सुधरा नहीं, ता का बड़ा अभाग ॥ ३ ॥
सत्त नाम रटिबो करै, निसि दिन साधुन संग।
कहो जो कौन बिचार तें, नाहीं लागत रंग ॥ ४ ॥
मन दीया कहुँ औरही, तन साधुन के संग।
कह कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥ ५ ॥

[कुसंग दुर्जन और मूरख]

मूरख से क्या बोलिये, सठ से कहा बसाय।
पाहन में क्या मारिये, चोखा तीर नसाय ॥ १ ॥
जानि बूझि साचो तजै, करै झूठ से नेह।
ता की संगति हे प्रभू, सपनेहू मति देह ॥ २ ॥
दाग जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोय।
कोटि जतन परबोधिये, कागा हंस न होय ॥ ३ ॥
लहसुन से चदन डरै, मत रे बिगारै बास।
निगुरा से सगुरा डरै, (यों) डरपै जग से दास ॥ ४ ॥

हरिजन सेती रूसना, संसारी से हेत।
ते नर कधी न नीपजैं, ज्यों कालर[1] का खेत ॥ ५ ॥
मारी मरै कुसंग की, ज्यों केला ढिग बेर।
वह हालै वह जीरई[2], साकट संग निबेर ॥ ६ ॥
केला तबहिं न चेतिया, जब ढिंग जागी बेरि।
अब के चेते क्या भया, काँटों लीन्हा घेरि ॥ ७ ॥
ऊँचे कुल कहा जनमिया, (जो) करनी ऊँच न होय।
कनक कलस मद से भरा, साधन निंदा सोय ॥ ८ ॥
काँचा सेती मति मिलै, पाका सेती बान।
काँचा सेती मिलत ही, होय भक्ति में हान ॥ ९ ॥
तोहि पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल।
काँची सरसों पेरि कै, खली भया ना तेल ॥१०॥
समझा का घर और है, अनसमझा का और।
जा घर में साहिब बसैं, बिरला जानै ठौर ॥११॥
बुद्धि बिहूना आदमी, जानै नहीं गँवार।
जैसे कपि परबस पर्‌यो, नाचै घर घर बार[3] ॥१२॥
बुद्धि बिहूना अंध गज, पर्‌यो फंद में आय।
ऐसे ही सब जग बँधा, कहा कहौं समुझाय ॥१३॥
पंख छता[4] परबिस पर्‌यो, सूवा के बुद्धि नाहिं।
बुद्धि बिहूना आदमी, यों बंधा जग माहिं ॥१४॥

॥ मध्य ॥

भजूँ तो को है भजन को, तजूँ तो को है आन।
भजन तजन के मध्य में, सो कबीर मन मान ॥ १ ॥
हिंदू कहूँ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।
पाँच तत्व का पूतला, गैबी खेलै माहिं ॥ २ ॥

(१) रेहार यानी रेह का। (२) फाड़ें अर्थात् पत्ते को चीर दे। (३) द्वार। (४) होते।

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप ॥ ३ ॥

॥ समदृष्टी ॥

समदृष्टी सतगुरु किया, मेटा भरम बिकार।
जहँ देखौं तहँ एकही, साहिब का दीदार ॥ १ ॥
समदृष्टी तब जानिये, सीतल समता होय।
सब जीवन की आतमा, लखै एक सी सोय ॥ २ ॥

॥ सहज ॥

सहज सहज सब कोउ कहै, सहज न चीन्है कोय।
जा सहजै साहिब मिलै, सहज कहावै सोय ॥ १ ॥
सहज मिलै सो दूध सम, माँगा मिलै सो पानि।
कह कबीर वह रक्त सम, जा में ऐंचा तानि ॥ २ ॥
काहे को कलपत फिरै, दुखी होत बेकार।
सहजै सहजै होयगा, जो रचिया करतार ॥ ३ ॥

॥ सार गहनी ॥

साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥ १ ॥
औगुन को तो ना गहै, गुनही को लै बीन।
घट घट महकै[1] मधुप[2] ज्यों, परमातम लै चीन्ह ॥ २ ॥
हंसा पय को काढ़ि ले, छीर नीर निरवार।
ऐसे गहै जो सार को, सो जन उतरै पार ॥ ३ ॥

॥ असार गहनी ॥

कबीर कीट[3] सुगंध तजि, नरक गहै दिन रात।
असार-ग्राही मानवा, गहै असारहि बात ॥ १ ॥
आटा तजि भूसी गहै, चलनी देखु निहारि।
कबीर सारहि छाड़ि कै, करै असार अहार ॥ २ ॥

(१) सूँघै। (२) भँवरा। (३) कीड़ा।

रसहिं छाड़ि छोही गहै, कोल्हू परतछ देख।
गहै असारहिं सार तजि, हिरदे नाहिं बिबेक ॥ ३ ॥

॥ सूक्ष्म मार्ग ॥

उत तें कोई न बाहुरा, जा से बूझूँ धाय।
इत तें सबही जात हैं, भार लदाय लदाय ॥ १ ॥

उत तें सतगुरु आइया, जा की बुधि है धीर।
भवसागर के जीव को, खेइ लगावैं तीर ॥ २ ॥

गागर ऊपर गागरी, चोले ऊपर द्वार।
सूली ऊपर साँथरा, जहाँ बुलावै यार ॥ ३ ॥

जो आवै तो जाय नहिं, जाय तो आवै नाहिं।
अकथ कहानी प्रेम की, समझ लेहु मन माहिं ॥ ४ ॥

सूली ऊपर घर करै, बिष का करै अहार।
ता का काल कहा करै, जो आठ पहर हुसियार ॥ ५ ॥

यार बुलावै भाव से, मो पै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सक्कौं पाँय ॥ ६ ॥

नाँव न जानों गाँव का, बिन जाने कित जाँव।
चलता चलता जुग भया, पाव कोस पर गाँव ॥ ७ ॥

सतगुरु दीनदयाल हैं, दया करी मोहिं आय।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥ ८ ॥

चलन चलन सब कोइ कहै, मोहिं अँदेसा और।
साहिब से परिचय नहीं, पहुँचैंगे केहि ठौर ॥ ९ ॥

कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहली गैल।
पाँव न टिकै पपीलि[1] का, पंडित लादे बैल ॥१०॥

बिन पाँवन की राह है, बिन बस्ती का देस।
बिना पिंड का पुरुष है, कहै कबीर सँदेस ॥११॥

---

(१) चींटीं।

घाटहि पानी सब भरै, औघट भरै न कोय।
औघट घाट कबीर का, भरै सो निर्मल होय ॥१२॥
पहुँचेंगे तब कहेंगे, वही देस की सोच[1]।
अबहीं कहा तड़ागिये[2], बेड़ी पायन बोच ॥१३॥
प्रान पिंड को तजि चलै, मुआ कहै सब कोय।
जीव छता[3] जामे मरै, सूछम लखै न सोय ॥१४॥
मरिये तो मरि जाइये, छूटि परै जंजार।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार ॥१५॥

॥ घट मठ (सर्व घट व्यापी) ॥

कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूँढ़ै बन माहिं।
ऐसे घट में पीव है, दुनियाँ जानै नाहिं ॥ १ ॥
तेरा साईं तुज्झ में, ज्यों पुहुपन में बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिरि फिरि ढूँढ़ै घास ॥ २ ॥
सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परघट होय ॥ ३ ॥
ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जागि ॥ ४ ॥
पावक रूपी साइयाँ, सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं, ता तें बुझि बुझि जाय ॥ ५ ॥

॥ सेवक और दास ॥

सेवक सेवा में रहै, अनत कहूँ नहिं जाय।
दुख सुख सिर ऊपर सहै, कह कबीर समुझाय ॥ १ ॥
द्वार धनी के पड़ि रहै, धका धनी का खाय।
कबहुँक धनी निवाजई, जो दर छाड़ि न जाय ॥ २ ॥

(१) सीतल स्थान। (२) डींग मारिये, उछलिये। (३) मौजूद रहते।

कबीर गुरु सब को चहैं, गुरु को चहै न कोय।
जब लग आस सरीर की, तब लगि दास न होय ॥ ३ ॥
निरबंधन बंधा रहै, बंधा निरबंध होय।
करम करै करता नहीं, दास कहावै सोय ॥ ४ ॥
गुरु समरथ सिर पर खड़े, कहा कमी तोहिं दास।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करैं, मुक्ति न छाँड़ै पास ॥ ५ ॥
दास दुखी तो हरि दुखी, आदि अंत तिहुँ काल।
पलक एक में प्रगट है, छिन में करै निहाल ॥ ६ ॥
दात धनी याचै[1] नहीं, सेव करै दिन रात।
कह कबीर ता सेवकहिं, काल करै नहिं घात ॥ ७ ॥
दासातन हिरदै नहीं, नाम धरावै दास।
पानी के पीये बिना, कैसे मिटै पियास ॥ ८ ॥
भुक्ति मुक्ति माँगौं नहीं, भक्ति दान दे मोहिं।
और कोई याचौं नहीं, निसि दिन याचौं तोहिं ॥ ६ ॥
कबीर खालिक जागिया, और न जागै कोय।
कै जागै बिषया भरा, कै दास बंदगी जोय ॥१०॥

॥ सजीवन ॥

जरा मीच ब्यापै नहीं, मुआ न सुनिये कोय।
चलु कबीर वा देस को, जहँ बैद साइयाँ होय ॥ १ ॥
कबीर मन तीखा किया, लाइ बिरह खरसान।
चित चरनों से चिपटिया, का करै काल का बान ॥ २ ॥
भवसागर में यों रहो, ज्यों जल कँवल निराल।
मनुवाँ व्हाँ लै राखिये, जहाँ नहीं जम काल ॥ ३ ॥

॥ मौन ॥

ऐसो अद्भुत मत कथो, कथो तो धरो छिपाय।
बेद कुराना ना लिखी, कहौं तो को पतियाय ॥ १ ॥

---

(१) माँगै।

ो देखै सो कहै नहिं, कहै सो देखै नाहिं।
ुनै सो समझावे नहीं, रसना दृग सरवन काहि ॥ २ ॥
ो पकरै सो चलै नहिं, चलै सो पकरै नाहिं।
ह कबीर या साखि को, अरथ समझ मन माहिं ॥ ३ ॥
ानि बूझि जड़ होइ रहै, बल तजि निर्बल होय।
ह कबीर वा दास को, गंजि सकै नहिं कोय ॥ ४ ॥
ाद बिबादे बिष घना, बोले बहुत उपाध।
ौन गहे सब की सहै, सुमिरै नाम अगाध ॥ ५ ॥
ाकट का मुख बिम्ब[1] है, निकसत बचन भुवंग।
ा की औषधि मौन है, बिष नाहिं ब्यापे अंग ॥ ६ ॥

॥ सूरमा ॥

गन दमामा बाजिया, पड़त निसाने चोट।
ायर भाजै कछु नहीं, सूरा भाजै खोट ॥ १ ॥
ूरा सोई सराहिये, लड़ै धनी के हेत।
ुरजा पुरजा होइ रहै, तऊ न छाड़ै खेत ॥ २ ॥
ूरा सोई सराहिये, अंग न पहिरै लोह।
जूझै सब बँद खोलि कै, छाड़ै तन का मोह ॥ ३ ॥
खेत न छाड़ै सूरमा, जूझै दो दल माहिं।
आसा जीवन मरन की, मन में आनै नाहिं ॥ ४ ॥
अब तो जूझे ही बनै, मुड़ चाले घर दूर।
सिर साहिब को सौंपते, सोच न कीजै सूर ॥ ५ ॥
घायल तो घूमत फिरै, राखा रहै न ओट।
जतन किये नहिं बाहुरै[2], लगी मरम की चोट ॥ ६ ॥
घायल की गति और है, औरन की गति और।
प्रेम बान हिरदे लगा, रहा कबीर ठौर ॥ ७ ॥

---

(१) बाँबी। (२) मुड़ै।

सूरा सीस उतारिया, छाड़ी तन की आस।
आगे से गुरु हरखिया, आवत देखा दास ॥ ८ ॥
कबीर घोड़ा प्रेम का, (कोइ) चेतन चढ़ि असवार।
ज्ञान खड़ग लै काल सिर, भली मचाई मार ॥ ९ ॥
चित चेतन ताजी[1] करै, लव की करै लगाम।
सबद गुरू का ताजना[2], पहुँचै संत सुठाम ॥१०॥
हरि घोड़ा ब्रह्मा कड़ी, बिस्नू पीठ पलान।
चंद सूर है पायड़ा[3], चढ़सी संत सुजान ॥११॥
साध सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गज-दंत।
एते निकसि न बाहुरैं, जो जुग जाहिं अनंत ॥ १२॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटि उँजियारा होय ॥१३॥
धड़ से सीस उतारि कै, डारि देइ ज्यों ढेल।
कोई सूर को सोहसी, घर जाने का खेल ॥१४॥
लड़ने को सबही चले, सस्तर बाँधि अनेक।
साहिब आगे आपने, जूझैगा कोइ एक ॥१५॥
जूझैंगे तब कहैंगे, अब कछु कहा न जाय।
भीड़ पड़े मन मसखरा, लड़ै किधौं भगि जाय ॥१६॥
साईं सेंति[4] न पाइये, बातन मिलै न कोय।
कबीर सौदा नाम का, सिर बिन कबहुँ न होय ॥१७॥
जेता तारा रैन का, एता बैरी मुज्झ।
धड़ सूली सिर कंगुरे[5], तउ न बिसारूँ तुज्झ ॥१८॥
अगिनि आँच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन ब्योहार ॥१९॥

(१) घोड़ा। (२) ताजियाना=कोड़ा। (३) रकाब। (४) मुफ्त। (५) अगले समय में शत्रु को सूली चढ़ा कर उसका सिर काट लिया करते थे, और कंगूरे पर लगा देते थे।

नेह निभाये ही बनै, सोचे बनै न आन ।
तन दे मन दे सीस दे, नेह न दीजै जान ॥२०॥
बाँकी तेग[1] कबीर की, अनी पड़ै दुइ टूक ।
मारा मीर[2] महाबली, ऐसी मूठ अचूक ॥२१॥
सूरा नाम धराइ के, अब का डरपै बीर ।
मँड़ि रहना मैदान में, सन्मुख सहना तीर ॥२२॥
तीर तुपक[3] से जो लड़ै, सो तो सूर न होय ।
माया तजि भक्ती करै, सूर कहावै सोय ॥२३॥
जाय पूछ वा घायलै, पीर दिवस निसि जागि ।
बाहनहारा जानि है, कै जानै जिन लागि ॥२४॥
सूर सिलाह[4] न पहिरई, जब रन बाजा तूर ।
माथा काटै धड़ लड़ै, तब जानीजे सूर ॥२५॥
सूरा के मैदान में, कायर का क्या काम ।
सूरा से सूरा मिलै, तब पूरा संग्राम ॥२६॥
धुजा फरक्कै सुन्न में, बाजे अनहद तूर ।
तकिया है मैदान में, पहुँचैगा कोइ सूर ॥२७॥
कायर भागा पीठ दै, सूर रहा रन माहिं ।
पटा लिखाया गुरू पै, खरा खजीना खाहिं ॥२८॥

॥ पतिब्रता ॥

पतिबरता को सुख घना, जा के पति है एक ।
मन मैली बिभिचारिनी, ता के खसम अनेक ॥ १ ॥
पतिबरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप ।
पतिबरता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप ॥ २ ॥
पतिबरता पति को भजे, और न आन सुहाय ।
सिंह बचा जो लंघना, तौ भी घास न खाय ॥ ३ ॥

---

(१) तलवार । (२) मन । (३) बंदूक । (४) लड़ाई के हथियार, ढाल तलवार ।

नैनों अंतर आव तूँ, नैन झाँपि तोहि लेवँ।
ना मैं देखौं और को, ना तोहिं देखन देवँ ॥ ४ ॥
कबीर सीप समुद्र की, रटै पियास पियास।
और बूँद को ना गहै, स्वाँति बूँद की आस ॥ ५ ॥
पपिहा का पन देखि करि, धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल में पड़ा, तऊ न बोरी चंच[1] ॥ ६ ॥
मैं सेवक समरत्थ का, कबहुँ न होय अकाज।
पतिबरता नाँगी रहै, तो वाही पति को लाज ॥ ७ ॥
चढ़ी अखाड़े सुंदरी, माँड़ा पिउ से खेल।
दीपक जोया ज्ञान का, काम जरै ज्यौं तेल ॥ ८ ॥
सूरा के तो सिर नहीं, दाता के धन नाहिं।
पतिबरता के तन नहीं, सुरति बसै पिउ माहिं ॥ ९ ॥
पतिबरता मैली भली, गले काँच की पोत।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यौं रवि ससि की जोत ॥१०॥
नाम न रटा तो क्या हुआ, जो अंतर है हेत।
पतिबरता पति को भजै, मुख से नाम न लेत ॥११॥
जो यह एकै जानिया, तौ जानो सब जान।
जो यह एक न जानिया, (तौ) सबही जान अजान ॥१२॥
सब आये उस एक में, डार पात फल फूल।
अब कहो पाछे क्या रहा, गहि पकड़ा जब मूल ॥१३॥
कबीर रेख सिंदूर अरु, काजर दिया न जाय।
नैनन प्रीतम मिलि रहा, दूजा कहाँ समाय ॥१४॥
आठ पहर चौंसठ घड़ी, मेरे और न कोय।
नैना माही तूँ बसै, नींद को ठौर न होय ॥१५॥

---

(१) चोंच।

पतिबरता तब जानिये, रतिउ[1] न उघरै नैन।
अंतर गति सकुची रहै, बोलै मधुरे बैन ॥१६॥

॥ सती ॥

अब तो ऐसी ह्वै परी, मन अति निर्मल कीन्ह।
मरने को भय छाड़ि कै, हाथ सिंधोरा लीन्ह ॥ १ ॥
ढोल दमामा बाजिया, सबद सुना सब कोय।
जो सर[2] देखि सती भगै, दो कुल हाँसी होय ॥ २ ॥
सती जरन को नीकसी, चित धरि एक बिबेक।
तन मन सौंपा पीव को, अंतर रही न रेख ॥ ३ ॥
सती जरन को नीकसी, पिउ का सुमिरि सनेह।
सबद सुनत जिय नीकसा, भूलि गई निज देंह ॥ ४ ॥
सती बिचारी सत किया, काँटों सेज बिछाय।
लै सूती पिउ आपना, चहुँ दिसि अगिन लगाय ॥ ५ ॥

॥ बिभिचारिन ॥

नारि कहावै पीव की, रहै और सँग सोय।
जार सदा मन में बसै, खसम खुसी क्यों होय ॥ १ ॥
सेज बिछावै सुन्दरी, अंतर परदा होय।
तन सौंपै मन दे नहीं, सदा दुहागिन सोय ॥ २ ॥
बिभिचारिन बिभिचार में, आठ पहर हुसियार।
कहै कबीर पतिबर्त बिन, क्यों रीझै भरतार ॥ ३ ॥
कबीर या जग आइ कै, कीया बहुतक मिंत[3]।
जिन दिल बाँधा एक से, ते सोवै निःचित ॥ ४ ॥

॥ पारख ॥

जब गुन हो गाहक मिलै, तब गुन लाख बिकाय।
जब गुन को गाहक नहीं, (तब) कौड़ी बदले जाय ॥ १ ॥

---

(१) रत्ती भर भी। (२) आग। (३) मित्र।

कबीर देखि के परखि ले, परखि के मुखाँ बुलाय।
जैसी अंतर होयगी, मुख निकसैगी ताय॥ २॥
हीरा तहाँ न खोलिये, जहँ खोटी है हाट।
कस करि बाँधौ गाठरी, उठ करि चालो बाट॥ ३॥
पिउ मोतियन की माल है, पोई काचे धाग।
जतन करो झटका घना, नहिं टूटै कहुँ लागि॥ ४॥
हीरा परखै जौहरी, सब्दहि परखै साध।
कबीर परखै साध को, ता का मता अगाध॥ ५॥
हीरा पाया परखि के, घन में दीया आनि।
चोट सही फूटा नहीं, तब पाई पहिचानि॥ ६॥
हंसा बगुला एक सा, मानसरोवर माहिं।
बगा ढूँढो रै माछरी, हंसा मोती खाहिं॥ ७॥

॥ अपारख ॥

चंदन गया बिदेसड़े, सब कोइ कहै पलास।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों त्यों अधिकी बास॥ १॥
कबीर ये जग आँधरा, जैसी अंधी गाय।
बछरा था सो मरि गया, ऊभी[1] चाम चटाय॥ २॥

॥ परिचय ॥

पिउ परिचय तब जानिये, पिउ से हिलमिल होय।
पिउ की लाली मुख पड़ै, परगट दीसै सोय॥ १॥
लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी होगइ लाल॥ २॥
हम बासी वा देस के, जहँ बारह मास बिलास।
प्रेम झिरै बिगसै कँवल, तेज पुंज परकास॥ ३॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, जागी जोति अनंत।
संसय छूटा भय मिटा, मिला पियारा कंत॥ ४॥

(१) खड़ी।

अगवानी तो आइया, ज्ञान बिचार बिबेक।
पीछे गुरु भी आयँगे, सारे साज समेत ॥ ५ ॥
भेद ज्ञान तौ लौं भला, जौ लौं मेल न होय।
परम जोति प्रगटै जहाँ, तहँ बिकल्प नहिं कोय ॥ ६ ॥
कबीर कमल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर।
रैन अँधेरी मिटि गई, बाजे अनहद तूर ॥ ७ ॥
आकासै औंधा कुआँ, पातालै पनिहार।
जल हंसा कोइ पीवई, बिरला आदि बिचार ॥ ८ ॥
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गँभीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भींजै दास कबीर ॥ ९ ॥
कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं।
अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं ॥१०॥

॥ अनुभव ज्ञान ॥

आतम अनुभव जब भयो, तब नहिं हर्ष बिषाद।
चित्त दीप सम ह्वै रह्यो, तजि करि बाद बिबाद ॥ १ ॥
लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखि की बात।
दुलहा दुलहिन मिलि गये, फीकी पड़ी बरात ॥ २ ॥

॥ बाचक ज्ञान ॥

ज्यों अँधरे को हाथिया, सब काहू को ज्ञान।
अपनी अपनी कहत हैं, का को धरिये ध्यान ॥ १ ॥
ज्ञानी से कहिये कहा, कहत कबीर लजाय।
अंधे आगे नाचते, कला अकारथ जाय ॥ २ ॥
ज्ञानी मूल गँवाइया, आप भये करता।
ता तें संसारी भला, जो सदा रहै डरता ॥ ३ ॥

॥ उपदेस ॥

जो तो को काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहि फूल को फूल है, वा को है तिरसूल ॥ १ ॥

दुर्बल को न सताइये, जा की मोटी हाय।
बिना जीव की स्वाँस से[1], लोह भसम ह्वै जाय॥ २॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगा सुख होत है, और ठगे दुख होय॥ ३॥
या दुनियाँ में आइ के, छाड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होइ सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ॥ ४॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होय॥ ५॥
जग में बैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होय।
या आपा को डारि दे, दया करै सब कोय॥ ६॥
हस्ती चढ़िये ज्ञान की, सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है, भूसन दे झख मारि॥ ७॥
आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।
कह कबीर नहिं उलटिये, वही एक की एक॥ ८॥

॥ सोरठा ॥

हरिजन तो हारा भला, जीतन दे संसार।
हारा सतगुरु से मिले, जीता जम की लार॥ ९॥
जैसा अन जल खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय॥१०॥
माँगन मरन समान है, मत कोइ माँगो भीख।
माँगन तें मरना भला, यह सतगुरु की सीख॥११॥
कथा कीरतन रात दिन, जा के उद्यम येह।
कह कबीर ता साधु की, हम चरनन की खेह॥१२॥
जो कोइ समझै सैन में, ता से कहिये बैन।
सैन बैन समझै नहीं, ता से कछु नहिं कहन॥१३॥

---

(१) भाथी या धौकनी निर्जीव होती है उसकी हवा से लोहा गल जाता है।

बहते को मत बहन दे, कर गहि ऐंचहु ठौर।
कहा सुना मानै नहीं, बचन कहो दुइ और ॥१४॥
बन्दे तूँ कर बन्दगी, तौ पावै दीदार।
औसर मानुष जनम का, बहुरि न बारम्बार ॥१५॥
साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं बिचार।
हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तलवार ॥१६॥
मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै, सालै सकल सरीर ॥१७॥
बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर को घाट।
अंतर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट ॥१८॥
जिन ढूँढ़ा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठि।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठि ॥१९॥
ज्ञान रतन की कोठरी, चुप करि दीजै ताल।
पारख आगे खोलिये, कुंजी बचन रसाल ॥२०॥
पढ़ना गुनना चातुरी, यह तो बात सहल।
काम दहन मन बसि करन, गगन चढ़न मुस्कल ॥२१॥
करता था तो क्यों रहा, अब करि क्यों पछिताय।
बोवै पेड़ बबूल का, आम कहाँ तै खाय ॥२२॥
भय बिनु भाव न ऊपजै, भय बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया, मिटी सकल रस रीति ॥२३॥
डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार।
डरत रहै सो ऊबरै, गाफिल खावै मार ॥२४॥

॥ गृहस्थ की रहनी ॥

जो मानुष गृह-धर्म युत, राखै सील बिचार।
गुरुमुख बानी साधु संग, मन बच सेवा सार ॥ १ ॥
सत्त सील दाया सहित, बरतै जग ब्यौहार।
गुरु साधू का आस्रित, दीन बचन उच्चार ॥ २ ॥

गिरही सेवै साधु को, साधू सुमिरै नाम ।
या में धोखा कछु नहीं, सरै दोऊ को काम ॥ ३ ॥

॥ बैरागी की रहनी ॥

धारन तो दोऊ भली, गिरही कै बैराग ।
गिरही दासातन करै, बैरागी अनुराग ॥ १ ॥
बैरागी बिरकत[1] भला, ग्रेही चित्त उदार ।
दोउ बातों खाली पड़ै, ता को वार न पार ॥ २ ॥

॥ करनी और कथनी ॥

कथनी मीठी खाँड़ सी, करनी बिष की लोय ।
कथनी तजि करनी करै, तौ बिष से अमृत होय ॥ १ ॥
कथनी के सूरे घने, थोथे बाँधे तीर ।
बिरह बान जिन के लगा, तिन के बिकल सरीर ॥ २ ॥
लाया साखि बनाय करि, इत उत अच्छर काट ।
कह कबीर कब लग जिये, जूठी पत्तल चाट ॥ ३ ॥
पानी मिलै न आप को, औरन बकसत छीर ।
आपन मन निस्चल नहीं, और बँधावत धीर ॥ ४ ॥
मारग चलते जो गिरै, ता को नाहीं दोस ।
कह कबीर बैठा रहै, ता सिर करड़े कोस ॥ ५ ॥

॥ जीवत मृतक ॥

जीवत मिरतक होइ रहै, तजै खलक की आस ।
रच्छक समरथ सतगुरू, मत दुख पावै दास ॥ १ ॥
मोती निपजै सीप में, सीप समुंदर माहिं ।
कोइ मरजीवा काढ़सी, जीवन की गम नाहिं ॥ २ ॥
खरी कसौटी नाम की, खोटा टिकै न कोय ।
नाम कसौटी सो टिकै, जो जीवत मिरतक होय ॥ ३ ॥

---

(१) निरक्त ।

ऊँचा तरवर[1] गगन फल, बिरला पंछी खाय।
इस फल को तो सो चखै, (जो) जीवत ही मरि जाय ॥ ४ ॥
कबीर मन मिरतक भया, दुरबल भया सरीर।
पाछे लागे हरि फिरैं, कहैं कबीर कबीर ॥ ५ ॥
मन को मिरतक देखि कै, मत मानै बिस्वास।
साध जहाँ लौं भय करैं, जब लग पिंजर स्वास ॥ ६ ॥
मैं जानौं मन मरि गया, मरि के हूआ भूत।
मूए पीछे उठि लगा, ऐसा मेरा पूत ॥ ७ ॥
भक्त मरे क्या रोइये, जो अपने घर जाय।
रोइये साकट बापुरे, (जो) हाटो हाट बिकाय ॥ ८ ॥
आपा मेटे गुरु मिलै, गुरु मेटे सब जाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहै न कोइ पतियाय ॥ ९ ॥
कबीर चेरा संत का, दासनहूँ का दास।
अब तो ऐसा होइ रहु, ज्यों पाँव तले की घास ॥१०॥
रोड़ा होइ रहु बाट का, तजि आपा अभिमान।
लोभ मोह तृस्ना तजै, ताहि मिलै निज नाम ॥११॥
रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देय।
साधू ऐसा चाहिये, ज्यों पैंड़े की खेह ॥१२॥
खेह भई तो क्या भया, उड़ि उड़ि लागै अंग।
साधू ऐसा चाहिये, जैसे नीर निपंग ॥१३॥
नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा जोय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरि ही जैसा होय ॥१४॥
हरि भया तो क्या भया, जो करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरि भज निरमल होय ॥१५॥

---

(१) पेड़।

निरमल भया तो क्या भया, निरमल माँगै ठौर।
मल निरमल तें रहित है, ते साधू कोइ और ॥ ६॥

॥ साच ॥

साच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जा के हिरदे साच है, ता हिरदे गुरु आप ॥ १ ॥
साईं से साचा रहो, साईं साच सुहाय।
भावै लम्बे केस रखु, भावै घोट मुँड़ाय ॥ २ ॥
तेरे अंदर साच जो, बाहर कछु न जनाव।
जाननहारा जानि है, अंतरगति का भाव ॥ ३ ॥
साचे स्राप न लागई, साचे काल न खाय।
साचे को साचा मिलै, साचे माहिं समाय ॥ ४ ॥
साचे कोइ न पतीजई, झूठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठ बिकाय ॥ ५ ॥
साचे को साचा मिलै, अधिका बढ़ै सनेह।
झूँठे को साचा मिलै, तड़दे टूटै नेह ॥ ६ ॥
कबीर पूँजी साहु की, तू मत खोवै ख्वार।
खरी बिगुर्चन होयगी, लेखा देती बार ॥ ७ ॥
लेखा देना सहज है, जो दिल साचा होय।
साईं के दरबार में, पला न पकरै कोय ॥ ८ ॥

॥ उदारता ॥

कबीर गुरु के मिलन की, बात सुनी हम दोय।
कै साहिब को नाम लै, कै कर ऊँचा होय ॥ १ ॥
बसंत ऋतु जाचक भया, हरषि दिया द्रुम[1] पात।
ता तें नव पल्लव[2] भया, दिया दूर नहिं जात ॥ २ ॥
देह धरे का गुन यही, देह देह कछु देह।
बहुरि न देही पाइये, अब की देह सो देह ॥ ३ ॥

---

(१) पेड़। (२) पत्तियाँ।

दान दिये धन ना घटै, नदी न घट्टै नीर।
अपनी आँखों देखिये, यों कथि कहै कबीर ॥ ४ ॥

॥ सहन ॥

काँच कथीर अधीर नर, जतन करत है भंग।
साधू कंचन ताइये, चढ़ै सवाया रंग ॥ १ ॥
कसत कसौटी जो टिकै, ता को सबद सुनाय।
सोई हमरा बंस है, कह कबीर समुझाय ॥ २ ॥

॥ शील ॥

सीलवंत सब तें बड़ा, सर्ब रतन की खानि।
तीन लोक की संपदा, रही सील में आनि ॥ १ ॥
घायल ऊपर घाव लै, टोटे त्यागी सोय।
भर जोबन में सीलवँत, बिरला होय तो होय ॥ २ ॥

॥ क्षमा ॥

छिमा बड़न को चाहिये, छोटन को उतपात।
कहा बिस्नु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥ १ ॥
जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ॥ २ ॥
करगस[1] सम दुर्जन बचन, रहै संत जन टारि।
बिजुली परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि ॥ ३ ॥
लोद खाद धरती सहै, काट कूट बनराय।
कुटिल बचन साधू सहै, और से सहा न जाय ॥ ४ ॥

॥ संतोष ॥

साध सँतोषी सर्बदा, निरमल जा के बैन।
ता के दरस रु परस तें, जिय उपजै सुख चैन ॥ १ ॥
चाह गई चिंता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिन को कछू न चाहिये, सोई साहंसाह ॥ २ ॥

---

(१) तीर।

गोधन गजधन बाजधन, और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान॥ ३॥

॥ धीरज ॥

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय।
माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय॥ १॥
कबीर तूँ काहे डरै, सिर पर सिरजनहार।
हस्ती चढ़ि कर डोलिये, कूकर भुसै हजार॥ २॥

॥ दीनता ॥

दीन लखै मुख सबन को, दीनहिं लखै न कोय।
भली बिचारी दीनता, नरहुँ देवता होय॥ १॥
कबीर नवै सो आप को, पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय॥ २॥
आपा मेटे पिउ मिलै, पिउ में रहा समाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहै तो को पतियाय॥ ३॥
ऊँचे पानी ना टिकै, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भरि पिवै, ऊँचा प्यासा जाय॥ ४॥
सब तें लघुताई भली, लघुता तें सब होय।
जस दुतिया को चंद्रमा, सीस नवै सब कोय॥ ५॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौं आपना, मुझसा बुरा न होय॥ ६॥

॥ दया ॥

दया भाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथै बेहद्द।
ते नर नरकहिं जाहिंगे, सुनि सुनि साखी सब्द॥ १॥
दाया दिल में राखिये, तूँ क्यों निरदइ होय।
साईं के सब जीव हैं, कीड़ी कुंजर सोय॥ २॥
हम रोवैं संसार को, रोय न हम को कोय।
हम को तो सो रोइहै, जो सब्द-सनेही होय॥ ३॥

॥ बिचार ॥

बोली तो अनमोल है, जो कोइ जानै बोल।
हिये तराजू तोल के, तब मुख बाहर खोल ॥ १ ॥
आधी साखी सिर कटै, जो रे बिचारी जाय।
मनहिं प्रतीत न ऊपजे, राति दिवस भरि गाय ॥ २ ॥
सहज तराजू आन करि, सब रस देखा तोल।
सब रस माहीं जीभ रस, जो कोइ जानै बोल ॥ ३ ॥
ज्यों आवै त्योंहीं कहै, बोलै नाहिं बिचारि।
हतै पराई आतमा, जीभ लेइ तरवारि ॥ ४ ॥

॥ बिबेक ॥

साधू मेरे सब बड़े, अपनी अपनी ठौर।
सबद बिबेकी पारखी, सो माथे के मौर ॥ १ ॥
गुरुपसु नरपसु नारिपसु, बेदपसू संसार।
मानुष सोई जानिये, जाहि बिबेक बिचार ॥ २ ॥
प्रगटै प्रेम बिबेक दल, अभय निसान बजाय।
उग्र ज्ञान उर आवतों, यह सुनि मोह डराय ॥ ३ ॥
सत्तनाम सब कोइ कहै, कहिबे माहिं बिबेक।
एक अनेकै फिरि मिलै, एक समाना एक ॥ ४ ॥

॥ काम ॥

कामी क्रोधी लालची, इन से भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥ १ ॥
कामी कबहुँ न गुरु भजै, मिटै न संसय सूल।
और गुनह सब बकसिहौं, कामी डार न मूल ॥ २ ॥
जहाँ काम तहँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं काम।
दोनों कबहूँ ना मिलैं, रबि रजनी इक ठाम ॥ ३ ॥
काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि घट में खान।
कहा मूरख कहा पंडिता, दोनों एक समान ॥ ४ ॥

॥ क्रोध ॥

कोटि करम लागे रहैं, एक क्रोध की लार ।
किया कराया सब गया, जब आया हंकार ॥ १ ॥
दसो दिसा से क्रोध की, उठी अपरबल आगि ।
सीतल संगति साध की, तहाँ उबरिये भागि ॥ २ ॥
कुबुधि कमानी चढ़ि रही, कुटिल बचन का तीर ।
भरि भरि मारै कान में, सालै सकल सरीर ॥ ३ ॥

॥ लोभ ॥

जब मन लागा लोभ से, गया बिषय में मोय[1] ।
कहै कबीर बिचारि कै, कस भक्ती धन होय ॥ १ ॥
आब गई आदर गया, नैनन गया सनेह ।
ये तीनों जबहीं गये, जबहिं कहा कछु देह ॥ २ ॥
जग में भक्त कहावई, चुकट[2] चून नहिं देय ।
सिष जोरू का है रहा, नाम गुरू का लेय ॥ ३ ॥

॥ मोह ॥

जब घट मोह समाइया, सबै भया अँधियार ।
निर्मोह ज्ञान बिचारि कै, (कोइ) साधू उतरै पार ॥ १ ॥
सलिल मोह की धार में, बहि गये गहिर गँभीर ।
सुच्छम मछरी सुरत है, चढ़िहै उलटे नीर ॥ २ ॥

॥ माग और हँगता ॥

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह ।
मान बड़ाई ईरषा, दुरलभ तजनी येह ॥ १ ॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ॥ २ ॥
जहँ आपा तहँ आपदा, जहँ संसय तहँ सोग ।
कह कबीर कैसे मिटै, चारो दीरघ रोग ॥ ३ ॥

(१) सन जाना। (२) चुटकी।

बड़ा बड़ाई ना तजै, छोटा बहु इतराय।
ज्यों प्यादा फरजी भया, टेढ़ा टेढ़ा जाय[1] ॥ ४ ॥
जग में बैरी कोउ नहीं, जो मन सीतल होय।
यह आपा तू डारि दे, दया करै सब कोय ॥ ५ ॥

॥ कपट ॥

चित कपटी सब से मिलै, माहीं कुटिल कठोर।
इक दुरजन इक आरसी, आगे पीछे और ॥ १ ॥
हेत प्रीति से जो मिलै, ता को मिलिये धाय।
अंतर राखे जो मिलै, ता से मिलै बलाय ॥ २ ॥

॥ आशा ॥

जो तू चाहै मुज्झ को, राखो और न आस।
मुझहिं सरीखा होइ रहु, सब सुख तेरे पास ॥ १ ॥
कबीर जोगी जगत गुरु, तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करै, तो जगत गुरु वह दास ॥ २ ॥
बहुत पसारा जनि करै, करु थोरे की आस।
बहुत पसारा जिन किया, तेई गये निरास ॥ ३ ॥

॥ तृष्णा ॥

की त्रिस्ना है डाकिनी, की जीवन का काल।
और और निसु दिन चहै, जीवन करै बिहाल ॥ १ ॥
त्रिस्ना अग्नि प्रलय किया, तृप्त न कबहूँ होय।
सुर नर मुनि औ रंक सब, भस्म करत है सोय ॥ २ ॥

॥ मन ॥

मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, सो साधू कोइ एक ॥ १ ॥
मन मुरीद संसार है, गुरु मुरीद कोइ साध।
जो मानै गुरु बचन को, ता का मता अगाध ॥ २ ॥

---

(१) शतरंज के खेल में जब प्यादा वजीर बन जाता है तो वह टेढ़ा चल सकता है।

मन को मारूँ पटकि के, टूक टूक होइ जाय।
बिष की क्यारी बोइ के, लुनता क्यों पछिताय ॥ ३ ॥
कबीर मन तो एक है, भावै तहाँ लगाय।
भावै गुरु की भक्ति करु, भावै बिषय कमाय ॥ ४ ॥
मन के मारे बन गये, बन तजि बस्ती माहिं।
कहै कबीर क्या कीजिये, यह मन ठहरै नाहिं ॥ ५ ॥
जेतो लहर समुद्र की, तेती मन की दौर।
सहजै हीरा नीपजे, जो मन आवै ठौर ॥ ६ ॥
दौड़त-दौड़त दौड़िया, जहँ लग मन की दौड़।
दौड़ थकी मन थिर भया, बस्तु ठौर की ठौर ॥ ७ ॥
कबीर मन परबत हुता, अब मैं पाया जानि।
टाँकी लागी सबद की, निकसी कंचन खानि ॥ ८ ॥
अगम पंथ मन थिर करै, बुद्धि करै परबेस।
तन मन सबही छाड़ि के, तब पहुँचे वा देस ॥ ९ ॥
मनहीं को परमोधिये, मनहीं को उपदेस।
जो यहि मन को बसि करै, (तो) सिष्य होय सब देस ॥ १० ॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरत सिला पर धोइये, निकसै रंग अपार ॥ ११ ॥
मन पंछी तब लगि उड़ै, बिषय बासना माहि।
प्रेम बाज की झपट में, जब लगि आयो नाहि ॥ १२ ॥
यह तो गति है अटपटी, सटपट लखै न कोय।
जो मन की खटपट मिटै, चटपट दरसन होय ॥ १३ ॥
मन मनसा को मारि करि, नन्हा करि के पीस।
तब सुख पावै सुन्दरी, पदुम झलक्कै सीस ॥ १४ ॥
तन तुरंग असवार मन, कर्म पियादा साथ।
त्रिस्ना चली सिकार को, बिषै बाज लिये हाथ ॥ १५ ॥

मना मनोरथ छाड़ि दे, तेरा किया न होय।
जो पानी घी नीकसै, सूखा खाय न कोय ॥१६॥
मन नाहीं छाड़ै बिषय, बिषय न मन को छाड़ि।
इन का यही सुभाव है, पूरी लागी आड़ि[1] ॥१७॥

॥ माया ॥

माया छाया एक सी, बिरला जानै कोय।
भगता के पाछे फिरै, सनमुख भागै सोय[2] ॥ १ ॥
माया तो ठगनी भई, ठगन फिरै सब देस।
जा ठग या ठगनी ठगी, ता ठग को आदेस ॥ २ ॥
कबीर माया पापिनी, ताही लागे लोग।
पूरी किनहुँ न भोगिया, या का यही बियोग ॥ ३ ॥
कबीर माया बेसवा, दोनों की इक जात।
आवत कौं आदर करै, जात न पूछै बात ॥ ४ ॥
कबीर माया रूखड़ी, दो फल की दातार।
खावत खरचत मुक्ति दे, संचत नरक दुवार ॥ ५ ॥
खान खरचन बहु अंतरा, मन में देख बिचार।
एक खवाया साधु को, एक मिलाया छार ॥ ६ ॥
माया तो है राम को, मोदी सब संसार।
जा को चिट्ठी ऊतरी, सोई खरचनहार ॥ ७ ॥
माया संचै संग्रहै, वह दिन जानै नाहिं।
सहस बरस की सब करै, मरै महूरत[3] माहिं ॥ ८ ॥
माया के झक[4] जग जरै, कनक कामिनी लागि।
कहै कबीर कस बाचिहै, रुई लपेटी आगि ॥ ६ ॥
कबीर माया सूम की, देखनहीं का लाड़।
जो वा में कौड़ी घटै, साईं तोड़ै हाड़ ॥१०॥

---

(१) अड़, हठ। (२) जो माया अर्थात् संसार से भागै उसके तो वह छाया की नाई पीछें लगी फिरती है, और जो उसके सम्मुख हो कर उसका याचक हो उससे भागती है, अर्थात् नहीं मिलती। (३) छिन। (४) जोश।

सौ पापन को मूल है, एक रुपैया रोक[1] ।
साधू ह्वै संग्रह करै, हारै हरि-सा थोक[2] ॥११॥
माया है दुइ भाँति की, देखी ठोंक बजाय ।
एक मिलावै नाम से, एक नरक लै जाय ॥१२॥
मीठा सब कोइ खात है, बिष ह्वै लागै धाय ।
नीब न कोई पीवसी, सर्ब रोग मिटि जाय ॥१३॥

॥ कनक और कामिनी ॥

चलौं चलौं सब कोइ कहै, पहुँचै बिरला कोय ।
एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥ १ ॥
नारी की झाँई परत, अंधा होत भुजंग ।
कबीर तिन की कौन गति, (जो) नित नारी के संग ॥ २ ॥
कामिनि सुन्दर सर्पिनी, जो छेड़ै तेहि खाय ।
जो गुरु चरनन राचिया, तिन के निकट न जाय ॥ ३ ॥
नैनों काजर पाइ कै, गाढ़े बाँधे केस ।
हाथों मिहँदी लाइ कै, बाघिनि खाया देस ॥ ४ ॥
पर नारी पैनी छुरी, मति कोइ लावो अंग ।
रावन के दस सिर गये, पर नारी के संग ॥ ५ ॥
नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजे दौर ।
देखेही तें बिष चढ़ै, मन आवै कछु और ॥ ६ ॥
सब सोने की सुन्दरी, आवै बास सुबास ।
जो जननी ह्वै आपनी, तऊ न बैठै पास ॥ ७ ॥
नारि नसावै तीन गुन, जो नर पासे होय ।
भक्ति मुक्ति निज ध्यान में, पैठि न सक्कै कोय ॥ ८ ॥
गाय रोय हँसि खेलि के, हरत सबन के प्रान ।
कह कबीर या घात को, समझैं संत सुजान ॥ ९ ॥

---

(१) नक़द । (२) जमा, माल ।

नारि कहौं की नाहरी, नख सिख से यह खाय ।
जल बूड़ा तो ऊबरै, भग बूड़ा बहि जाय ॥१०॥
कबीर नारि की प्रीति से, केते गये गड़ंत ।
केते औरो जाहिंगे, नरक हसंत हसंत ॥११॥
नारी नाहीं जम अहै, तू मत राचै जाय ।
मंजीरी[1] ज्यों बोलि कै, काढ़ि करेजा खाय ॥१२॥
एक कनक अरु कामिनी, बिष फल लिया उपाय ।
देखत ही तें बिष चढ़ै, चाखत ही मरि जाय ॥१३॥
छोटी मोटी कामिनी, सबही बिष की बेल ।
बैरी मारै दाँव दै, यह मारै हँसि खेल ॥१४॥
नारि पुरुष की इसतरी, पुरुष नारि का पूत ।
याही ज्ञान बिचारि कै, छाड़ि चला अवधूत ॥१५॥

॥ निद्रा ॥

कबीर सोया क्या करै, जागि के जपो दयार ।
एक दिना है सोवना, लम्बे पाँव पसार ॥ १ ॥
कबीर सोया क्या करै, उट्ठि न रोवै दुक्ख ।
जा का बासा गोर[2] में, सो क्यों सोवै सुक्ख ॥ २ ॥
कबीर सोया क्या करै, जागन की करु चौंप ।
ये दम हीरा लाल है, गिनि गिनि गुरु को सौंप ॥ ३ ॥
नींद निसानी मीच की, उट्ठ कबीरा जागु ।
और रसायन छाड़ि कै, नाम रसायन लागु ॥ ४ ॥
सोया सो निस्फल गया, जागा सो फल लेय ।
साहिब हक्क न राखसी, जब माँगै तब देय ॥ ५ ॥
पिउ पिउ कहि कहि कूकिये, ना सोइये इसरार[3] ।
रात दिवस के कूकते, कबहुँक लगै पुकार ॥ ६ ॥

---

(१) बिल्ली । (२) कबर । (३) भेंद ।

सोता साध जगाइये, करै नाम का जाप।
यह तीनों सोते भले, साकट सिंह और साँप ॥ ७ ॥
जागन से सोवन भला, जो कोइ जानै सोय।
अंतर लौ लागी रहै, सहजै सुमिरन होय ॥ ८ ॥
जागन में सोवन करै, सोवन में लौ लाय।
सुरति डोरि लागी रहै, तार टूटि नहिं जाय ॥ ९ ॥
कबीर खालिक जागता, और न जागै कोय।
कै जागै बिषया भरा, (कै) दास बंदगी सोय ॥ १० ॥

॥ निंदा ॥

निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥ १ ॥
निन्दक हमरा जनि मरो, जीवो आदि जुगादि।
कबीर सतगुरु पाइया, निन्दक के परसादि ॥ २ ॥
कबीर मेरे साधु की, निन्दा करो न कोय।
जो पै चन्द्र कलंक है, तऊ उँजारा होय ॥ ३ ॥
तिनका कबहुँ न निन्दिये, जो पाँवन तर होय।
कबहूँ उड़ि आँखिन परै, पीर घनेरी होय ॥ ४ ॥
दोष पराये देखि करि, चले हसंत हसंत।
अपने याद न आवई, जिन का आदि न अंत ॥ ५ ॥
निन्दक एकहु मत मिलौ, पापी मिलौ हजार।
इक निन्दक के सीस पर, कोटि पाप को भार ॥ ६ ॥

॥ स्वादिष्ट अहार ॥

खट्टा मीठा चरपरा, जिभ्या सब रस लेय।
चोरों कुतिया मिलि गई, पहरा किस का देय ॥ १ ॥
माखी गुड़ में गड़ि रही, पंख रह्यो लिपटाय।
हाथ मलै औ सिर धुनै, लालच बुरी बलाय ॥ २ ॥

॥ मांस अहार ॥

माँस अहारी मानवा, परतछ राछस अंग।
ता की संगति मत करो, परत भजन में भंग॥ १॥
माँस मछरिया खात हैं, सुरा पान से हेत।
सो नर जड़ से जाहिंगे, ज्यों मूरी का खेत॥ २॥
माँस माँस सब एक है, मुरगी हिरनी गाय।
आँखि देखि नर खात है, ते नर नरकहिं जाय॥ ३॥
मुरगी मुल्ला से कहै, जिबह करत है मोहिं।
साहिब लेखा माँगसी, संकट परिहै तोहिं॥ ४॥
कहता हौं कहि जात हौं, कहा जो मान हमार।
जा का गर तुम काटिहौ, सो फिर काटि तुम्हार॥ ५॥
हिन्दू के दाया नहीं, मिहर तुरुक के नाहिं।
कहै कबीर दोनों गये, लख चौरासी माहिं॥ ६॥

॥ नशा ॥

औगुन कहौं सराब का, ज्ञानवंत सुनि लेय।
मानुष से पसुआ करै, द्रव्य गाँठि को देय॥ १॥
अमल अहारी आतमा, कबहुँ न पावै पारि।
कहै कबीर पुकारि कै, त्यागो ताहि बिचारि॥ २॥
मद तो बहुतक भाँति का, ताहि न जानै कोय।
तनमद मनमद जातिमद, मायामद सब लोय॥ ३॥
बिद्यामद अरु गुनहुँ मद, राजमद्द उनमद्द।
इतने मद को रद्द करै, तब पावै अनहद्द॥ ४॥
कबीर मतवाला नाम का, मद मतवाला नाहिं।
नाम पियाला जो पियै, सो मतवाला नाहिं॥ ५॥

॥ सादा खान पान ॥

रूखा सूखा खाइ के, ठंढा पानी पीव।
देखि बिरानी चूपड़ी, मत ललचावै जीव॥ १॥

कबीर साईं मुज्झ को, रूखी रोटी देय।
चुपड़ी माँगत मैं डरूँ, (कहुँ) रूखी छीनि न लेय॥ २

॥ आनदेव की पूजा ॥

सत्त नाम को छाड़ि कै, करै और को जाप।
बेस्या केरे पूत ज्यों, कहै कौन को बाप॥ १
कामी तरै क्रोधी तरै, लोभी तरै अनंत।
आन उपासी कृतघ्नी, तरै न गुरू कहंत॥ २
एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
जो गहि सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय॥ ३

॥ तीर्थ ब्रत ॥

तीरथ ब्रत करि जग मुआ, जूड़े पानी न्हाय।
सत्त नाम जाने बिना, काल जुगन जुग खाय॥ १
तीरथ चाले दुइ जना, चित चंचल मन चोर।
एको पाप न ऊतरा, मन दस लाये और॥ २
न्हाये धोके क्या भया, (जो) मन का मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय॥ ३
पाहन को क्या पूजिये, जो नहिं देइ जवाब।
अंधा नर आसामुखी, योंही होय खराब॥ ४
पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पुजौं पहार।
ता तें ये चाकी भली, पीसि खाय संसार॥ ५
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जान।
दस द्वारे का देहरा, ता में जोति पिछान॥ ६
काँकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥ ७
पूजा सेवा नेम ब्रत, गुड़ियन का सा खेल।
जब लगि पिउ परिचय नहीं, तब लगि संसय मेल॥ ८

॥ पंडित और संस्कृत ॥

संस्किरत है कूप जल, भाषा बहता नीर।
भाषा सतगुरु सहित है, सत मत गहिर गँभीर ॥ १ ॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥ २ ॥
पंडित केरी पोथियाँ, ज्यों तीतर को ज्ञान।
औरन सगुन बतावहीं, अपना फंद न जान ॥ ३ ॥
पंडित और मसालची, दोनो सूझै नाहिं।
औरन को करैं चाँदना, आप अँधेरे माहिं ॥ ४ ॥

॥ मिश्रित ॥

सपने में साईं मिले, सोवत लिया जगाय।
आँखि न खोलूँ डरपता, मति सुपना है जाय ॥ १ ॥
सोऊँ तो सुपने मिलूँ, जागूँ तो मन माहिं।
लोचन राते सुभ घड़ी, बिसरत कबहूँ नाहिं ॥ २ ॥
यार बुलावै भाव से, मो पै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सक्कूँ पाँय ॥ ३ ॥
साँझ पड़े दिन बीतवे, चकवी दीन्हा रोय।
चल चकवा वा देस को, जहाँ रैन ना होय ॥ ४ ॥
चकवी बिछुड़ी साँझ की, आन मिलै परभात।
जो नर बिछुड़े नाम से, दिवस मिलैं ना रात ॥ ५ ॥
तरवर तासु बिलंबिये, बारह मास फलंत।
सीतल छाया सघन फल, पछी केल करंत ॥ ६ ॥
कबीर सीप समुद्र की, खारा जल नहिं लेय।
पानी पावै स्वाँति का, सोभा सागर देय ॥ ७ ॥
पपिहा पन को ना तजे, तजे तो तन बेकाज।
तन छूटै तो कछु नहीं, पन छूटै है लाज ॥ ८ ॥

चात्रिक[1] सुतहिं पढ़ावही, आन नीर मत लेय।
मम कुल यही सुभाव है, स्वाँति बूँद चित देय॥ ९॥
आदि होत सब आप में, सकल होत ता माहिं।
ज्यों तरवर के बीज में, डार पात फल छाँहिं॥१०॥
खुलि खेलो संसार में, बाँधि न सक्कै कोय।
घाट जगाती क्या करै, जो सिर बोझ न होय॥११॥
देंह धरे का दंड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान से, मूरख भुगतै रोय॥१२॥
जूआ चोरी मुखबिरी, ब्याज घूस पर नार।
जो चाहै दीदार को, एती बस्तु निवार॥१३॥
मो में इतनी सक्ति कहँ, गाओं गला पसार।
बंदे को इतनी घनी, पड़ा रहै दरबार॥१४॥
नाचै गावै पद कहै, नाहीं गुरु से हेत।
कह कबीर क्यों नीपजे, बीज बिहूना खेत॥१५॥
नाम रतन धन संत पहँ, खान खुली घट माहिं।
सेंत मेंत ही देत हौं, गाहक कोई नाहिं॥१६॥

(१) पपीहा।

रैदास जी

——:०:——

जीवन समय पंद्रहवें शतक के पिछले हिस्से से सोलहवें शतक के मध्य तक ! जन्म और सतसंग स्थान- काशी। जाति और आश्रम- चमार, गृहस्थ। गुरु— स्वामी रामानन्द।

यह कबीर साहिब के सहकाली और मीराबाई के गुरु थे। मोची का काम उमर भर किया। हिन्दुस्तान के बहुत से भागों में, मुख्यकर गुजरात प्रांत में, रैदासी पंथ के लाखों आदमी हैं। [सबिस्तर जीवन चरित्र रैदास जी की बानी में छपा है]

॥ दीनता ॥

जा देखे घिन ऊपजै, नरक कुंड में बास।
प्रेम भगति से ऊधरे, प्रगटत जन रैदास ॥ १ ॥
रैदास तूँ काँवच[1] फली, तुझै न छीपै[2] कोइ।
तैं निज नावँ न जानिया, भला कहाँ तें होइ ॥ २ ॥

॥ उपदेश ॥

हरि सा हीरा छाड़ि कै, करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भासै रैदास ॥ १ ॥
अंतरगति राचैं नहीं, बाहर कथैं उदास।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भासै रैदास ॥ २ ॥
रैदास कहै जा के हृदै, रहै रैन दिन राम।
सो भगता भगवंत सम, क्रोध न ब्यापै काम ॥ ३ ॥
रैदास राति न सोइया, दिवस न करिये स्वाद।
अहि-निसि[3] हरि जी सुमिरिये, छाड़ि सकल प्रतिबाद ॥ ४ ॥

॥ मिश्रित ॥

केहि बिधि पार पाइबो, कोउ न कहै समुझाइ।
कवन जुगत अस कीजिये, जा तें आवागवन बिलाइ ॥ १ ॥

---

(१) किवांच जिसके बदन में छू जाने से खाज पैदा होकर ददोरे पड़ जाते हैं। (२) छुए। (३) दिन रात।

बाहर उदक[1] पखारिये, घट भीतर बिबिधि बिकार।
सुद्ध कवन पर होइबो, सुचि कुंजर बिधि ब्यौहार[2] ॥ २ ॥
धर्म निरूपन बहु बिधी, करत दीसै सब लोय।
कवन कर्म तें छूटिये, जेहिं साधे सब सिध होय ॥ ३ ॥
कर्म अकर्म बिचारिये, संका सुनि बेद पुरान।
संसा सद हिरदे बसै, कौन हरै अभिमान ॥ ४ ॥
अनिक जतन निग्रह किये, टारी न टरै भ्रम फाँस।
प्रेय भगति नहिं ऊपजै, ता तें रैदास उदास ॥ ५ ॥
सतजुग सत त्रेताहिं जग[3], द्वापर पूजा चार।
तीनों जुग तीनों दृढ़े, कलि केवल नाम अधार ॥ ६ ॥
परम पुरुष गुरु भेंटिये, पूरब लिखित ललाट।
उनमुन मन मनहीं मिलै, छुटकत बजर कपाट ॥ ७ ॥
रबि प्रकास रजनी जथा, गति जानत सब संसार।
लोहा जिमि पारस छुए, कनक होत नहिं बार ॥ ८ ॥

(१) जल। (२) जैसे हाथी नहा कर फिर सूँड़ से अपने ऊपर धूल डाल लेता है वैसाही इस मन का हाल है। (३) यज्ञ।

गुरू नानक

——:०:——

जीवन समय—१५२६ से १५९५ तक। जनम स्थान—तलवंडी नगर, जिला लाहौर। सतसंग स्थान—सुल्तानपुर और करतारपुर, पंजाब। जासि और आश्रम—बेदी खत्री, गृहस्थ। गुरू—नारद मुनी।

गुरु नानक ने जीवों के चिताने के लिये देशाटन बहुत किया। पहली जात्रा उनकी पूरब को संबत् १५५६ में शुरू हुई पंजाब से आगरा, बिहार, बंगाल, उड़ीसा और आसाम के प्रान्तों में अनुमान ग्यारह बरस तक घूम कर [तवारीख गुरु खालसा में बर्मा देश में जाना भी लिखा है] अपने स्थान सुल्तानपुर पंजाब को लौट आये और वहाँ थोड़े दिन ठहर कर संबत् १५६७ में दूसरे सफर दक्खन को निकले और मारवाड़, गौड़ देश, हैदराबाद, मदरास के सूबों में बिचरते हुए संगलदीप (लंका) तक गये और वहाँ के राजा शिवनाभ को मंत्र उपदेश दिया और उन्ही के हेतु प्राणसंगली का ग्रन्थ रचा। संगलद्वीप के राजा की गोष्टि का समाचार पढ़ने जोग है जो गुरु नानक के सविस्तर जीवन-चरित्र में प्राण-संगली के आदि में छपा है। फिर सुल्तानपुर को लौट कर वहाँ बिश्राम किया और कुछ दिन पीछे अपनी तीसरी जात्रा में उत्तर को सिधारे। बद्री नारायण, नैपाल, सिकिम, भुटान आदि देशों की सैर करते हुए पहाड़ के रास्ते से लौट कर सुल्तानपुर में पधारे। चौथी जात्रा पच्छिम की संबत् १५७० में शुरू हुई और सिंध, मक्का, जद्दा, मदीना, रूम, बगदाद, ईरान, बिलुचिस्तान, कंधार, काबुल और कश्मीर घूमते हुए संबत् १५७९ में कर्तारपुर में आन बिराजे और अनुमान चौबीस बरस के देशाटन के पीछे वहीं सोलह बरस बिश्राम करके परमधाम को सिधारे। गुरु नानक ने ६९ बरस १० महीना १० दिन की अवस्था तक परमार्थ की दौलत दोनों हाथों से लुटाकर और लाखों जीवों को सिख (शिष्य) बना कर चोला छोड़ा।

॥ नाम ॥

साचा नामु अराधिया, जम लै भन्ना जाहि[1]।
नानक करनी सार है, गुरमुख घड़िया राहि[2] ॥ १ ॥
क्या लीता धनवंतिया, क्या छोड़्या निर्धनियाँ।
नानक सच्चे नाम बिनु, अग्गे दोवें सक्खणियाँ[3] ॥ २ ॥

---

(१) जम भाग जाता है। (२) गुरमुख ने अपना रास्ता गढ़ या बना लिया है। (३) आगे दोनों खाली हाथ होंगे।

इक सूही दूजी सोहणी, तीजी सोभावंती नारि ।
सुइने रुप्पे पच्चरी, नानक बिनु नावैं कुड़्यार[1] ॥ ३ ॥
अट्ठे पहर मकंदड़ा, कच्चे कूड़े कंम[2] ।
नाम अराधन ना मिले, नानक हीन करंम ॥ ४ ॥
सहस स्याणप[3] नाम बिनु, करि देखै सभि बाद ।
सोई स्याणप नानका, हिरदे जिन के याद ॥ ५ ॥
भूषण पहिरे भोजन खाये, फूल बहे[4] नर अंधु ।
नानक नामु न चेतनी, लागि रहे दुर्गंधु ॥ ६ ॥

॥ चितावनी ॥

कलियाँ थीं धउले भये[5], धउलियों भये सुपेदु ।
नानक मता मतों दियाँ, उज्जरि गइया खेड़ु[6] ॥ १ ॥
जागो रे जिन जागना, अब जागनि की बारि ।
फेरि कि जागों नानका, जब सोवउ पाँउ पसारि[7] ॥ २ ॥
जित मुह मिलनि मुमारखाँ, लक्खाँ मिलै असीस ।
ते मुह फेर तपाइयहि, तन मन सहे कसीस ॥ ३ ॥[8]
इक दब्बहि इक साड़ियहि, इक दिचनि ढंड लुड़ाइ ।[9]
गई मुमारख नानका, हे है पहुती आय ॥ ४ ॥
मित्राँ दोस्त माल धन, छड्डि चले अति भाइ ।
संगि न कोई नानका, उह हंस[10] इकेला जाइ ॥ ५ ॥

---

(१) यद्यपि कोई स्त्री रक्त-वरण, सुन्दर, शोभावाली और सोने रूपे से जड़ी हुई है तौ भी नाम बिना कूड़े के तुल्य है । (२) कच्चे और कूड़े कामों में आठ पहर जलता रहता है । (३) चतुरता । (४) फूल कर बैठे । (५) काले से भूरे बाल हुए । (६) सोचते स खेल ही बर्बाद गया । (७) फिर क्या जागोगे जब कि मर जावगे । (८) जिस मुँह को मुबारकबाद और लाखों आसीस मिलती है वही मुँह जलाये जायँगे और तन मन को कष्ट होगा । (९) एक गाड़े जाते हैं, एक जलाये जाते हैं, और एक यों ही डाल दिये जाते हैं । (१०) जीव ।

॥ भक्ति ॥

मैं धरि[1] तेरी साहिबा, और नहीं परवाहि ।
जगत पधाणू पंध सिर, गिणवें लेंदा साहि[2] ॥ १ ॥
जेही पिरीति लगंदियाँ, तोड़[3] निबाहू होइ ।
नानक दरगह जाँदियाँ, ठक[4] न सक्कै कोइ ॥ २ ॥
सै सै बारी कट्टियै, जे सीस कीचै कुरबान ।
नानक कीमति ना पवै, परिया दूर मकान[5] ॥ ३ ॥

॥ शूर ॥

सूरा एह न आखियन, जो लड़नि दलाँ में जाय ।
सूरे सोई नानका, जो मंनणु[6] हुकम रजाय ॥ १ ॥
हिरदे जिन के हरि बसै, से जन कहियहि सूर ।
कही न जाई नानका, पूरि रह्या भरपूर ॥ २ ॥

॥ अहंकार ॥

कूड़े करहिं तकब्बरी[7], हिंदू मूसलमान ।
लहन सजाइँ[8] नानका, बिनु नाँवैं सुलतानु ॥ १ ॥

॥ दुबिधा ॥

मन की दुबिधा ना मिटै, मुक्ति कहाँ ते होइ ।
कउड़ी बदले नानका, जन्म चल्या नर खोइ ॥ १ ॥

॥ उपदेश ॥

जित बेले अमृत बसे[9], जीयाँ होवे दाति ।
तित वेले तू उठि बहु[10], त्रिह पहरे पिछली राति ॥ १ ॥
खत्री ब्रह्मण सूद बैस, जातीं पूछि न देई दाति ।
नानक भागें पाइयै, त्रिह पहरे पिछली राति ॥ २ ॥

---

(१) सहारा । (२) जगत (मुसाफिर) मारग के सिर पर खड़ा हैं क्योंकि वह गिनती के दम भर रहा है । (३) अंत तक । (४) रोक । (५) जो सिर [अहँ से तात्पर्य है] को कुरबान करै तो सौ सौ बार काट कर धर दे, ऐसे भक्त की महिमा कोई नहीं जान सकता, उसका घर बहुत दूर पर [अर्थात् ऊँचे लोक में] हो गया । (६) मानते है । (७) झूठे घमंड करते हैं । (८) बिना नाम के बादशाह भी सजा (दंड) पावैंगे । (९) बरसे । (१०) उठ कर बैठ ।

सबद न जानउ गुरु का, पार परउ कित बाट ।
ते नर डूबे नानका, जिन का बड़ बड़ ठाट[१] ॥ ३ ॥
धर अंबर बिच वेलड़ी, तहँ लाल सुगंधा बूल[२] ।
अक्खर इक[३] नाँ आयो, नानक नहीं कबूल ॥ ४ ॥

॥ मिश्रित ॥

रँडियाँ एह न आखियन, जिन के चलन भतार ।
रँडियाँ सेई नानका, जिन बिसरिया करतार[४] ॥ १ ॥
देखि अजाणाँ जट्टियाँ, पसँगु मुहणु किराड़ ।
तत्ते तावण नाइयहि, मुहि मिलनीयाँ अँगियार[५] ॥ २ ॥
देखि कै सूञी[६] झोपड़ी, चोरी करदे चोरु ।
वसि पये धर्मराय दै, कड्ढि लये सभ खोरु[७] ॥ ३ ॥
बरतु नेमु तीरथु भ्रमें, बहुतेरा बोलणि कूड़[८] ।
अंतरि तीरथु नानका, सोधत नाहीं मूड़[९] ॥ ४ ॥
लै फुरमान दिवान दा, खसि प्यादे खाहिं ।
बाँही बद्धे मारियहि, मारें दे कुरलाहिं[१०] ॥ ५ ॥
पाँधे मिस्सर अंधुले[११], काजी मुल्लाँ कोरु[१२] ।
(नानक) तिनाँ पास न भटीयै, जो सबदे दे चोरु ॥ ६ ॥

(१) सामान । (२) फूल । (३) रकार की धुन अर्थात् "राम" । (४) राँड नहीं कहलाती जिनके पति मर गये [चलन] हैं, विधवा वह हैं जिन्होंने करतार को भु[ला] दिया है । (५) जो बनिये अनजान ज़मींदारनियों को देख कर पासंग मारते हैं वह त[पते] तंदूर में भूने जायँगे और उनके मुँह में अंगारे डाले जायँगे । (६) सूनी । (७) वह जम[राज] के बस में पड़ गये जो सब कसर निकाल लेगा । (८) बहुत बकवाद मिथ्या है । (९) अ[न्तर] के तीर्थ को मूरख नहीं खोजते । (१०) दीवान का हुक्म लेकर प्यादे बकरे मार कर [खाते] हैं, ऐसे लोग मुश्क बाँधकर मारे जायँगे और तब चिल्लायँगे । (११) पाधा और ब्रा[ह्मण] अंधे हैं । (१२) कोरे ।

गुसाईं तुलसीदास जी

——:०:——

जीवन समय—१५८९ से १६८० तक।

जन्म स्थान—राजापुर गाँव परगना मऊ जिला बांदा।

सतसंग स्थान—काशी। जाति और आश्रम—कान्यकुब्ज ब्राह्मण, भेष।

गुरू—नरहरिदासजी जो स्वामी रामानन्द के शिष्य थे।

इनको बाल्मीकि जी का अवतार कहते हैं और इसमें सन्देह नहीं कि इनकी हिन्दी भाषा की रामायण बाल्मीकि जी की संस्कृत रामायण से सुंदरता में कम नहीं वरन् इससे सर्व साधारण का कहीं बढ़कर उपकार हुआ है। यह ३१ बरस तक सूरदास जी के समकालीन थे और नाभा जी (भक्त-माल के कर्त्ता) तो इनके परम मित्र और सतसंगी थे। एक बार बाबा मलूकदास से भी मेला हुआ था। गुसाईंजी मथुरा, वृन्दाबन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, चित्रकूट, जगन्नाथपुरी, सोरों आदि तीर्थों में घूमते रहे परन्तु मुख्य स्थान इनके सतसंग का काशी था और वहीं ९१ बरस की अवस्था में अस्सी घाट पर चोला छोड़ा। कथा है कि युवा अवस्था में इनकी गाढ़ी प्रीति अपनी स्त्री के साथ थी, एक दिन वह मायके गई थी सो यह उसके बियोग में ऐसे बिकल हुए कि बरसात की रात में बढ़ी हुई नदी को एक मुर्दे पर बैठ कर पार किया और एक भारी साँप को जो उनकी स्त्री के कोठे से लटकता था पकड़ कर चढ़ गये और स्त्री के सामने जा खड़े हुए। स्त्री बोली कि जो कहीं तुम्हारा ऐसा प्रेम राम के साथ होता तो मट्टी से सोना बन जाते। पूर्ब्ब संस्कार बश यह बचन गुसाईं जी के हृदय में धस गया और उसी दम राम की खोज में घरबार त्याग कर निकल पड़े। इनके ग्रंथों में रामायण और बिनय-पत्रिका जक्त-प्रसिद्ध हैं जिनकी महिमा भारतवर्ष के गाँव-गाँव में और फरंगिस्तान तथा अमरीका तक फैली हुई है।

॥ नाम ॥

राम नाम मनि दीप धरु, जीह[1] देहरीद्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार ॥ १ ॥

राम नाम को अंक है, सब साधन है सून।
अंक गये कछु हाथ नहिं, अंक रहे दसगून ॥ २ ॥

प्रीति प्रतीति सुरीति से, रामनाम जपु राम।
तुलसी तेरो है भलो, आदि मध्य परिनाम ॥ ३ ॥

---

(१) जीभ।

ब्रह्म राम तें नाम बड़, बरदायक बरदानि।
राम चरित सत कोटि[1] महँ, लिय महेस जिय जानि॥ ४॥
रे मन सब से निरसि कै, सरम राम से होहि।
भलो सिखावन देत है, निसि दिन तुलसी तोहि॥ ५॥

॥ प्रेम ॥

तुलसी के मत चातकहिं, केवल प्रेम पियास।
पियत स्वाँति जल जान जग, याचक बारह मास॥ १॥
रटत रटत रसना लगी, तृषा सूखि गइ अंग।
तुलसी चातक प्रेम को, नित नूतन रुचि रंग॥ २॥

॥ बिश्वास ॥

बिनु बिस्वासै भक्ति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहू, जीव न लहि बिस्राम॥ १॥
बढ़ि प्रतीत गठिबन्ध तें, बड़ो योग तें छेम।
बड़ो सुसेवक साइँ तें, बड़ो नेम तें प्रेम॥ २॥

॥ भक्तजन ॥

सबै कहावत राम के, सबहिं राम की आस।
राम कहैं जेहि आपनो, तेहि भजु तुलसीदास॥ १॥
तुलसी दिन भल साह कहँ, भली चोर कहँ रात।
निसिबासर ता कहँ भलो, मानै रामहिं नात॥ २॥

॥ बिनय ॥

मो सम दीन न दीन हित, तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि, हरहु बिषम भव भीर॥

॥ सतसंग ॥

बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम पद, होय न दृढ़ अनुराग॥ १॥

(१) सौ करोड़=एक अरब।

साहिब तें सेवक बड़ो, जो निज धर्म्म सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि[1], नाँधि गयो हनुमान ॥ २ ॥

॥ सूरमा ॥

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान[2] रन पाय रिपु, कायर करहिं प्रलापु[3] ॥

॥ उपदेश ॥

जूझे तें भल बूझिबो, भली जीति तें हारि।
डहँके तें डहकाइबो[4], भलो जो करिय बिचारि ॥ १ ॥
रोस[5] न रसना खोलिये, बरु खोलिय तरवार।
सुनत मधुर परिणाम हित, बोलिय बचन बिचार ॥ २ ॥
तुलसी जस भवितब्यता, तैसी मिलै सहाय।
आपुन आवै ताहि पै, की ताहि तहाँ लै जाय ॥ ३ ॥
मंत्री गुरु अरु वैद्य जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म्म तन तीन कर, होइ बेगही नास ॥ ४ ॥
अवसर कौड़ी जो चुकै[6], बहुरि दियें का लाख।
दुइज न चंदा देखिये, उदय कहा भरि पाख ॥ ५ ॥
आपु आपु कहँ सब भलो, आपुन कहँ कोइ कोइ।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोइ ॥ ६ ॥
कलियुग सम युग आन नहिं, जो नर करि बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल, भव तर बिनहिं प्रयास ॥ ७ ॥

॥ साच ॥

मिथ्या माहुर सज्जनहिं, खलहिं गरल सम साच।
तुलसी छुवत पराय ज्यों, पारद पावक आँच[7] ॥

---

(१) समुद्र। (२) स्थित। (३) डींग। (४) ठगने से ठगा जाना अच्छा है। (५) कड़ी जबान। (६) चूकै। (७) सज्जन को झूठ ज़हर सरीखा और दुर्जन को सच विष समान है वह इनसे ऐसे भागते हैं जैसे आग से पारा।

॥ धीरज ॥

तुलसी असमय को सखा, धीरज धर्म बिबेक।
साहित साहस सत्य ब्रत, राम भरोसो एक॥

॥ बिचारि ॥

लखै अघाने भूख ज्यों, लखै जीति में हारि।
तुलसी सुमति सराहिये, मग पग धरै बिचारि॥

॥ काम क्रोध लोभ ॥

तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिज्ञान सुधाम मन, करहिं निमिष महँ छोभ[1]॥

॥ कपट ॥

हृदय कपट बरबेष[2] धरि, बचन कहै गढ़ि छोलि।
अब के लोग मयूर[3] ज्यों, क्यों मिलिये मन खोलि॥ १॥
हँसनि मिलनि बोलनि मधुर, कटु करतब मन माहँ।
छुवत जो सकुचै सुमति सो, तुलसी तिन की छाँह॥ २॥

॥ आशा ॥

तुलसी अद्भुत देवता, आसा देबी नाम।
सेये योक समर्पई, बिमुख भये अभिराम[4]॥

॥ कामिनी ॥

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह की धारि।
तिन महँ अति दारुन दुखद, माया रूपी नारि॥ १॥
कहा न अबला करि सकै, कहा न सिंधु समाय।
कहा न पावक में जरै, काल काहि नहिं खाय॥ २॥
अमिय गारि गारेउ गरल, नारि करी करतार।
प्रेम बैर की जननि युग, जानहि बिधि न गँवार॥ ३॥

---

(१) चलायमान। (२) अच्छा रूप। (३) मोर। (४) सुख।

॥ निन्दा ॥

तुलसी जे कीरति चहहिं, पर की कीरति खोइ।
तिन के मुँह मसि[1] लागिहै, मिटहि न मरिहैं धोइ॥ १॥
परद्रोही परदार[2] रत, परधन परअपवाद[3]।
ते नर पामर[4] पापमय, देह धरे मनुजाद[5]॥ २॥

॥ संस्कृत ॥

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साच।
काम जो आवे कामरी, का लै करै कमाँच[6]॥

॥ मिश्रित ॥

ग्रह गृहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाई बारुनी[7], कहहु कौन उपचार[8]॥ १॥
तुलसी अपनो आचरन, भलो न लागत कासु।
तेहि न बसाय जो खात नित, लहसुनहूँ की बासु॥ २॥
मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान को एक।
पालै पोषै सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक॥ ३॥
हित पुनीत सब स्वारथहि, अरि असुद्ध बिनु जाड़।
निज मुख मनिक सम दसन[9], भूमि परे तें हाड़॥ ४॥
बरषि बिस्व हर्षित करत, हरत ताप औ प्यास।
तुलसी दोष न जलद[10] को, जो जल जरै जवास[11]॥ ५॥
तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन॥ ६॥

---

(१) स्याही। (२) पराई स्त्री। (३) दूसरों की निन्दा। (४) नीच। (५) राक्षस। (६) दुशाला। (७) शराब। (८) इलाज, यत्न। (९) दाँत। (१०) बादल। (११) जवासा घास जो बरसात में जल जाती है।

दादू दयाल

—: ० :—

जीवन समय—१६०१ से १६६० तक। जन्म स्थान—अहमदाबाद, गुजरात देश। सतसंग स्थान—नराना नगर और भराना की पहाड़ी राजपूताना में। जात—गुजराती ब्राह्मण दादू पंथियों के अनुसार, धुनियां लोक बाद अनुसार। आश्रम—गृहस्थ। गुरू—परम पुरुष एक बूढ़े साधू के भेष में।

यह अकबर बादशाह के सहकाली थे जो उनमें बड़ी श्रद्धा रखता था। इनका क्षमा और दया का अंग इतना बड़ा था कि लोग दादू दयाल के नाम से पुकारने लगे। इनके मति के ५२ प्रसिद्ध अखाड़े राजपूताना, मारवाड़, पंजाब, गुजरात आदि देशों में हैं। इस पंथ में दो प्रकार के साधू हैं एक भेषधारी विरक्त जो गेरुआ वस्त्र पहिनते हैं, दूसरे नागा जो सफेद कपड़े पहिनते हैं और लेन देन खेती नौकरी बैद्यक आदि ब्यौहार करते हैं।

[पूरा जीवन-चरित्र दादू दयाल की बानी भाग १ में दिया है तथा संत महात्माओं के जीवन चरित्र संग्रह पुस्तक में चित्र सहित छपा है]

॥ गुरुदेव ॥

(दादू) गैब माहिं गुरुदेव मिल्या, पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धर्‌या, देख्या अगम अगाध ॥ १ ॥
(दादू) सतगुरु सूँ सहजैं मिल्या, लीया कंठ लगाइ।
दाया भई दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ ॥ २ ॥
सतगुरु काढ़े केस गहि, डूबत इहि संसार।
दादू नाव चढ़ाइ करि, कीये पैली पार[1] ॥ ३ ॥
दादू उस गुरुदेव की, मैं बलिहारी जाउँ।
जहँ आसन अमर अलेख था, ले राखे उस ठाउँ ॥ ४ ॥
(दादू) सतगुरु मारे सबद सों, निरखि निरखि निज ठौर।
राम अकेला रहि गया, चीत[2] न आवै और ॥ ५ ॥
सबद दूध घृत राम रस, कोइ साध बिलोवणहार।
दादू अमृत काढ़ि ले, गुरमुखि गहै बिचारि ॥ ६ ॥

---

(१) पल्ली पार। (२) चित्त।

देवै किरका[1] दरद का, टूटा जोड़ै तार।
दादू साधै सुरति को, सो गुर पीर हमार॥ ७॥
सतगुर मिलै तो पाइये, भक्ति मुक्ति भंडार।
दादू सहजैं देखिये, साहिब का दीदार॥ ८॥
(दादू) सतगुर माला मन दिया, पवन सुरति सूँ पोइ।
बिन हाथों निस दिन जपै, परम जाप यूँ होइ॥ ९॥
(दादू) यहु मसीत[2] यहु देहुरा[3], सतगुर दिया दिखाइ।
भीतरि सेवा बंदगी, बाहरि काहे जाइ॥१०॥
मन ताजी[4] चेतन चढ़ै, ल्यौ[5] की करै लगाम।
सबद गुरू का ताजना[6], कोइ पहुँचै साध सुजान॥११॥

॥ शब्द ॥

(दादू) सब दैं बंध्या सब रहै, सबदैं सब ही जाइ।
सबदैं ही सब ऊपजै, सबदैं सबै समाय॥ १॥
(दादू) सबदैं ही सचु पाइये, सबदैं ही संतोष।
सबदैं ही इस्थिर भया, सबदैं भागा सोक॥ २॥
(दादू) सबदैं ही सूषिम भया, सबदैं सहज समान।
सबदैं ही निर्गुण मिलै, सबदैं निर्मल ज्ञान॥ ३॥
(दादू) सबदैं ही मुक्ता भया, सबदैं समझै प्राण।
सबदैं ही सूझै सबै, सबदैं सुरझै जाण[7]॥ ४॥
पहली किया आप थैं, उतपत्ती ओंकार।
ओंकार थैं ऊपजे, पंच तत्त आकार॥ ५॥
पंच तत्त थैं घट भया, बहु बिधि सब बिस्तार।
दादू घट थैं ऊपजे, मैं तैं बरण बिचार॥ ६॥
एक सबद सौं ऊनवै, बर्षन लागे आइ।
एक सबद सौं बीखरै, आप आप कौं जाइ॥ ७॥

---

(१) किनका। (२) मसजिद। (३) मंदिर। (४) घोड़ा। (५) लौ। (६) कोड़ा। (७) ज्ञान।

(दादू) सबद बाण गुर साध के, दूरि दिसंतर जाइ ।
जेहिं लागे सो ऊबरे, सूते लिये जगाइ ॥ ८
सबद जरै सो मिलि रहै, एकै रस पूरा ।
कायर भागै जीव ले, पग माँडै सूरा ॥ ९
सबद सरोवर[1] सूभर[2] भर्‌या, हरि जल निर्मल नीर ।
दादू पीवैं प्रीत सौं, तिन के अखिल[3] सरीर ॥ १०

॥ सुमिरन ॥

दादू नीका नाँव है, हरि हिरदै न बिसारि ।
मूरति मन माहैं बसै, साँसै साँस सँभारि ॥ १
साँसै साँस सँभालताँ, एक दिन मिलिहै आइ ।
सुमिरण पैंड़ा सहज का, सतगुर दिया बताइ ॥ २
दादू राम सँभालि ले, जब लग सुखी सरीर ।
फिर पीछैं पछिताहिगा, जब तन मन धरै न धीर ॥ ३
मेरे संसा को नहीं, जीवन मरन का राम ।
सुपनैं हीं जनि बीसरै, मुख हिरदे हरि नाम ॥ ४
हरि भजि साफल[4] जीवना, पर उपगार समाइ ।
दादू मरणा तहँ भला, जहँ पसु पंखी खाइ ॥ ५
(दादू) अगम बस्त पानैं[5] पड़ी, राखी मंझि छिपाइ ।
छिन छिन सोई सँभालिये, मति वै बीसरि जाइ ॥ ६
(दादू) राम नाम निज औषधी, काटै कोटि बिकार ।
बिषम व्याधि थैं ऊबरै, काया कंचन सार ॥ ७
(दादू) सब सुख सरग पयाल[6] के, तोल तराजू बाहि ।
हरि सुख एक पलक्क का, ता सम कह्या न जाइ ॥ ८
कौन पटंतर[7] दीजिये, दूजा नाहीं कोइ ।
राम सरीखा राम है, सुमिर्‌याँ ही सुख होइ ॥ ९

(१) तालाब । (२) शुभ्र=प्रकाशमान । (३) पूरा । (४) सुफल । (५) हाथ ।
(६) पाताल । (७) दृष्टांत ।

नाँव लिया तब जाणिये, जे तन मन रहै समाइ।
आदि अंत मध एक रस, कबहूँ भूलि न जाइ ॥१०॥

॥ चितावनी ॥

(दादू) जे साहिब कौं भावै नहीं, सो बाट न बूझी रे।
साइँ सौं सन्मुख रही, इस मन सौं जूझी रे ॥ १ ॥
दादू अचेत न होइये, चेतन सौं चित लाइ।
मनवाँ सोता नींद भरि, साइँ संग जगाइ ॥ २ ॥
आपा पर सब दूरि करि, राम नाम रस लागि।
दादू औसर जात है, जागि सकै तो जागि ॥ ३ ॥
दुख दरिया संसार है, सुख का सागर राम।
सुख सागर चलि जाइये, दादू तजि बेकाम ॥ ४ ॥
(दादू) झाँती पाये पसु पिरी, हाँणे लाइ म बेर।
साथ सभोई हल्यौ, पोइ पसंदो केर ॥ ५ ॥[1]
काल न सूझै कंध पर, मन चितवै बहु आस।
दादू जिव जाणै नहीं, कठिन काल की पास[2] ॥ ६ ॥
जहँ जहँ दादू पग धरै, तहाँ काल का फंध।
सिर ऊपर साँधे[3] खड़ा, अजहुँ न चेतै अंध ॥ ७ ॥
यहु बन हरिया देखि करि, फूल्यो फिरै गँवार।
दादू यहु मन मिरगला, काल अहेड़ी लार ॥ ८ ॥
कहताँ सुनताँ देखताँ, लेताँ देताँ प्राण।
दादू सो कतहूँ गया, माटी धरी मसाण ॥ ९ ॥
पंथ दुहेला[4] दूरि घर, संग न साथी कोइ।
उस मारग हम जाहिंगे, दादू क्यौं सुख सोइ ॥१०॥

---

(१) झाँकी पाकर प्रीतम का दर्शन कर, अब (हाँणे) देर (बेर) मत (म) लगा (लाइ)—साथी सभो (सभाई) चल दिये (हल्यौ) पीछे (पोइ) कौन (केर) देखेगा [पसंदो]। (२) फाँस। (३) कमान खींचे। (४) कठिन।

काल झाल में जग जलै, भाजि न निकसै कोइ ।
दादू सरणै साच कै, अभय अमर पद होइ ॥११॥
ये सज्जन दुर्जन भये, अंति काल की बार ।
दादू इन में को नहीं, बिपति बटावणहार ॥१२॥
काल हमारा कर गहै, दिन दिन खैंचत जाइ ।
अजहुँ जीव जागै नहीं, सोवत गई बिहाइ ॥१३॥
धरती करते एक डग, दरिया करते फाल ।
हाँकौं परबत फाड़ते, सो भी खाये काल ॥१४॥

॥ भक्ति और लव ॥

जोग समाधि सुख सुरति सौं, सहजैं सहजैं आव ।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव ॥ १ ॥
ल्यौ लागी तब जाणिये, जे कबहूँ छूटि न जाइ ।
जीवत यौं लागी रहै, मूवाँ मंझि समाइ ॥ २ ॥
मन ताजी चेतन चढ़ै, ल्यौ की करै लगाम ।
सबद गुरू का ताजना, कोइ पहुँचै साध सुजान ॥ ३ ॥
आदि अंत मधि एक रस, टूटै नहिं धागा ।
दादू एकै रहि गया, जब जाणी जागा ॥ ४ ॥
अर्थ अनूपम आप है, और अनरथ भाई ।
दादू ऐसी जानि करि, ता सौं ल्यौ लाई ॥ ५ ॥
सुरति अपूठो[1] फेरि करि, आतम माहैं आण ।
लागि रहै गुरदेव सौं, दादू सोई सयाण ॥ ६ ॥
जहँ आतम तहँ राम है, सकल रह्या भरपूर ।
अंतरगति ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवग सूर ॥ ७ ॥
एक मना लागा रहै, अंत मिलैगा सोइ ।
दादू जा के मन बसै, ता कौं दरसन होइ ॥ ८ ॥

(१) पीछे ।

दादू निबहै त्यूँ चलै, धरि धीरज मन माहिं।
परसैगा पिव एक दिन, दादू थाकै नाहिं॥ ६॥

॥ बिरह ॥

मन चित चातृक ज्यूँ रटै, पिव पिव लागी प्यास।
दादू दरसन कारने, पुरवहु मेरी आस॥ १॥

(दादू) बिरहिनि दुख कासनि[1] कहै, कासनि देइ सँदेस।
पंथ निहारत पीव का, बिरहिनि पलटे केस[2]॥ २॥

ना वहु मिलै न मैं सुखी, कहु क्यूँ जीवन होइ।
जिन मुझ कौं घायल किया, मेरी दारू[3] सोइ॥ ३॥

(दादू) मैं भिष्यारी मंगिता, दरसन देहु दयाल।
तुम दाता दुख भंजिता, मेरी करहु सँभाल॥ ४॥

दीन दुनी सदकै[4] करौं, टुक देखण दे दीदार।
तन मन भी छिन छिन करौं, भिस्त दोजग[5] भी वार॥ ५॥

बिरह अगिन तन जालिये, ज्ञान अगिनि दौं लाइ।
दादू नख सिख परजलै[6], तब राम बुझावै आइ॥ ६॥

अंदर पीड़ न ऊभरै, बाहर करै पुकार।
दादू सो क्योंकरि लहै, साहिब का दीदार॥ ७॥

(दादू) कर बिन सर बिन कमान बिन, मारै खैंचि कसीस[7]।
लागी चोट सरीर में, नख सिख सालै सीस॥ ८॥

(दादू) बिरह जगावै दरद कौं, दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरति कौं, पंच पुकारै पीव॥ ९॥

---

(१) किस से। (२) बाल सपेद हो गये। (३) दवा। (४) न्योछावर। (५) स्वर्ग और नर्क। (६) भभक कर जलै। (७) कसकर।

(दादू) नैन हमारे ढीठ हैं, नाले नीर न जाहिं।
सूके सराँ सहेत वै, करँक भये गलि माहिं ॥१०॥[1]
(दादू) जब बिरहा आया दरद सौं, तब कड़वे लागे काम।
काया लागी काल है, मीठा लागा नाम ॥११॥
जे कबहूँ बिरहिनि मरै, तौ सुरति बिरहिनी होइ।
दादू पिव पिव जीवताँ, मुवा भी टेरै सोइ ॥१२॥
मीयाँ मैंडा आव घर, वाँढी वत्ताँ लोइ।
दुखडे मूँहडे गये, मराँ बिछोहे रोइ ॥१३॥[2]

॥ प्रेम ॥

प्रेम भगति जब ऊपजै, निहचल सहज समाध।
दादू पीवै प्रेम रस, सतगुर के परसाद ॥ १ ॥
दादू राता राम का, पीवै प्रेम अघाइ।
मतवाला दीदार का, माँगै मुक्ति बलाइ ॥ २ ॥
ज्यूँ अमली के चित अमल है, सूरे के संग्राम।
निरधन के चित धन बसै, यौं दादू के राम ॥ ३ ॥
जो कुछ दिया हम कौं, सो सब तुमहीं लेहु।
तुम बिन मन मानै नहीं, दरस आपणा देहु ॥ ४ ॥
भोरे भोरे तन करै, वंडे करि कुरबाण।
मीठा कौड़ा ना लगै, दादू तौहू साण ॥ ५ ॥[3]

---

(१) कहावत है कि असह दुल में आँसू भी सूख जाते हैं इसी मसल को दादू साहिब अलंकार में फर्माते हैं कि जैसे तलैया (सरा) के जीव मछली कछुए मेंढक आदि ऐसे निडर (ढीठ) या बेपरवाह होते हैं कि तलैया से पानी के साथ बह कर नाले में अपनी रक्षा नहीं करते बल्कि तलैया ही में पड़े रहते हैं और उसी के साथ (सहित) सूख कर चमड़ी (करंक) बन जाते हैं ऐसी ही दशा हमारी आँखों की है कि आँसू की धारा को त्याग कर जहाँ की तहाँ सूख या बैठ गईं। (२) हे मेरे मालिक मेरे घर आव अर्थात् मेरे मन में बास कर, मैं दुहागिन लोक में फिरती हूँ। मेरे दुख बढ़ गये हैं, और तेरे बियोग में मरती हूँ। (३) अपने तन की प्रीतम के आगे बोटी बोटी करके कुरबानी करै और बाँट दे फिर भी वह मधुर प्रीतम कड़वा न लगै तब वह तुझे मिलै [साण = साथ]।

जब लग सीस न सौंपिये, तब लग इसक न होइ।
आसिक मरणै ना डरै, पिया पियाला सोइ ॥ ६ ॥
इसक मुहब्बत मस्त मन, तालिब दर दीदार।
दोस्त दिल हर दम हजूर, यादगार हुसियार ॥ ७ ॥
दादू इसक अलाह का, जे कबहूँ प्रगटै आइ।
(तौ) तन मन दिल अरवाह[1] का, सब पड़दा जलि जाय ॥ ८ ॥
दादू पाती प्रेम की, बिरला बाँचै कोइ।
बेद पुरान पुस्तक पढ़ैं, प्रेम बिना क्या होइ ॥ ६ ॥
प्रीत जो मेरे पीव की, पैठी पिंजर माहिं।
रोम रोम पिव पिव करै, दादू दूसर नाहिं ॥१०॥
आसिक मासुक ह्वै गया, इसक कहावै सोइ।
दादू उस मासूक का, अल्लहि आसिक होइ ॥११॥
इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह औजूद[2] है, इसक अलह का रंग ॥१२॥

॥ बिश्वास ॥

(दादू) सहजैं सहजैं होइगा, जे कुछ रचिया राम।
काहे कौं कलपै मरै, दुखी होत बेकाम ॥ १ ॥
(दादू) मनसा बाचा कर्मना, साहिब का बेसास[3]।
सेवग सिरजनहार का, करै कौन की आस ॥ २ ॥
(दादू) च्यंता कीयाँ कुछ नहीं, च्यंता जिव कूँ खाइ।
हूणा था सो ह्वै रह्या, जाणा है सो जाइ ॥ ३ ॥
(दादू) राजिक[4] रिजक[5] लिये खड़ा, देवै हाथौं हाथ।
पूरिक पूरा पासि है, सदा हमारे साथ ॥ ४ ॥

॥ दुबिधा ॥

जब हम ऊजड़ चालते, तब कहते मारग माहिं।
दादू पहुँचे पंथ चलि, कहैं यहु मारग नाहिं ॥ १ ॥

(१) सुरत। (२) वजूद, व्यक्ति। (३) बिश्वास। (४) रोजी देने वाला। (५) रोजी।

द्वै पष उपजी परिहरै, निर्पष अनभै सार ।
एक राम दूजा नहीं, दादू लेहु बिचार ॥ २ ॥
दादू संसा आरसी, देखत दूजा होइ ।
भरम गया दुबिध्या मिटी, तब दूसर नाहीं कोइ ॥ ३ ॥

॥ समरथ ॥

समरथ सब बिधि साइयाँ, ता कीं मैं बलि जाउँ ।
अंतर एक जु सो बसै, औराँ चित्त न लाउँ ॥ १ ॥
ज्यूँ राखैं त्यूँ रहैंगे, अपणे बल नाहीं ।
सबै तुम्हारे हाथि है, भाजि कत जाहीं ॥ २ ॥
दादू दूजा क्यूँ कहै, सिर परि साहिब एक ।
सो हम कूँ क्यूँ बीसरै, जे जुग जाहिं अनेक ॥ ३ ॥
कर्म फिरावै जीव कौं, कर्मों कौं करतार ।
करतार कौं कोई नहीं, दादू फेरनहार ॥ ४ ॥
आप अकेला सब करै, औरूँ के सिर देइ ।
दादू सोभा दास कूँ, अपना नाम न लेइ ॥ ५ ॥

॥ बेहद ॥

देखि दिवाने है गये, दादू खरे सयान ।
वार पार कोइ ना लहै, दादू है हैरान ॥ १ ॥
पार न देवै आपणा, गोप गुझ[1] मन माहिं ।
दादू कोई ना लहै, केते आवैं जाहिं ॥ २ ॥

॥ निज करता का निर्णय ॥

जाती[2] नूर अलाह का, सिफाती[3] अरवाह ।
सिफाती सिजदा करै, जाती बेपरवाह ॥ १ ॥
वार पार नहिं नूर का, दादू तेज अनंत ।
कीमति नहिं करतार की, ऐसा है भगवंत ॥ २ ॥

---

(१) गुप्त और छिपा । (२) निर्गुण । (३) सर्गुण ।

जीयें[1] तेल तिलन्नि में, जीयें गंधि फुलन्नि।
जीयें माखण षीर में, ईयें रब रूहन्नि[2] ॥ ३ ॥

॥ बिनय ॥

तिल तिल का अपराधी तेरा, रती रती का चोर।
पल पल का मैं गुनही[3] तेरा, बक्सौ औगुण मोर ॥ १ ॥
गुनहगार अपराधी तेरा, भाजि कहाँ हम जाहिं।
दादू देख्या सोधि सब, तुम बिन कहिं न समाहिं ॥ २ ॥
आदि अंत लौं आइ करि, सुकिरत कछू न कीन्ह।
माया मोह मद मंछरा[4], स्वाद सबै चित दीन्ह ॥ ३ ॥
दादू बंदीवान[5] है, तू बंदीछोड़ दिवान।
अब जनि राखौ बंदि में, मीरा[6] मेहरबान ॥ ४ ॥
दिन दिन नौतम भगति दे, दिन दिन नौतम नाँव।
दिन दिन नौतम नेह दे, मैं बलिहारी जाँव ॥ ५ ॥
साईं सत संतोष दे, भाव भगति बेसास।
सिदक सबूरी साच दे, माँगै दादूदास ॥ ६ ॥
पलक माहिं प्रगटै सही, जे जन करै पुकार।
दीन दुखी तब देखि करि, अति आतुर तिहिं बार ॥ ७ ॥
आगैं पीछैं सँगि रहै, आप उठाये भार।
साध दुखी तब हरि दुखी, ऐसा सिरजनहार ॥ ८ ॥
अंतरजामी एक तूँ, आतम के आधार।
जे तुम छाड़हु हाथ थैं, तौ कौण सँवाहणहार[7] ॥ ९ ॥
तुम हौ तैसी कीजिये, तौ छूटैंगे जीव।
हम हैं ऐसी जनि करौ, मैं सदिकै जाऊँ पीव ॥ १० ॥
साहिब दर दादू खड़ा, निसि दिन करै पुकार।
मीराँ मेरा मिहर करि, साहिब दे दीदार ॥ ११ ॥

---

(१) जैसे। (२) तैसे ही मालिक सुरतों में है। (३) गुनहगार। (४) मत्सर = अहंकार। (५) कैदी। (६) हे मालिक। (७) सम्हालने वाला।

तुम कूँ हम से बहुत हैं, हम कूँ तुम से नाहिं।
दादू कूँ जनि परिहरौ, तूँ रहु नैनहुँ माहिं ॥१२॥

॥ साध ॥

साधू जन संसार में, पारस परगट गाइ।
दादू केते ऊधरे, जेते परसे आइ ॥ १ ॥
साधू जन संसार में, सीतल चंदन बास।
दादू केते ऊधरे, जे आये उन पास ॥ २ ॥
जहँ अरंड अरु आक थे, तहँ चंदन ऊग्या माहिं।
दादू चंदन करि लिया, आक कहै को नाहिं ॥ ३ ॥
साध मिलै तब ऊपजे, हिरदे हरि का हेत।
दादू संगति साध की, कृपा करै तब देत ॥ ४ ॥
जब दरवौ तब दीजियौ, तुम पैं माँगों येहु।
दिन प्रति दरसन साध का, प्रेम भगति दिढ़ देहु ॥ ५ ॥
दादू चंनन कदि कह्या, अपणा प्रेम प्रकास।
दह दिसि परगट ह्वै रह्या, सीतल गंध सुबास ॥ ६ ॥
पर उपगारी संत सब, आये यहि कलि माहिं।
पिवैं पिलावैं राम रस, आप सुवारथ नाहिं ॥ ७ ॥
साध सबद सुख बरखिहै, सीतल होइ सरीर।
दादू अंतर आतमा, पीवै हरि जल नीर ॥ ८ ॥
औगुण छाड़ै गुण गहै, सोई सिरोमणि साध।
गुण औगुण थैं रहित है, सो निज ब्रह्म अगाध ॥ ६ ॥
बिष का अमृत करि लिया, पावक का पाणी।
बाँका सूधा करि लिया, सो साध बिनाणी[1] ॥१०॥

॥ भेष ॥

ज्ञानी पंडित बहुत हैं, दाता सूरु अनेक।
दादू भेष अनंत हैं, लागि रह्या सो एक ॥ १ ॥

(१) विज्ञानी।

कनक कलस बिष सूँ भर्‌या, सो किस आवै काम।
सो धनि कूटा चाम का, जा में अनृत राम॥ २ ॥[1]
स्वाँग साध बहु अंतरा, जेता धरनि अकास।
साधू राता राम सूँ, स्वाँग जगत की आस॥ ३ ॥
(दादू) स्वाँगी सब संसार है, साधू कोई एक।
हीरा दूरि दिसंतरा, कंकर और अनेक॥ ४ ॥
दादू एकै आतमा, साहिब है सब माहिं।
साहिब के नाते मिलै, भेष पंथ के नाहिं॥ ५ ॥
(दादू) जग दिखलावै बावरी, षोड़स करै सिंगार।
तहँ न सँवारै आप कूँ, जहँ भीतर भरतार॥ ६ ॥

॥ दुर्जन ॥

निगुणा गुण मानै नहीं, कोटि करै जे कोइ।
दादू सब कुछ सौंपिये, सो फिर बैरी होइ॥ १ ॥
दादू सगुणा लीजिये, निगुणा दीजै डारि।
सगुणा सन्मुख राखिये, निगुणा नेह निवारि॥ २ ॥
दादू दूध पिलाइये, बिषहर बिष करि लेइ।
गुण का अवगुण करि लिया, ताही कौं दुख देइ॥ ३ ॥
मूसा जलता देख करि, दादू हंस-दयाल।
मानसरोवर ले चल्या, पंखा काटै काल॥ ४ ॥[2]

॥ सतसंग दुर्जन को ॥

सतगुर चंदन बावना, लागे रहैं भुवंग।
दादू बिष छाड़ैं नहीं, कहा करै सतसंग॥ १ ॥

---

(१) सोने का कलसा जिसमें बिष भरा हो बेकाम है, परंतु कूटे चमड़े का कुप्पा भी जिसमें नाम (राम) रूपी अमृत भरा हो धन्य (धनि) है। (२) कथा है कि एक चूहे को आग में जलता देख कर एक हंस ने दया करके रक्षा के लिये उसे अपने परों पर बैठा लिया और समुद्र पार ले उड़ा, परंतु चूहे ने अपने सुभाव बस हंस के परों को काट डाला जिससे दोनों समुद्र में गिर पड़े।

तुम कूँ हम से बहुत हैं, हम कूँ तुम से नाहिं ।
दादू कूँ जनि परिहरौ, तूँ रहु नैनहुँ माहिं ॥१२॥

॥ साध ॥

साधू जन संसार में, पारस परगट गाइ ।
दादू केते ऊधरे, जेते परसे आइ ॥ १ ॥
साधू जन संसार में, सीतल चंदन बास ।
दादू केते ऊधरे, जे आये उन पास ॥ २ ॥
जहँ अरंड अरु आक थे, तहँ चंदन ऊग्या माहिं ।
दादू चंदन करि लिया, आक कहै को नाहिं ॥ ३ ॥
साध मिलै तब ऊपजै, हिरदे हरि का हेत ।
दादू संगति साध की, कृपा करै तब देत ॥ ४ ॥
जब दरवौ तब दीजियौ, तुम पैं माँगों येहु ।
दिन प्रति दरसन साध का, प्रेम भगति दिढ़ देहु ॥ ५ ॥
दादू चंनन कदि कह्या, अपणा प्रेम प्रकास ।
दह दिसि परगट ह्वै रह्या, सीतल गंध सुबास ॥ ६ ॥
पर उपगारी संत सब, आये यहि कलि माहिं ।
पिवैं पिलावैं राम रस, आप सुवारथ नाहिं ॥ ७ ॥
साध सबद सुख बरखिहै, सीतल होइ सरीर ।
दादू अंतर आतमा, पीवै हरि जल नीर ॥ ८ ॥
औगुण छाड़ै गुण गहै, सोई सिरोमणि साध ।
गुण औगुण थैं रहित है, सो निज ब्रह्म अगाध ॥ ९ ॥
बिष का अमृत करि लिया, पावक का पाणी ।
बाँका सूधा करि लिया, सो साध बिनाणी[1] ॥१०॥

॥ भेष ॥

ज्ञानी पंडित बहुत हैं, दाता सूरु अनेक ।
दादू भेष अनंत हैं, लागि रह्या सो एक ॥ १ ॥

(१) विज्ञानी ।

कनक कलस बिष सूँ भर्‍या, सो किस आवै काम।
सो धनि कूटा चाम का, जा में अनृत राम॥ २॥[1]
स्वाँग साध बहु अंतरा, जेता धरनि अकास।
साधू राता राम सूँ, स्वाँग जगत की आस॥ ३॥
(दादू) स्वाँगी सब संसार है, साधू कोई एक।
हीरा दूरि दिसंतरा, कंकर और अनेक॥ ४॥
दादू एकै आतमा, साहिब है सब माहिं।
साहिब के नाते मिलै, भेष पंथ के नाहिं॥ ५॥
(दादू) जग दिखलावै बावरी, षोड़स करै सिंगार।
तहँ न सँवारै आप कूँ, जहँ भीतर भरतार॥ ६॥

॥ दुर्जन ॥

निगुणा गुण मानै नहीं, कोटि करै जे कोइ।
दादू सब कुछ सौंपिये, सो फिर बैरी होइ॥ १॥
दादू सगुणा लीजिये, निगुणा दीजै डारि।
सगुणा सन्मुख राखिये, निगुणा नेह निवारि॥ २॥
दादू दूध पिलाइये, बिषहर बिष करि लेइ।
गुण का अवगुण करि लिया, ताही कौं दुख देइ॥ ३॥
मूसा जलता देख करि, दादू हंस-दयाल।
मानसरोवर ले चल्या, पंखा काटै काल॥ ४॥[2]

॥ सतसंग दुर्जन को ॥

सतगुर चंदन बावना, लागे रहैं भुवंग।
दादू बिष छाड़ैं नहीं, कहा करै सतसंग॥ १॥

---

(१) सोने का कलसा जिसमें बिष भरा हो बेकाम है, परंतु कूटे चमड़े का कुप्पा भी जिसमें नाम (राम) रूपी अमृत भरा हो धन्य (धनि) है। (२) कथा है कि एक चूहे को आग में जलता देख कर एक हंस ने दया करके रक्षा के लिये उसे अपने परों पर बैठा लिया और समुद्र पार ले उड़ा, परंतु चूहे ने अपने सुभाव बस हंस के परों को काट डाला जिससे दोनों समुद्र में गिर पड़े।

कोटि बरस लौं राखिये, बंसा[1] चंदन पास।
दादू गुण लीये रहै, कदे न लागै बास ॥ २ ॥
कोटि बरस लौं राखिये, लोहा पारस संग।
दादू रोम का अंतरा, पलटै नाहीं अंग ॥ ३ ॥
कोटि बरस लौं राखिये, पत्थर पानी माहिं।
दादू आड़ा अंग है, भीतर भेदै नाहिं ॥ ४ ॥

॥ सार गहनी ॥

पहिली न्यारा मन करै, पीछै सहज सरीर।
दादू हंस बिचार सौं, न्यारा कीया नीर ॥ १ ॥
मन हंसा मोती चुणै, कंकर दीया डारि।
सतगुर कहि समझाइया, पाया भेद बिचारि ॥ २ ॥
दादू हंस परेखिये, उत्तिम करणी चाल।
बगुला बैसै ध्यान धरि, परतषि कहिये काल ॥ ३ ॥
गऊ बच्छ का ज्ञान गहि, दूध रहै ल्यौ लाइ।
सींग पूंछ पग परिहरै, अस्थन लागै धाइ ॥ ४ ॥

॥ मध्य ॥

सहज रूप मन का भया, जब द्वै द्वै मिटी तरंग।
ताता सीला सम भया, तब दादू एकै अंग ॥ १ ॥
कुछ न कहावै आप कौं, काहू संगि न जाइ।
दादू निपष है रहै, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥ २ ॥
ना हम छाड़ैं ना गहैं, ऐसा ज्ञान बिचार।
मद्धि भाइ[2] सेवैं सदा, दादू मुकति दुवार ॥ ३ ॥
बैरागी बन में बसै, घरबारी घर माहिं।
राम निराला रहि गया, दादू इन में नाहिं ॥ ४ ॥

(१) बांस। (२) मध्य भाव।

॥ घट मठ ॥

(दादू) जा कारनि जग ढूँढ़िया, सो तौ घट ही माहिं।
मैं तैं पड़दा भरम का, ता थैं जानत नाहिं ॥ १ ॥
सब घटि माहैं रमि रह्या, बिरला बूझै कोइ।
सोई बूझै राम को, जो राम सनेही होइ ॥ २ ॥

॥ सेवक ॥

सेवग सेवा करि डरै, हम थैं कछू न होइ।
तूँ है तैसी बंदगी, करि नहिं जानै कोइ ॥ १ ॥
फल कारण सेवा करै, याचै त्रिभुवन राव।
दादू सो सेवग नहीं, खेलै अपना डाव[1] ॥ २ ॥
सूरज सन्मुख आरसी, पावक किया प्रकास।
दादू साईं साध बिच, सहजैं निपजै दास ॥ ३ ॥

॥ मौन ॥

(दादू) मनहीं माहैं समझि करि, मनहीं माहिं समाइ।
मन हीं माहैं राखिये, बाहरि कहि न जनाइ ॥ १ ॥
जरणा[2] जोगी जुगि जुगि जीवै, झरना[3] मरि मरि जाइ।
दादू जोगी गुरमुखी, सहजैं रहै समाइ ॥ २ ॥

॥ सूरमा ॥

(दादू जे मुझ होते लाख सिर, तौ लाखौं देती वारि।
सह[4] मुझ दीया एक सिर, सोई सौंपै नारि ॥ १ ॥
सूरा चढ़ि संग्राम कौं, पाछा पग क्यों देइ ।।
साहिब लाजै भाजताँ, ध्रग जीवन दादू तेइ ॥ २ ॥
काइर काम न आवई, यहु सूरे का खेत।
तन मन सौंपै राम कौं, दादू सीस सहेत ॥ ३ ॥
जब लग लालच जीव का, (तब लग) निर्भय हुआ न जाइ।
काया माया मन तजै, तब चौड़े रहै बजाइ ॥ ४ ॥

---

(१) दाँव। (२) हजम करने वाला, गुप्त रखने वाला। (३) उबल पड़ने वाला। ४) मालिक।

काया कबज कमान करि, सार सबद करि तीर ।
दादू यहु सर साँधि करि, मारै मोटे मीर[1] ॥ ५ ॥
(दादू) तन मन काम करीम के, आवै तौ नीका ।
जिस का तिस कौं सौंपिये, सोच क्या जी का ॥ ६ ॥
दादू पाखर पहरि करि, सब को झूझण जाइ ।
अंगि उघाड़े सूरिवाँ, चोट मुँहे मुँह खाइ ॥ ७ ॥
(दादू कहै) जे तूँ राखै साइयाँ, तौ मारि न सक्कै कोइ ।
बाल न बंका करि सकै, जे जग बैरी होइ ॥ ८ ॥

॥ पतिब्रता ॥

(दादू) मेरे हिरदे हरि बसै, दूजा नाहीं और ।
कहौ कहाँ धौं राखिये, नहीं आन कौं ठौर ॥ १ ॥
(दादू) पीव न देख्या नैन भरि, कंठ न लागी धाइ ।
सूती नहिं गल बाँहि दे, बिच ही गई बिलाइ ॥ २ ॥
प्रेम प्रीति इसनेह बिन, सब झूठे सिंगार ।
दादू आतम रत नहीं, क्यौं मानै भरतार ॥ ३ ॥
(दादू) हूँ सुख सूती नींद भरि, जागै मेरा पीव ।
क्यों करि मेला होइगा, जागै नाहीं जीव ॥ ४ ॥
सुन्दरि कबहूँ कंत का, मुख सौं नाँव न लेइ ।
अपणे पिव के कारणे, दादू तन मन देइ ॥ ५ ॥
तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा प्यंड परान ।
सब कुछ तेरा तू है मेरा, यहु दादू का ज्ञान ॥ ६ ॥
(दादू) नीच ऊँच कुल सुंदरी, सेवा सारी होइ ।
सोई सोहागनि कीजिये, रूप न पीजै धोइ ॥ ७ ॥

॥ बिभिचारिन ॥

नारी सेवग तब लगैं, जब लग साईं पास ।
दादू परसै आन को, ता को कैसी आस ॥ १ ॥

(१) मन ।

कीया मन का भावताँ, मेटी आज्ञाकार ।
क्या मुख ले दिखलाइये, दादू उस भरतार ॥ २ ॥
पतिबरता के एक है, बिभिचारणि के दोइ ।
पतिबरता बिभिचारणी, मेला क्यों करि होइ ॥ ३ ॥
पुरिष हमारा एक है, हम नारी बहु अंग ।
जे जे जैसी ताहि सौं, खेलै तिस ही रंग ॥ ४ ॥

॥ पारख ॥

(दादू) जैसे माहैं जिव रहै, तैसी आवै बास ।
मुखि बोलै तब जाणिये, अंतर का परकास ॥ १ ॥
मति बुधि बिबेक बिचार बिन, माणस पसू समान ।
समझाया समझै नहीं, दादू परम गियान ॥ २ ॥
काचा उछलै ऊफणै, काया हाँडी माहिं ।
दादू पाका मिलि रहै, जीव ब्रह्म द्वै नाहिं ॥ ३ ॥
अंधे हीरा परखिया, कीया कौड़ी मोल ।
दादू साधू जौहरी, हीरे मोल न तोल ॥ ४ ॥
(दादू) साहिब कसै सेवग खरा, सेवग कौं सुख होइ ।
साहिब करै सो सब भला, बुरा न कहिये कोइ ॥ ५ ॥

॥ परिचय ॥

(दादू) निरंतर पिउ पाइया, तीन लोक भरपूरि ।
सब सेजौं साईं बसै, लोग बतावैं दूरि ॥ १ ॥
दादू देखौं निज पीव कौं, दूसर देखौं नाहिं ।
सबै दिसा सौं सोधि करि, पाया घट ही माहिं ॥ २ ॥
पुहुप प्रेम बरिषै सदा, हरि जन खेलैं फाग ।
ऐसा कौतिग देखिये, दादू मोटे भाग ॥ ३ ॥
(दादू) देही माहैं दोइ दिल, इक खाकी इक नूर ।
खाकी दिल सझै नहीं, नूरी मंझि हजूर ॥ ४ ॥

(दादू) जब दिल मिला दयाल सौं, तब अंतर कुछ नाहिं।
ज्यों पाला पानी कौं मिल्या, त्यौं हरि जन हरि माहिं ॥ ५ ॥

॥ उपदेश ॥

पहिली था सो अब भया, अब सो आगैं होइ।
दादू तीनौं ठौर को, बूझै बिरला कोइ ॥ १ ॥
जे जन बेधे प्रीति सौं, ते जन सदा सजीव।
उलटि समाने आप में, अंतर[१] नाहीं पीव ॥ २ ॥
देह रहै संसार में, जीव राम के पास।
दादू कुछ व्यापै नहीं, काल झाल दुख त्रास ॥ ३ ॥
दादू छूटै जीवताँ, मूआँ छूटै नाहिं।
मूआँ पीछैं छूटिये, तौ सब आये उस माहिं ॥ ४ ॥
संगी सोई कीजिये, जे इस्थिर इहि संसार।
ना वहु खिरै न हम खपैं, ऐसा लेहु बिचार ॥ ५ ॥
संगी सोई कीजिये, सुख दुख का साथी।
दादू जीवण मरण का, सो सदा सँगाती ॥ ६ ॥
कबहु न बिहड़ै सो भला, साधू दिढ़-मति होइ।
दादू हीरा एक रस, बाँधि गाँठड़ी सोइ ॥ ७ ॥

॥ करनी और कथनी ॥

दादू कथणी और कुछ, करणी करैं कुछ और।
तिन थैं मेरा जिव डरै, जिन के ठीक न ठौर ॥

॥ जीवत मृतक ॥

जीवत माटी ह्वै रहै, साइँ सनमुख होइ।
दादू पहिली मरि रहै, पीछैं तौ सब कोइ ॥ १ ॥
आपा गर्ब गुमान तजि, मद मंछर हंकार।
गहै गरीबी बंदगी, सेवा सिरजनहार ॥ २ ॥

---

(१) भेद, दूरी।

(दादू) मेरा बैरी मैं मुवा, मुझै न मारै कोइ।
मैं हीं मुझ कौं मारता, मैं मरजीवा होइ ॥ ३ ॥
मेरे आगे मैं खड़ा, ता थैं रह्या लुकाइ।
दादू परगट पीव है, जे यहु आपा जाइ ॥ ४ ॥
दादू आप छिपाइये, जहाँ न देखै कोइ।
पिव कौं देखि दिखाइये, त्यौं त्यौं आनँद होइ ॥ ५ ॥
(दादू) साईं कारण माँस का, लोही[1] पानी होइ।
सूकै आटा अस्थि[2] का, दादू पावै सोइ ॥ ६ ॥

॥ साच ॥

साचा नाँव अलाह का, सोई सति करि जाणि।
निहचल करि ले बंदगी, दादू सो परवाणि ॥ १ ॥
दुई दरोग[3] लोग कौं भावै, साईं साच पियारा।
कौण पंथ हम चलैं कहौ धौं, साधौ करौ बिचारा ॥ २ ॥
औषध खाइ न पछि[4] रहै, बिषम ब्याधि क्यों जाइ।
दादू रोगी बावरा, दोस बैद कौं लाइ ॥ ३ ॥
जे हम जाण्या एक करि, तौ काहे लोक रिसाइ।
मेरा था सो मैं लिया, लोगौं का क्या जाइ ॥ ४ ॥
दादू पैंड़े पाप के, कदे न दीजै पाँव।
जिहिं पैंड़े मेरा पिव मिलै, तिहिं पैंड़े का चाव ॥ ५ ॥
ऊपरि आलम[5] सब करै, साधू जन घट माहिं।
दादू एता अंतरा, ता थैं बनती नाहिं ॥ ६ ॥
झूठा साचा करि लिया, बिष अमृत जाना।
दुख कौं सुख सब को कहै, ऐसा जगत दिवाना ॥ ७ ॥
साचे का साहिब धणी, समरथ सिरजनहार।
पाखँड की यहु पिथमी[6], परपँच का संसार ॥ ८ ॥

---

(१) लोहू। (२) हड्डी। (३) झूठ। (४) पथ्य, खाने में परहेज। (५) संसार। (६) पृथ्वी।

(दादू) पाखँड पीव न पाइये, जे अंतरि साच न होइ।
ऊपरि थैं क्यौंहीं रहौ, भीतरि के मल धोइ॥ ९ ॥
जे पहुँचे ते कहि गये, तिनकी एकै बाति।
सबै सयाने एक मति, उनकी एकै जाति॥१०॥

॥ दया ॥

काल जाल थैं काढ़ि करि, आतम अंगि लगाइ।
जीव दया यहु पालिये, दादू अमृत खाइ॥ १ ॥
भावहीण जे पिरथमी, दया बिहूणा देस।
भगति नहीं भगवंत की, तहँ कैसा परवेस॥ २ ॥
काज़ा मुँह करि करद[1] का, दिल थैं दूरि निवार।
सब सूरति सुबहान की, मुल्लाँ मुग्ध न मारि[2]॥ ३ ॥

॥ बिचार ॥

कोटि अचारी एक बिचारी, तऊ न सरभरि[3] होइ।
आचारी सब जग भरया, बिचारी बिरला कोइ॥ १ ॥
सहज बिचार सुख में रहै, दादू बड़ा बमेक[4]।
मन इन्द्री पसरैं नहीं, अंतरि राखै एक॥ २ ॥
(दादू) सोकि करै सो सूरमा, करि सोचै सो कूर।
करि सोच्याँ मुख स्याम है, सोच करयाँ मुख नूर॥ ३ ॥
जो मति पीछैं ऊपजे, सो मति पहिली होइ।
कबहुँ न होवै जी दुखी, दादू सुखिया सोइ॥ ४ ॥

॥ मान ॥

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै बिकार।
निरबैरी सब जीव सौं, दादू यहु मति सार॥ १ ॥
किस सौं बैरी है रह्या, दूजा कोई नाहिं।
जिस के अँग थैं ऊपज्या, सोई है सब माहिं॥ २ ॥

(१) छुरी। (२) मुल्लाजी दीन जीवों को मत मारो क्योंकि वह मालिक ही की अंश हैं। (३) सरवरि=बराबरी। (४) बिबेक।

जहाँ राम तहँ मैं नहीं, मैं तहँ नाहीं राम।
दादू महल बरीक है, दुइ को नाहीं ठाम ॥ ३ ॥

॥ मन ॥

सोई सूर जे मन गहै, निमखि न चलने देइ।
जब हीं दादू पग भरै, तब हीं पाकड़ि लेइ ॥ १ ॥
जब लगि यहु मन थिर नहीं, तब लगि परस न होइ।
दादू मनवाँ थिर भया, सहजि मिलैगा सोइ ॥ २ ॥
यहु मन कागद की गुड़ी[1], उड़ि चढ़ी आकास।
दादू भीगे प्रेम जल, तब आइ रहै हम पास ॥ ३ ॥
सो कुछ हम थैं ना भया, जा पर रीझै राम।
दादू इस संसार में, हम आये बेकाम ॥ ४ ॥
इन्द्री स्वारथ सब किया, मन माँगै सो दीन्ह।
जा कारण जग सिरजिया, सो दादू कछू न कीन्ह ॥ ५ ॥
(दादू) ध्यान धरैं का होत है, जे मन नहिं निर्मल होइ।
तौ बग[2] सब हीं ऊधरैं, जे यहि बिधि सीझै कोइ ॥ ६ ॥
(दादू) जिस का दर्पण ऊजला, सो दर्सण देखै माहिं।
जिस की मैली आरसी, सो मुख देखै नाहिं ॥ ७ ॥
जागत जहँ तहँ मन रहै, सोवत तहँ तहँ जाइ।
दादू जे जे मन बसै, सोई सोइ देखै आइ ॥ ८ ॥
जहँ मन राखै जीवताँ, मरताँ तिस घरि जाइ।
दादू बासा प्राण का, जहँ पहली रह्या समाइ ॥ ९ ॥
जीवत लूटैं जगत सब, मिरतक लूटैं देव।
दादू कहाँ पुकारिये, करि करि मूए सेव ॥१०॥

॥ माया ॥

साहिब है पर हम नहीं, सब जग आवै जाइ।
दादू सुपिना देखिये, जागत गया बिलाइ ॥ १ ॥

---

(१) गुड्डी, पतंग। (२) बकुला।

(दादू) माया का सुख पंच दिन, गर्ब्यौ कहा गँवार।
सुपिनैं पायो राज धन, जात न लागै बार ॥ २ ॥
कालरि[1] खेत न नीपजै, जे बाहै[2] सौ बार।
दादू हाना बीज का, क्या पचि मरै गँवार ॥ ३ ॥
राहु गिलै[3] ज्यौं चंद कौं, गहन गिलै ज्यौं सूर।
कर्म गिलै यौं जीव कौं, नखसिख लागै पूर ॥ ४ ॥
कर्म कुहाड़ा[4] अंग बन, काटत बारम्बार।
अपने हाथौं आप कौं, काटत है संसार ॥ ५ ॥
(दादू) सब को बणिजै खार खलि[5], हीरा कोइ न लेइ।
हीरा लेगा जौहरी, जो माँगै सो देइ ॥ ६ ॥
सुर नर मुनियर बसि किये, ब्रह्मा बिस्नु महेस।
सकल लोक के सिर खड़ी, साधू के पग हेठ ॥ ७ ॥
(दादू) पहिली आप उपाइ करि, न्यारा पद निर्बाण।
ब्रह्मा बिस्नु महेस मिलि, बँध्या सकल बँधाण ॥ ८ ॥
दादू बाँधे बेद बिधि, भरम करम उरझाइ।
मरजादा माहें रहै, सुमिरण किया न जाइ ॥ ९ ॥
(दादू) माया मीठी बोलणी, नै नै[6] लागै पाँइ।
दादू पैसै[7] पेट में, काढ़ि कलेजा खाइ ॥ १० ॥
भँवरा लुब्धी बास का, कँवल बँधाना आइ।
दिन दस माहैं देखताँ, दून्यूँ गये बिलाइ ॥ ११ ॥

॥ निन्दा ॥

(दादू) जिहिं घर निंद्या साध की, सो घर गये समूल[8]।
तिन की नीव न पाइये, नाँव न ठाँव न धूल ॥ १ ॥
(दादू) निंद्या नाँव न लीजिये, सुपनै हीं जिनि होइ।
ना हम कहैं न तुम सुणौ, हम जिनि भाखै कोइ ॥ २ ॥

---

(१) ऊसर। (२) जोतै। (३) ग्रसै। (४) कुल्हाड़ा। (५) संसार खारी और फोक चीजें अर्थात् कूड़ा करकट का गाहक हैं। (६) झुक झुक कर। (७) पैठे, घुसै। (८) जड़ से।

अणदेख्या अनरथ कहैं, कलि प्रथमी का पाप।
धरती अंबर जब लगैं, तब लग करैं कलाप ॥ ३ ॥
(दादू) निंदक बपुरा जिनि मरै, पर-उपगारी सोइ।
हम कूँ करता ऊजला, आपण मैला होइ ॥ ४ ॥

॥ मांस अहार ॥

माँस अहारी मद पिवै, विषै बिकारी सोइ।
दादू आतम राम बिन, दया कहाँ थैं होइ ॥ १ ॥
आपस[1] कौं मारै नहीं, पर कौं मारन जाहि।
दादू आपा मारै बिना, कैसे मिलै खुदाय ॥ २ ॥

॥ मिश्रित ॥

आपा उरझैं उरझिया, दीसै सब संसार।
आपा सुरझैं सुरझिया, यहु गुर-ज्ञान बिचार ॥ १ ॥
सब गुण सब ही जीव के, दादू ब्यापैं आइ।
घर माहैं जामै मरै, कोइ न जाणै ताहि ॥ २ ॥
दादू बेली आतमा, सहज फूल फल होइ।
सहज सहज सतगुर कहै, बूझै बिरला कोइ ॥ ३ ॥
हरि तरवर तत आतमा, बेली करि बिस्तार।
दादू लागै अमर फल, कोइ साधू सीचणहार ॥ ४ ॥
दया धर्म का रूखड़ा, सत सौं बधता[2] जाइ।
संतोष सौं फूलै फलै, दादू अमर फल खाइ ॥ ५ ॥
माया बिहड़ै देखताँ, काया संग न जाइ।
कृत्तम बिहड़ै बावरे, अजरावर[3] ल्यौं लाइ ॥ ६ ॥
जेते गुण ब्यापैं जीव कौं, तेते तैं तजै रे मन।
साहिब अपणे कारणे, भलो निबाह्यो पन[4] ॥ ७ ॥

———

(१) अपनपौ। (२) बढ़ता। (३) बलवान, समरथ। (४) प्रतिज्ञा।

बाबा मलूकदास जी

जीवन समय—१६३१ से १७३९ तक। जन्म और सतसंग स्थान—मौजा कड़ा, ज़िला इलाहाबाद। जाति और आश्रम–खत्री कक्कड़, गृहस्थ। गुरू–बिट्ठलदास द्राविड़।

१०८ बरस की अवस्था में अपने जन्म स्थान ही में चोला छोड़ा। इनके पंथ की अनेक गद्दियाँ हिन्दुस्तान में और (कहते हैं कि) नैपाल और काबुल में भी हैं। जगन्नाथ जी में इनके नाम का रोट अब तक जारी है।

[पूरा जीवन-चरित्र इनकी बानी के आदि में छपा है]

॥ गुरुदेव ॥

जीती बाजी गुर प्रताप तें, माया मोह निवार।
कह मलूक गुरु कृपा तें, उतरा भवजल पार ॥ १ ॥
सुखद पंथ गुरुदेव यह, दीन्हो मोहिं बताय।
ऐसो ऊपट पाय अब, जग मग चलै बलाय[1] ॥ २ ॥
भ्रम भागा गुरु बचन सुनि, मोह रहा नहिं लेस।
तब माया छल हित किया, महा मोहनी भेस ॥ ३ ॥
ता को आवत देखि कै, कही बात समुझाय।
अब मैं आया गुरु सरन, तेरी कछु न बसाय ॥ ४ ॥
मलुका सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानही, सो काफ़िर बेपीर ॥ ५ ॥
बहुतक पीर कहावते, बहुत करत हैं भेस।
यह मन कहर खुदाय का, मारै सो दुरवेस ॥ ६ ॥

॥ नाम ॥

जीवहुँ तें प्यारे अधिक, लागैं मोहीं राम।
बिन हरि नाम नहीं मुझे, और किसी से काम ॥ १ ॥
कह मलूक हम जबहिं तें, लीन्ही हरि की ओट।
सोवत हैं सुख नींद भरि, डारि भरम की पोट ॥ २ ॥

---

(१) गुरुदेव का बताया हुआ ऐसा सुगम रास्ता मिलने पर संसारी रास्ते (जग मग) पर कौन चलैगा।

राम नाम एकै रती, पाप के कोटि पहाड़ ।
ऐसी महिमा नाम की, जारि करै सब छार ॥ ३ ॥
धर्महिं का सौदा भला, दाया जग ब्योहार ।
रामनाम की हाट लै, बैठा खोल किवार ॥ ४ ॥
साहिब मेरा सिर खड़ा, पलक पलक सुधि लेइ ।
जबहीं गुरु किरपा करैं, तबहिं राम कछु देइ ॥ ५ ॥
मोदी सब संसार है, साहिब राजा राम ।
जा पर चिट्ठी ऊतरै, सोई खरचै दाम ॥ ६ ॥

॥ सुमिरन ॥

सुमिरन ऐसा कीजिये, दूजा लखै न कोय ।
ओंठ न फरकत देखिये, प्रेम राखिये गोय ॥ १ ॥
माला जपों न कर[1] जपों, जिभ्या कहों न राम ।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पाया बिसराम ॥ २ ॥

॥ चितावनी ॥

गर्व भुलाने देंह के, रचि रचि बाँधै पाग ।
सो देंही नित देखि के, चौंच सँवारे काग ॥ १ ॥
उतरे आइ सराय में, जाना है बड़ कोह[2] ।
अटका आकिल[3] काम बस, ली भठियारी मोह ॥ २ ॥
जेते सुख संसार के, इकठे किये बटोरि ।
कन थोरे काँकर घने, देखा फटक पछोरि ॥ ३ ॥
इस जीने का गर्व क्या, कहाँ देंह की प्रीत ।
बात कहत ढह जात है, बारू की सी भीत ॥ ४ ॥
मलूक कोटा झाँझरा, भीत परी भहराय ।
ऐसा कोई ना मिला, (जो) फेर उठावै आय ॥ ५ ॥
देंही होय न आपनी, समुझि परी है मोहिं ।
अबहीं तें तजि राख तूँ, आखिर तजिहै तोहिं ॥ ६ ॥

---

(१) हाथ यानी उँगलियों की पोर से गिनना । (२) कोस । (३) बुद्धिमान, स्याना ।

॥ प्रेम ॥

प्रेम नेम जिन ना कियो, जीतो नाहीं मैन[1] ।
अलख पुरुष जिन ना लख्यो, छार परो तेहि नैन ॥ १ ॥
कठिन पियाला प्रेम का, पियै जो हरि के हाथ ।
चारो जुग माता रहै, उतरै जिय के साथ ॥ २ ॥
बिना अमल माता रहै, बिन लस्कर बलवंत ।
बिना बिलायत साहिबी, अंत माहिं बेअंत ॥ ३ ॥
रात न आवै नींदड़ी, थरथर काँपै जीव ।
ना जानूँ क्या करैगा, जामिल मेरा पीव ॥ ४ ॥
मलूक सु माता सुंदरी, जहाँ भक्त औतार ।
और सकल बाँझै भईं, जनमे खर कतवार ॥ ५ ॥
सोई पूत सपूत है, (जो) भक्ति करै चित लाय ।
जरा मरन तें छुटि परै, अजर अमर है जाय ॥ ६ ॥
सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार ।
मंदिर ढूँढ़त को फिरै, मिल्यो बजावनहार ॥ ७ ॥
करै पखावज प्रेम का, हृदे बजावै तार ।
मनै नचावै मगन है, तिस का मता अपार ॥ ८ ॥
जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव ।
अंतरजामी जानिहै, अंतरगत का भाव ॥ ९ ॥

॥ विनय ॥

नमो निरंजन निरंकार, अविगत पुरुष अलेख ।
जिन संतन के हित धरयो, जुग जुग नाना भेख ॥ १ ॥
हरि भक्तन के काज हित, जुग जुग करी सहाय ।
सो सिव सेस न कहि सकै, कहा कहौं मैं गाय ॥ २ ॥
राम राम असरन सरन, मोहिं आपन करि लेहु ।
संतन संग सेवा करौं, भक्ति मजूरी देहु ॥ ३ ॥

---

(१) कामदेव ।

भक्ति मजूरी दीजिये, कीजे भवजल पार।
बोस्त है माया मुझे, गहे बाँह बरियार॥ ४॥

॥ साधु ॥

जहाँ जहाँ बच्छा फिरै, तहाँ तहाँ फिरै गाय।
कहैं मलूक जहँ संत जन, तहाँ रमैया जाय॥ १॥
भेष फकीरी जे करै, मन नहिं आवै हाथ।
दिल फकीर जे हो रहै, साहिब तिन के साथ॥ २॥

॥ दुर्जन ॥

मलूक बाद न कीजिये, क्रोधै देव बहाय।
हार मानु अनजान तें, बकि बकि मरै बलाय॥ १॥
कलपि डाहि[1] जे लेत हैं, या तें पाप न और।
कह मलूक तेहि जीव को, तीन लोक नहिं ठौर॥ २॥
मूरख को का बोधिये, मन में रहौ बिचार।
पाहन मारे क्या भया, जहँ टूटै तरवार॥ ३॥
चार मास घन बरसिया, महा सुखम घन नीर।
ऐसी मुहकम[2] बख्तरी, लगा न एकौ तीर॥ ४॥
दाग जो लागा लील का, सौ मन साबुन धोय।
कोटि बार समझाइया, कौवा हंस न होय॥ ५॥
दुर्जन दुष्ट कठोर अति, ता की जाति न ऐंड़।
स्वान पूँछ सुधरै नहीं, अंत टेढ़ की टेढ़॥ ६॥
चार पहर दिन होत रसोई, तनिक न निकसत टूक।
कह मलूक ता मँदिला में, सदा रहत हैं भूत॥ ७॥

॥ माया ॥

माया मिसरी की छुरी, मत कोई पतियाय।
इन मारे रसबाद के, ब्रह्महिं ब्रह्म लड़ाय॥ १॥

(१) कलपा और सता कर। (२) मज़बूत।

नारी नाहिं निहारिये, करै नैन की चोट।
कोइ इक हरिजन ऊबरे, पारब्रह्म की ओट ॥ २ ॥
नारी घोंटी अमल की, अमली सब संसार।
कोइ ऐसा सूफी[1] ना मिला, जा सँग उतरै पार ॥ ३ ॥

॥ मांस अहार ॥

पीर सभन की एक सी, मूरख जानत नाहिं।
काँटा चूभे पीर है, गला काट कोउ खाय ॥ १ ॥
कुंजर चींटी पसू नर, सब में साहिब एक।
काटै गला खुदाय का, करै सूरमा लेख ॥ २ ॥
सब कोउ साहिब बन्दते, हिन्दू मूसलमान।
साहिब तिन को बन्दता, जिस का ठौर इमान ॥ ३ ॥

॥ अनुभव ॥

जो लगि थो अँधियार घर, मूस थके सब चोर।
जब मंदिल दीपक बर्‌यो, वही चोर धन मोर ॥ १ ॥
मन मिरगा बिन मूड़ का, चहुँ दिसि चरने जाय।
हाँक लेआया ज्ञान तब, बाँधा ताँत लगाय ॥ २ ॥

॥ दया ॥

दुखिया जनि कोइ दूखवै, दुखए अति दुख होत।
दुखिया रोइ पुकारिहै, सब गुड़ माटी होय ॥ १ ॥
हरी डारि ना तोड़िये, लागै छूरा बान।
दास मलूका यों कहै, अपना सा जिव जान ॥ २ ॥
जे दुखिया संसार में, खोवो तिन का दुक्ख।
दलिद्दर सौंप मलूक को, लोगन दीजे सुक्ख ॥ ३ ॥
दया धर्म हिरदे बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन ॥ ४ ॥

---

(१) ज्ञानी।

सब पानी की चूपरी, एक दया जग सार।
जिन पर-आतम चीन्हिया, तेही उतरे पार ॥ ५ ॥

॥ मन ॥

कोई जीति सकै नहीं, यह मन जैसे देव।
या के जीते जीत है, अब मैं पायो भेव ॥ १ ॥
तैं मत जानै मन मुवा, तन करि डारा खेह।
ता का क्या इतबार है, जिन मारे सकल बिदेह ॥ २ ॥

॥ मूर्त्ति पूजा, तीर्थ ॥

आतम राम न चीन्हही, पूजत फिरै पषान।
कैसेहु मुक्ति न होइगी, कोटिक सुनो पुरान ॥ १ ॥
किरतिम देव न पूजिये, ठेस लगे फुटि जाय।
कहै मलूक सुभ आतमा, चारो जुग ठहराय ॥ २ ॥
देवल पुजै कि देवता, की पूजै पाहाड़।
पूजन को जाँता भला, जो पीस खाय संसार ॥ ३ ॥
हम जानत तीरथ बड़े, तीरथ हरि की आस।
जिन के हिरदे हरि बसै, कोटि तिरथ तिन पास ॥ ४ ॥
संध्या तर्पन सब तजा, तीरथ कबहुँ न जाउँ।
हरि हीरा हिरदे बसै, ताही भीतर न्हाउँ ॥ ५ ॥
मक्का मदिना द्वारिका, बद्री और केदार।
बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक बिचार ॥ ६ ॥
राम राम घट में बसै, ढूँढ़त फिरैं उजाड़।
कोइ कासी कोइ प्राग में, बहुत फिरैं झख मार ॥ ७ ॥

॥ मिश्रित ॥

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहै, सब के दाता राम ॥ १ ॥
जहाँ जहाँ दुख पाइया, गुरु को थापा सोय।
जबहीं सिर टक्कर लगै, तब हरि सुमिरन होय ॥ २ ॥

आदर मान महत्व सत, बालापन को नेह।
ये चारो तबही गये, जबहिं कहा कछु देह ॥ ३ ॥
प्रभुता ही को सब मरै, प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होय ॥ ४ ॥
मानुष बैठे चुप करे, कदर न जानै कोय।
जबहीं मुख खोलै कली, प्रगट बास तब होय ॥ ५ ॥
सब कलियन में बास है, बिना बास नहिं कोय।
अति सुचित्त में पाइये, जो कोइ फूलो होय ॥ ६ ॥

सुन्दरदास जी

——: ० :——

जोवन समय—१६५३ से १७४६ तक। जन्म स्थान जयपुर की पहिली राजधानी द्यौसा नगर। सतसंग स्थान—फतेहपुर शेखावाटी। जाति-खँडलवाल बनिया। आश्रम—भेष। गुरू—दादू दयाल।

सुंदरदास जी बाल साध और बाल कवि और संस्कृत के भारी पंडित थे और हिन्दी, पूरबी, पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी, फारसी आदि भाषाएँ भी जानते थे। संस्कृत में कविता का रचना नापसंद था क्योंकि उससे सर्व साधारण का उपकार नहीं होता। यद्यपि बड़े गहरे भक्त थे परन्तु दिल्लगी हँसी का सुभाव था। इनके शिष्यों की पाँच गद्दियाँ फतेहपुर शेखावाटी, मोर, चूरू (बीकानेर) आदि स्थानों में हैं।

[पूरा जोवन-चरित्र सुंदर बिलास के आदि में छपा है]

॥ गुरुदेव ॥

दादू सतगुरु बंदिये, सो मेरे सिर-मौर।
सुन्दर बहिया जाय था, पकरि लगाया ठौर ॥ १ ॥
सुन्दर सतगुरु बंदिये, सोई बंदन जोग।
औषध सबद दिवाइ करि, दूर कियो सब रोग ॥ २ ॥

परमेसुर अरु परमगुरु, दोनों एक समान।
सुन्दर कहत बिसेष यह, गुरु तें पावै ज्ञान॥ ३॥
सुन्दर सतगुरु आपु तें, किया अनुग्रह आइ।
मोह निसा में सोवतें, हमकौं लिया जगाइ॥ ४॥
सुन्दर सतगुरु सारिखा, कोऊ नहीं उदार।
ज्ञान खजीना खोलिया, सदा अटूट भँडार॥ ५॥
समदृष्टी सीतल सदा, अद्भुत जा की चाल।
ऐसा सतगुरु कीजिये, पल में करै निहाल॥ ६॥
सुन्दर सतगुरु मिहर करि, निकट बताया राम।
जहाँ तहाँ भटकत फिरैं, काहे को बेकाम॥ ७॥
गोरखधंधा लोह में, कड़ी लोह ता माहिं।
सुन्दर जानै ब्रह्म में, ब्रह्म जगत द्वै नाहिं॥ ८॥
परमातम से आतमा, जुदे रहे बहु काल।
सुन्दर मेला करि दिया, सतगुरु मिले दलाल॥ ९॥
परमातम अरु आतमा, उपज्या यह अविवेक।
सुन्दर भ्रम तें दोय थे, सतगुरु कीये एक॥१०॥
सुन्दर सूता जीव है, जाग्या ब्रह्म स्वरूप।
जागन सोवन तें परे, सतगुरु कह्या अनूप॥११॥
मूरख पावै अर्थ कौं, पंडित पावै नाहिं।
सुन्दर उलटी बात यह, है सतगुरु के माहिं॥ १२॥
सुन्दर सतगुरु ब्रह्ममय, पर सिष की चम दृष्टि।
सूधी ओर न देखई, देखै दर्पन पृष्ट[1]॥१३॥
सुन्दर काटै सोध करि, सतगुरु सोना[2] होइ।
सिष सुवरन निर्मल करै, टाँका रहै न कोइ॥१४॥

(१) पीठ। (२) सोनार।

नभमनि चिंतामनि कहै, हीरामनि मनिलाल ।
सकल सिरोमनि मुकटमनि, सतगुरु प्रगट दयाल ॥१५॥
सुंदर सतगुरु आप तें, अतिही भये प्रसन्न ।
दूरि किया संदेह सब, जीव ब्रह्म नहिं भिन्न ॥१६॥
सुंदर सतगुरु हैं सही, सुंदर सिच्छा दीन्ह ।
सुंदर बचन सुनाइ कै, सुंदर सुंदर कीन्ह ॥१७॥

॥ सुमिरन ॥

सुंदर सतगुरु यों कह्या, सकल सिरोमनि नाम ।
ता कौं निसु दिन सुमरिये, सुखसागर सुखधाम ॥ १ ॥
हिरदे में हरि सुमिरिये, अंतरजामी राइ ।
सुंदर नीके जसन सौं, अपनौं बित्त छिपाइ ॥ २ ॥
रंक हाथ हीरा चढ़्यो, ता कौ मोल न तोल ।
घर घर डोलै बेचनो, सुंदर याही भोल[1] ॥ ३ ॥
राम नाम मिसरी पियें, दूरि जाहिं सब रोग ।
सुंदर औषध कटुक सब, जप तप साधन जोग ॥ ४ ॥
राम नाम जा के हिये, ताहि नवैं सब कोइ ।
ज्यों राजा की संक तें, सुन्दर अति डर होइ ॥ ५ ॥
सुंदर सबही संत मिलि, सार लियौ हरि नाम ।
तक्र[2] तजी घृत काढ़ि कै, और क्रिया किहिं काम ॥ ६ ॥
लीन भया बिचरत फिरै, छीन भया गुन देंह ।
दोन भई सब कल्पना, सुंदर सुमिरन येह ॥ ७ ॥
भजन करत भय भागिया, सुमिरन भागा सोच ।
जाप करत जोंरा[3] टल्या, सुंदर साची लोच[4] ॥ ८ ॥
सुंदर भजिये राम को, तजिये माया मोह ।
पारस के परसे बिनाँ, दिन दिन छीजे लोह ॥ ९ ॥

(१) भूला । (२) छाछ । (३) पुष्ट और मस्त भैंस अर्थात् व्याधि । (४) नरमी ।

प्रीति सहित जे हरि भजैं, तब हरि होहिं प्रसन्न।
सुन्दर स्वाद न प्रीति बिन, भूख बिना ज्यौं अन्न ॥१०॥
एक भजन तन सौं करै, एक भजन मन होइ।
सुन्दर तन मन के परे, भजन अखंडित सोइ ॥११॥
जाही कौं सुमिरन करै, है ताही को रूप।
सुमिरन कीयें ब्रह्म के, सुन्दर है चिद्‌रूप ॥१२॥

॥ बिरह ॥

मारग जोवै बिरहिनी, चितवै पिय की ओर।
सुन्दर जियरे जक नहीं, कल न परत निस भोर ॥ १ ॥
सुन्दर बिरहिनि अधजरी, दुःख कहै मुख रोइ।
जरि बरि कै भस्मी भई, धुवाँ न निकसै कोइ ॥ २ ॥
ज्यों ठगमूरी खाइ कै, मुखहिं न बोलै बैन।
टुगर टुगर देख्या करै, सुन्दर बिरहा औन ॥ ३ ॥
लालन मेरा लाडिला, रूप बहुत तुझ माहिं।
सुन्दर राखै नैन में, पलक उघारैं नाहिं ॥ ४ ॥
अब तुम प्रगटहु रामजी, हृदय हमारे आइ।
सुन्दर सुख संतोष है, आनँद अंग न माइ[1] ॥ ५ ॥

॥ बंदगी ॥

सुन्दर अंदर पैसि करि, दिल में गोता मारि।
तौ दिलही में पाइये, साईं सिरजनहारि ॥ १ ॥
सखुन हमारा मानिये, मत खोजै कहुँ दूर।
साईं सीने बीच है, सुन्दर सदा हजूर ॥ २ ॥
जो यह उसका है रहै, तो वह इसका होइ।
सुन्दर बातौं ना मिलै, जब लग आप न खोइ ॥ ३ ॥
सुन्दर दिल की सेज पर, औरति है अरवाह[2]।
इस को जाग्या चाहिये, साहिब बेपरवाह ॥ ४ ॥

(१) समाय। (२) सुरत, जीवात्मा।

जो जागै तौ पिय लहै, सोयें लहिये नाहिं।
सुन्दर करिये, बंदगी, तौ जाग्या दिल माहिं ॥ ५ ॥

॥ पतिव्रत ॥

सुन्दर और न ध्याइये, एक बिना जगदीस।
सो सिर ऊपर राखिये, मन क्रम बिसवाबीस ॥ १ ॥
सुन्दर पतिव्रत राम सों, सदा रहै इकतार।
सुख देवै तो अति सुखी, दुख तो सुखी अपार ॥ २ ॥
जो पिय को ब्रत लै रहै, कंत पियारी सोइ।
अंजन मंजन दूरि करि, सुन्दर सनमुख होइ ॥ ३ ॥
प्रीतम मेरा एक तूँ, सुन्दर और न कोइ।
गुप्त भया किस कारने, काहि न परगट होइ ॥ ४ ॥

॥ उपदेश ॥

सुन्दर मनुषा देह की, महिमा कहिये काहि।
जाकौं बंछैं देवता, तूँ क्यों खोवै ताहि ॥ १ ॥
सुन्दर पंछी बिरछ पर, लियो बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये, त्यों कुटुंब सब जानि ॥ २ ॥
सुन्दर तेरी मति गई, समझत नहीं लगार।
कूकर रथ नीचे चलै, हूँ खैंचत हौं भार ॥ ३ ॥
सुन्दर यह औसर भलो, भजि ले सिरजनहार।
जैसें ताते लोह कौं, लेत मिलाइ लुहार ॥ ४ ॥
सुन्दर यौंही देखतें, औसर बीत्यो जाइ।
अँजुरी माहें नीर ज्यों, किती बार ठहराइ ॥ ५ ॥
दीया की बतियाँ कहैं, दीया किया न जाइ।
दीया करै सनेह करि, दीये जोति दिखाइ ॥ ६ ॥
साईं दीया है सही, इसका दीया नाहिं।
यह अपना दीया कहै, दीया लखै न माहिं ॥ ७ ॥

॥ चितावनी ॥

काल ग्रसत है बावरे, चेतत क्यों न अजान।
सुन्दर काया कोट में, होइ रह्यो सुलतान ॥ १ ॥
सुन्दर मछरी नीर में, बिचरत अपने ख्याल।
बगुला लेत उठाइ कैं, तोहि ग्रसै यों काल ॥ २ ॥
बेर बेर नहिं पाइये, सुन्दर मानुष देह।
राम भजन सेवा सुकृत[1], यह सौदा करि लेह ॥ ३ ॥
सुन्दर मानुष देह यह, ता में दोइ प्रकार।
या तें बूड़ै जगत महँ, या तें उतरै पार ॥ ४ ॥
सुन्दर काल महाबली, मारे मोटे मीर।
तूँ है कौन कि गनति में, चेतत काहे न बीर ॥ ५ ॥
मेरे मंदिर माल धन, मेरो सकल कुटंब।
सुन्दर ज्यों को त्यों रहै, काल दियो जब बंब ॥ ६ ॥
सुन्दर गर्ब कहा करै, कहा मरोरै मूँछ।
काल चपेटो मारिहै, समुझि कहूँ के भूँछ[2] ॥ ७ ॥
सुन्दर या संसार तें, काहि न निकसत भागि।
सुख सोवत क्यों बावरे, घर में लागी आगि ॥ ८ ॥
जो जो मन में कल्पना, सो सो कहिये काल।
सुन्दर तूँ निःकल्प हो, छाड़ि कल्पना जाल ॥ ९ ॥
काल ग्रसै आकार कौं, जा में सकल उपाधि।
निराकार निर्लेप है, सुन्दर तहँ न ब्याधि ॥१०॥

॥ नारी पुरुष ॥

नारी पुरुष सनेह अति, देखैं जीवैं सोइ।
सुन्दर नारी बिछुरैं, आपु मृतक तब होइ ॥

---

(१) पुन्य कर्म। (२) भोंदू, मूर्ख।

॥ देहात्मा बिछोह ॥

सुन्दर देह परी रही, निकसि गयो जब प्रान।
सब कोऊ यों कहतु है, अब ले जाहु मसान॥

धरनीदास जी

—:०:—

जन्म समय—सम्बत १७१३। जन्म और सतसंग स्थान—माँझी गाँव (ज़िला छपरा)। जाति और आश्रम—श्रीवास्तव्य कायस्थ, भेष। गुरू— चंद्रदास।

इनका पंथ अब तक जारी है। और हजारों आदमी उस मत के हिन्दुस्तान भर में फैले हैं। इन के दो ग्रंथ "सत्य प्रकाश" और "प्रेम प्रकाश" सुनने में आये हैं।

[पूरे जीवन-चरित्र के लिये उन की बानी देखो]

॥ गुरुदेव ॥

धरनी जहँ लग देखिये, तहँ लौं सबै भिखारि।
दाता केवल सतगुरू, देत न मानै हारि॥ १॥
धरनि फिरहिं देसंतरो, धरि धरि के बहु भेस।
कोई कोई देखिहै, अंतर गुरु उपदेस॥ २॥
धूवाँ के धोरेहरा, औ धूरी को धाम।
ऐसे जीवन जगत में, बिनु गुरु बिनु हरि नाम॥ ३॥
धरनी सब दिन सुदिन है, कबहुँ कुदिन है नाहिं।
लाभ चहूँ दिसि चौगुनो, (जो) गुरु सुमिरन हिये माहिं॥ ४॥

॥ ध्यान ॥

धरनी ध्यान तहाँ धरो, प्रगट जोति फहराहि।
मनि मानिक मोती झरै, चुगि चुगि हंस अघाहि॥ १॥
धरनी ध्यान तहाँ धरो, त्रिकुटी कुटी मँझार।
घर के बाहर अधर है, सनमुख सिरजनहार॥ २॥

॥ चितावनी ॥

धरनी धरि रहु हरि ब्रतहिं, परिहरि सब ही मोह।
धन सुत बंधु बिभव[1] जत, होवे अंत बिछोह ॥ १ ॥
धरनी धोख न लाइये, कबहीं अपनी ओर।
प्रभु सों प्रीति निबाहिये, जीवन है जग थोर ॥ २ ॥
गोरिया गरब करहु जिनि, अपने गोरे गात।
कालिह परों चलि जाइहै, जैसे पियरे पात ॥ ३ ॥
धरनी चहुँ दिसि चरचिया[2], करि करि बहुत पुकार।
नाहीं हम हैं काहु के, नाहीं कोउ हमार ॥ ४ ॥

॥ बिरह ॥

धरनी धन वो बिरहनी, धारै नाहीं धीर।
बिहबल बिकल सदा चित, दुर्बल दुखित सरीर ॥ १ ॥
धरनी परबत पर पिया, चढ़ते बहुत डेराँव।
कबहुँक पाँव जु डिगमिगे, पावों कतहुँ न ठाँव ॥ २ ॥
धरनी धरकत है हिया, करकत आहि करेज।
ढरकत लोचन भरि भरी, पीया नाहिन सेज ॥ ३ ॥
धरनी धवल[3] धरेहरहिं, चढ़ि चढ़ि चहुँ दिसि हेर।
आवत पिय नहिं दीखतो, भइली बहुत अबेर ॥ ४ ॥
धरनी सो दिन धन्न है, मिलब जबै हम नाह[4]।
संग पौढ़ि सुख बिलसिहों, सिर तर धरि के बाँह ॥ ५ ॥
धरनी धन की भूल हो, कछू बरनि नहिं जाय।
सनमुख रहती रैन दिन, मिलत नहीं पिय धाय ॥ ६ ॥

॥ प्रेम ॥

धरनी पलक परै नहीं, पिय की झलक सुहाय।
पुनि पुनि पीवत परम रस, तबहूँ प्यास न जाय ॥ १ ॥

(१) ऐश्वर्य। (२) ढूँढ़ा। (३) सफेद। (४) पति।

धरनी धन तन जिवन यह, चाहे रहै कि जाय।
हरि के चरन हृदय धरि, अब तौ हेत बढ़ाय ॥ २ ॥
धरनी सो धन धन्य हो, धन धन कुल उँजियार।
जा कर बाँह धइल पिया, आपन हाथ पसार ॥ ३ ॥
धरनी पिय जिन पावल, मेटि गइल सब दुंद।
अरध उरध सुर गावल, हिरदय होय अनंद ॥ ४ ॥
धरनी खेती भक्ति की, उपजे होत निहाल।
खर्चे खाये निबरै नहीं, परै न दुक्ख दुकाल ॥ ५ ॥
धरनी मन मिलबो कहा, जो तनिक माहिं बिलगाय।
मन को मिलन सराहिये, जो एकमेक होइ जाय ॥ ६ ॥

॥ बिनय ॥

धरनी जन की बीनती, करु करुनामय कान।
दीजै दरसन आपनो, माँगों कछु नहिं आन ॥ १ ॥
धरनी बिलखि[1] बिनती करै, सुनिये प्रभू हमार।
सब अपराध छिमा करो, मैं हौं सरन तिहार ॥ २ ॥
धरनी सरनो शबरी, राम गरीब-निवाज।
कवन करैगो दूसरो, मोहिं गरीब के काज ॥ ३ ॥
काहू के बहु बिभव भइ, काहू बहु परिवार।
धरनी कहत हमहिं बल, ए हो राम तुम्हार ॥ ४ ॥
तिनुका दाँत के अंतरे, कर जोरे भुइँ सीस।
धरनो जन बिनती करै, जानु[2] परो जगदीस ॥ ५ ॥
धरनी नहिं बैराग बल, नाहिं जोग सन्यास।
मनसा बाचा कर्मना, बिस्वंभर बिस्वास ॥ ६ ॥
बिनती लीजे मानि करि, जानि दास को दास।
धरनी सरनी राखिये, अवर न दूसर आस ॥ ७ ॥

---

(१) रोकर। (२) जाँघ, चरन।

॥ भेष ॥

कुल तजि भेष बनाइया, हिये न आयो साच।
धरनी प्रभु रीझै नहीं, देखत ऐसो नाच॥ १॥
भेष लियो दाया नहीं, ध्यान धतूरा भाँग।
धरनी प्रभु काँचा नहीं, जो भूलै ऐसे स्वाँग॥ २॥

॥ घट मठ ॥

दिया दिया घर भीतरे[1], बाती तेल न आगि।
धरनी मन बच कर्मना, ता सों रहना लागि॥ १॥
बिनु पगु निरत करों तहाँ, बिनु कर दै दै तारि।
बिनु नैनन छबि देखना, बिनु स्रवन झनकारि॥ २॥
धरनी अरध उरध चढ़ि, उदयो जोति सरूप।
देखु मनोहर मूरती, अतिहीं रूप अनूप॥ ३॥
तब लगि प्रगट पुकारिया, जब लगि निबरी नाहिं।
धरनी जब निबरी परी, मन की मनहीं माहिं॥ ४॥
धरनी हृदय पलंगरी, प्रीतम पौढ़े आय।
सभा सुनी जो स्रवन तें, कहे कवन पतियाय॥ ५॥
धरनी तन में तख्त है, ता ऊपर सुलतान।
लेत मोजरा सबहिं को, जहँ लौं जीव जहान॥ ६॥

॥ मौन ॥

धरनी आपन मरम हो, कहिये नाहीं काहि।
जाननहार सो जानि है, जैसो जो कछु आहि॥

॥ कामिनी ॥

दामिनी ऐसी कामिनी, फाँसी ऐसो दाम।
धरनी दुइ तें बाचिये, कृपा करै जो राम॥ १॥
धरनी ब्याही छोड़िये, जो हरिजन देखि लजाय।
बेस्या संग बिराजिये, जो भक्ति अंग ठहराय॥ २॥

---

(१) अंतर में दीपक धरा है।

॥ मांस अहार ॥

धरनी जिव जिनि मारियो, माँसहिं नाहीं खाहु ।
नंगे पाँव बबूर बन, होइ नाहिं निरबाहु ॥ १ ॥
माँस अहारी जीयरा, सो पुनि कथे गियान ।
नाँगी है घूँघट करै, धरनी देखि लजान ॥ २ ॥
धरनी यह मन जम्बुका[1], बहुत कुभोजन खात ।
साधु संग मृग होइ रहु, सबद सुगंध बसात ॥ ३ ॥

॥ ब्राह्मण ॥

धरनी भरमी बाम्हने, बसहिं भरम के देस ।
करम चढ़ावहिं आपु सिर, अवर जे ले उपदेस ॥ १ ॥
करनी पार उतारिहै, धरनी कियो पुकार ।
साकित बाम्हन नहिं भला, भक्ता भला चमार ॥ २ ॥
मास अहारी बाम्हना, सो पापी बहि जाउ ।
धरनी सूद्र बइस्नवा, ताहि चरन सिर नाउ ॥ ३ ॥
धरनी सो पंडित नहीं, जो पढ़ि गुन कथै बनाय ।
पंडित ताहि सराहिये, जो पढ़ा बिसरि सब जाय ॥ ४ ॥

॥ मिश्रित ॥

धरनी काहि असोसिये, औ दीजे काहि सराप ।
दूजा कतहुँ न देखिये, सब घट आपै आप ॥ १ ॥
धरनी कथनी लोक की, ज्यों गीदर को ज्ञान ।
आगम भाखै और के, आपु परै मुख स्वान ॥ २ ॥
परमारथ को पंथ चहि, करते करम किसान ।
ज्यों घर में घोड़ा अछत, गदहा करै पलान[2] ॥ ३ ॥

---

(१) स्यार । (२) काठी कसै ।

जगजीवन साहिब

—:०:—

इनके जीवन समम के विषय में दुमता है। "मिश्रबंधु विनोद" में इनका ग्रंथ-रचना काल सम्बत १८१८ लिखा है और पादरी जान टामस ने भी इसी के लगभग कहा है परन्तु इनके सत्तनामी पंथवाले इनकी जन्म तिथि माघ सुदी सत्तमी मंगलबार सम्बत् १७२७ और मृत्यु तिथि बैशाख बदी सत्तमी मंगलबार सम्बत् १८१७ बतलाते हैं जिसका प्रमाण उनके एक ग्रंथ से भी होता है जो मानने योग्य है। यह भारी गति के संत थे जिनकी बानी दीनता और प्रेम रस में पगी हुई है। जाति के चँदेल क्षत्री थे और सदा गृहस्थ आश्रम ही में रहे। जन्म इनका जिला बाराबंकी (अवध) के सरदहा गाँव में हुआ था और उसी जिले के कोटवा गाँव में उमर भग सतसंग कराया। भीखा पंथी इनको गुलाल साहिब का शिष्य बतलाते हैं और अपने गुरु घराने में शामिल करते हैं (देखो जीवन-चरित्र जगजीवन साहित की बानी के भाग १ में) परन्तु सत्तनामियों के अनुसार इनके गुरु "बिश्वेश्वर पुरी" थे जिनका भीखा पंथ से कोई सम्बन्ध नहीं था। इनके अनुयाई दहनी कलाई पर काला और सपेद धागा बाँधते हैं। इनके मुख्य ग्रंथ "ज्ञान प्रकाश," "महा प्रलय" और "प्रथम ग्रंथ" हैं।

॥ चितावनी ॥

मैं तैं गाफिल होहु नहिं, समुझि के सुद्धि सँभार।
जौने घर तैं आयहू, तहँ का करहु बिचार ॥ १ ॥
काहे भूल गइसि तैं, का तोहि काँ हित लाग।
जवने पठवा कौल करि, तेहि कस दीन्ह्यो त्याग ॥ २ ॥
इहाँ तो कोऊ रहि नहीं, जो जो धरिहै देह।
अंत काल दुख पाइहौ, नाम तें करहु सनेह ॥ ३ ॥
तजु आसा सब झूठ ही, सँग साथी नहिं कोय।
केउ केहू न उबारही, जेहि पर होय सो होय ॥ ४ ॥
मारहिं काटहिं बाँटहीं, जानि मानि करु त्रास।
छाड़ि देहु गफिलाई, गहहु नाम की आस ॥ ५ ॥
जगजीवन गुरु सरनहीं, अंतर धरि रहु ध्यान।
अजपा जपु परतीत करि, करिहैं सब औसान ॥ ६ ॥

॥ विनय ॥

पपिहै जाय पुकारेऊ, पंछिन आगे रोय।
तीनि लोक फिरि आयेऊँ, बिनु दुख लख्यो न कोय ॥ १ ॥

जोगिन ह्वै जग ढूढ़ेऊँ, पहिरयों कुंडल कान।
पिय का अंत न पायेऊँ, खोजत जनम सिरान ॥ २ ॥
बैठि मैं रहेऊँ पिया सँग, नैनन सुरति निहारि।
चाँद सुरज दोउ देखेऊँ, नहिं उनकी अनुहारि[1] ॥ ३ ॥
माया रच्यो हिंडोलना, सब कोइ झूल्यो आय।
पेंग मारि वहिं गिरि गयो, काहू अंत न पाय ॥ ४ ॥
बिस्न औ ब्रह्मा झूलेऊ, झूल्यो आइ महेस।
मुनि जन इंदर झूलि सब, झूले गौरि गनेस ॥ ५ ॥
सतगुरु सत खंभन गगन, सूरति डोरि लगाय।
उतरै गिरै न टूटई, झूलहि पेंग बढ़ाय ॥ ६ ॥
जगजीवन कहि भाखही, संतन समझहु ज्ञान।
गगन लगन लै लावहू, निरखहु छवि निरबान ॥ ७ ॥
माया बहुत अपरबल, अलख तुम्हार बनाउ।
जगजीवन बिनती करै, बहुरि न फेरि झुलाउ ॥ ८ ॥

॥ उपदेश ॥

सदा सहाई दास पर, मनहिं बिसारैं नाहिं।
जगजीवन साची कहै, कबहूँ न्यारे नाहिं ॥ १ ॥
सत समरथ तें राखि मन, करिय जगत को काम।
जगजीवन यह मंत्र है, सदा सुक्ख बिसराम ॥ २ ॥
सत्त नाम जपु जीयरा, और बृथा करि जान।
माया तकि नहिं भूलसी, समुझि पाछिला ज्ञान ॥ ३ ॥
कहवाँ तें चलि आयहु, कहाँ रहा अस्थान।
सो सुधि बिसरि गई तोहिं, अब कस भयसि हेवान ॥ ४ ॥
अबहूँ समुझि के देखु तैं, तजु हंकार गुमान।
यहि परिहरि[2] सब जाइ है, होइ अंत नुकसान ॥ ५ ॥

(१) बराबर। (२) छोड़कर।

दीन लीन रहु निसु दिना, और सर्बसों त्यागु।
अंतर बासा किये रहु, महा हितू तें लागु॥ ६॥
काया नगर सोहावना, सुख तब हीं पै होय।
रमत रहै तेहिं भीतरे, दुख नहिं ब्यापै कोय॥ ७॥
मृत मंडल कोउ थिर नहीं, आवा सो चलि जाय।
गाफिल ह्वै फंदा पर्‌यो, जहँ तहँ गयो बिलाय॥ ८॥
जगजीवन गहि चरन गुरु, ऐनन[1] निरखि निहारि।
ऐसी जुगुती रहै जे, लेहैं ताहि उबारि॥ ६॥

यारी साहिब

—:०:—

इनका जीवन समय सम्बत् १७२५ और १७८० के दर्मियान था। जाति के मुसलमान फ़क़ीरी भेष में थे और बीरू साहिब इनके गुरू थे। दिल्ली में अपने गुरू के जीवन समय में उनकी सेवा में बराबर रहे और उनके बाद उनकी गद्दी पर बैठे और वहीं चोला छोड़ा। दिल्ली में उनकी समाधि मौजूद है। सिवाय इनके बुल्ला साहिब के चार प्रसिद्ध चेले और थे—केशवदास, सूफ़ीशाह, शेखनशाह और हस्तमुहम्मद शाह।

॥ घट मठ ॥

जोति सरूपी आतमा, घट घट रहो समाय।
परम तत्त मन-भावनो, नेक न इत उत जाय॥ १॥
रूप रेख बरनौं कहा, कोटि सूर परगास।
अगम अगोचर रूप है, [कोउ] पावै हरि को दास॥ २॥
नैनन आगे देखिये, तेज पुंज जगदीस।
बाहर भीतर रमि रह्यो, सो धरि राखौ सीस॥ ३॥
बाजत अनहद बाँसुरी, तिरबेनी के तीर।
राग छतीसो होइ रहे, गरजत गगन गँभीर॥ ४॥

(१) आँख से।

जोगिन ह्वै जग ढूढ़ेऊँ, पहिर्‌यों कुंडल कान।
पिय का अंत न पायेऊँ, खोजत जनम सिरान ॥ २ ॥
बैठि मैं रहेऊँ पिया सँग, नैनन सुरति निहारि।
चाँद सुरज दोउ देखेऊँ, नहिं उनकी अनुहारि[1] ॥ ३ ॥
माया रच्यो हिंडोलना, सब कोइ भूल्यो आय।
पेंग मारि वहिं गिरि गयो, काहू अंत न पाय ॥ ४ ॥
बिस्न औ ब्रह्मा भूलेऊ, भूल्यो आइ महेस।
मुनि जन इंदर भूलि सब, भूले गौरि गनेस ॥ ५ ॥
सतगुरु सत खंभन गगन, सूरति डोरि लगाय।
उतरै गिरै न टूटई, भूलहि पेंग बढ़ाय ॥ ६ ॥
जगजीवन कहि भाखही, संतन समझहु ज्ञान।
गगन लगन लै लावहू, निरखहु छवि निरबान ॥ ७ ॥
माया बहुत अपरबल, अलख तुम्हार बनाउ।
जगजीवन बिनती करै, बहुरि न फेरि झुलाउ ॥ ८ ॥

॥ उपदेश ॥

सदा सहाई दास पर, मनहिं बिसारैं नाहिं।
जगजीवन साची कहै, कबहूँ न्यारे नाहिं ॥ १ ॥
सत समरथ तें राखि मन, करिय जगत को काम।
जगजीवन यह मंत्र है, सदा सुक्ख बिसराम ॥ २ ॥
सत्त नाम जपु जीयरा, और बृथा करि जान।
माया तकि नहिं भूलसी, समुझि पाछिला ज्ञान ॥ ३ ॥
कहवाँ तें चलि आयहु, कहाँ रहा अस्थान।
सो सुधि बिसरि गई तोहिं, अब कस भयसि हेवान ॥ ४ ॥
अबहूँ समुझि के देखु तैं, तजु हंकार गुमान।
यहि परिहरि[2] सब जाइ है, होइ अंत नुकसान ॥ ५ ॥

(१) बराबर। (२) छोड़कर।

दीन लीन रहु निसु दिना, और सर्बसो त्यागु ।
अंतर बासा किये रहु, महा हितू तें लागु ॥ ६ ॥
काया नगर सोहावना, सुख तब हीं पै होय ।
रमत रहै तेहिं भीतरे, दुख नहिं ब्यापै कोय ॥ ७ ॥
मृत मंडल कोउ थिर नहीं, आवा सो चलि जाय ।
गाफ़िल ह्वै फंदा पर्यो, जहँ तहँ गयो बिलाय ॥ ८ ॥
जगजीवन गहि चरन गुरु, ऐनन[१] निरखि निहारि ।
ऐसी जुगुती रहै जे, लेहैं ताहि उबारि ॥ ९ ॥

यारी साहिब

—:०:—

इनका जीवन समय सम्बत् १७२५ और १७८० के दर्मियान था । जाति के मुसलमान फ़क़ीरी भेष में थे और बीरू साहिब इनके गुरू थे । दिल्ली में अपने गुरू के जीवन समय में उनकी सेवा में बराबर रहे और उनके बाद उनकी गद्दी पर बैठे और वहीं चोला छोड़ा । दिल्ली में उनकी समाधि मौजूद है । सिवाय इनके बुल्ला साहिब के चार प्रसिद्ध चेले और थे—केशवदास; सूफ़ीशाह, शेखनशाह और हस्तमुहम्मद शाह ।

॥ घट मठ ॥

जोति सरूपी आतमा, घट घट रहो समाय ।
परम तत्त मन-भावनो, नेक न इत उत जाय ॥ १ ॥
रूप रेख बरनौं कहा, कोटि सूर परगास ।
अगम अगोचर रूप है, [कोउ] पावै हरि को दास ॥ २ ॥
नैनन आगे देखिये, तेज पुंज जगदीस ।
बाहर भीतर रमि रह्यो, सो धरि राखौ सीस ॥ ३ ॥
बाजत अनहद बाँसुरी, तिरबेनी के तीर ।
राग छतीसो होइ रहे, गरजत गगन गँभीर ॥ ४ ॥

(१) आँख से ।

आठ पहर निरखत रहौ, सन्मुख सदा हजूर ।
कह यारी घर ही मिलै, काहे जाते दूर ॥ ५ ॥
बेला फूला गगन में, बंक नाल गहि मूल ।
नहिं उपजै नहिं बीनसै, सदा फूल कै फूल ॥ ६ ॥
दछिन दिसा मोर नइहरो, उत्तर पंथ ससुरार ।
मान सरोवर ताल है, [तहँ] कामिनि करत सिंगार ॥ ७ ॥
आतम नारि सुहागिनी, सुन्दर आपु सँवारि ।
पिय मिलबे को उठि चली, चौमुख दियना बारि ॥ ८ ॥
धरनि[१] अकास के बाहरे, यारी पिय दीदार ।
सेत छत्र तहँ जगमगै, सेत फटिक उँजियार ॥ ९ ॥
तारनहार समर्थ है, अवर न दूजा कोय ।
कह यारी सतगुरु मिलै, [तो] अचल अरु अम्मर होय ॥१०॥

दरिया साहिब (बिहार वाले)

जीवन समय —१७३१ से १८३७ तक । जन्म और सतसंग स्थान—मौजा धरकंधा जिला आरा । जाति—क्षत्री (दरिया पंथियों के कथन अनुसार), मुसलमान (आम शुहरत से) । गुरू - परम पुरुष साधू के भेष में ।

इनके अनुयाई इन्हें कबीर साहिब का अवतार मानते हैं । दरिया-पंथी खड़े हुए झुक कर मालिक की बंदगी करते हैं जिसे वह "कोरनिश" कहते हैं और फिर मत्था टेक कर सिरदा (सिजदा) करते हैं । हर एक साधू एक रखना (मिट्टी का हुक्का) और भरुका पानी पीने का अपने पास रखता है चाहे जरूरत हो या न हो । इनका मारवाड़ वाले दरिया साहिब के साथ बिचित्र मिलान दोनों की बानी के आदि में दिखलाया है ।

॥ गुरुदेव ॥

दरिया भवजल अगम है, सतगुरु करहु जहाज ।
तेहि पर हंस चढ़ाइ कै, जाय करहु सुख राज ॥ १ ॥
पहुँचै हंस सत सबद से, सतगुरु मिलै जो मीत ।
कह दरिया भव भर्म तजि, बसै चरन महँ चीत ॥ २ ॥

---

(१) पृथ्वी ।

सतगुरु साहिब साच हहिं, देखो सबद बिचारि।
गहो डोरि यह सबद को, तन मन डारो वारि॥ ३॥
सत्त गुरु गमि ज्ञान करु, बिमल सदा परकास।
मम सतगुरु का दास हौं, पद पंकज की आस॥ ४॥
सुकृत पिरेमहिं हितु करहु, सत बोहित[1] पतवार।
खेवट सतगुरु ज्ञान है, उतरि जाव भौ पार॥ ५॥

॥ नाम ॥

सत्त नाम निजु सार है, अमर लोक के जाय।
कह दरिया सतगुरु मिलै, संसय सकल मिटाय॥ १॥
जा के पूँजी नाम है, कबहिं न होवै हानि।
नाम बिहूना मानवा, जम के हाथ बिकानि॥ २॥
हंस नाम अमृत नहिं चाख्यो, नहिं पाये पैसार[2]।
कह दरिया जग अरुझ्यो, इक नाम बिना संसार॥ ३॥

॥ सुमिरन ॥

सुमिरन माला भेष नहिं, नाहिं मसी को अंक।
सत्त सुकृति दृढ़ लाइ कै, तब तोरै गढ़ बंक॥ १॥
सुमिरहु सत्त नाम गति, प्रेम प्रीति चित लाय।
बिना नाम नहिं बाचिहो, मिथ्या जनम गँवाय॥ २॥

॥ शब्द ॥

जैसे तिल में फूल जो, बास जो रहा समाय।
ऐसे सबद सजीवनी, सब घट सुरति दिखाय॥ १॥
कह दरिया सुन संत यह, सबदहि करो बिचार।
जब हीरा हिरंबर होइहै, तब छुटिहै संसार॥ २॥

॥ चितावनी ॥

कोठा महल अटारिया, सुने स्रवन बहु राग।
सतगुरु सबद चीन्हे बिना, ज्यों पछिन महँ काग॥ १॥

---

(१) नाव। (२) धसने न पावै।

कनक कामिनि के फंद में, ललची मन लपटाय।
कलपि कलपि जिव जाइहै, मिर्था जनम गँवाय ॥ २ ॥
मातु पिता सुत बंधवा, सब मिलि करैं पुकार।
अकेल हंस चलि जातु है, कोइ नहिं संग तुम्हार ॥ ३ ॥

॥ बिश्वास ॥

भजन भरोसा एक बल, एक आस बिस्वास।
प्रीति प्रतीति इक नाम पर, (सोइ) संत बिबेकी दास ॥ १ ॥
है खुसबोई पास में, जानि परै नहिं सोय।
भरम लगे भटकत फिरैं, तिरथ बरत सब कोय ॥ २ ॥

॥ घट मठ ॥

दरिया तन से नहिं जुदा, सब किछु तन के माहिं।
जोग जुगत सों पाइये, बिना जुगति किछु नाहिं ॥ १ ॥
अछै बृच्छ ओइ पुरुष हहिं, जिंदा अजर अमान।
मुनिवर थाके पंडिता, बेद कथहि अनुमान ॥ २ ॥

॥ भेद ॥

तीनि लोक के ऊपरे, (तहँ) अभय लोक बिस्तार।
सत्त सुकृत परवाना[1] पावै, पहुँचै जाय करार ॥ १ ॥
अगम पंथ की खेड़ि[2] यह, बूझै बिरला कोइ।
सत साहिब सामरथ हहिं, दरिया सबद बिलोइ[3] ॥ २ ॥
सोभा अगम अपार, हंस बंस सुख पावहीं।
कोइ ज्ञानी करै बिचार, प्रेम तत्तु जा के बसै ॥ ३ ॥
एकै सों अनंत भौ, फूटि डारि बिस्तार।
अंतहूँ फिरि एक है, ताहि खोजु निजु सार ॥ ४ ॥

॥ परिचय ॥

अमी तत्तु अमृत पियै, देखहु सुरति लगाय।
कहत सुनत नहिं बनि परै, जो गति काहु लखाय ॥ १ ॥

(१) एक पाठ में "परवाना" की जगह "का बीड़ा" है। (२) समाज। (३) मथो।

सुधा अग्र परिमल झरै, छिरकहिं बहुत सुढारि।
दया दरस दीदार में, मिटा कलपना झारि॥ २॥
वेवाहा[1] के मिलन सों, नैन भया खुसहाल।
दिल मन मस्त मतवल हुआ, गूँगा गहिर रसाल[2]॥ ३॥
निकट जाय जमराज नहिं, सिर धुनि जम पछिताय।
बुन्द सिन्ध में मिलि रहा, कवन सके बिलगाय॥ ४॥

॥ सूरमा ॥

सूरा सोई सराहिये, जो जूझै दल मन खोल।
कायर कादर बीचले[3], मिला न सबद अमोल॥

॥ उपदेश ॥

काम क्रोध मद लोभ तज, गरब गरूरी झारि।
बिमल प्रेम मनि बारि के, राखु दृष्टि उजियार॥

॥ साच ॥

जहाँ साच तहँ आपु हहिं, निसि दिन होहिं सहाय।
पल पल मनहिं बिलोइये, मीठो मोल बिकाय॥

॥ दया ॥

जौं लगि दया न ऊपजे, सम जुग जाहिं अनंत।
तौं लगि भगति न प्रेम पद, सुकृत सोक बिनु कंत॥

॥ मन ॥

कह दरिया मन कैद करु, जो चाहो सत नाम।
करम काटि नर निजपुर, जाय बसै निजु धाम॥ १॥
मन के जीते जीतिया, मन हारे भौ हानि।
मनहिं बिलोय ज्ञान करि मथनी, तब सुख उपजै जानि॥ २॥

॥ मान ॥

मन की ममता काल है, करम करावै जानि।
गरब मिलायो गरद में, रावन की भइ हानि॥

---

(१) दरिया पंथियों के मूल मन्त्र और इष्ट का नाम। (२) बोलनेवाला। (३) फिसल जाय, पलट जाय।

॥ कामिनि ॥

जो जिव फंदे नारि से, सो नाहिं बंस हमार।
बंस राखि नारी जो त्यागै, सो उतरै भव पार॥

॥ पंडित ॥

पंडित पढ़ि जिनि भूलहू, खोजहु मुक्ति कै भेव।
सास्तर गीता ज्ञान बिचारहु, करहु जनम[1] कै सेव॥ १॥
तब तोहिं जानौं पंडिता, मुक्ती कहि देहु आय।
छप[2] लोक को बात कहु, तब मोर मन पतियाय॥ २॥

॥ मिश्रित ॥

है मगु साफ बराबरे, मंदा लोचन माहिं।
कवन दोष मगु भान कहँ, आपै सूझत नाहिं॥ १॥
पहिले गुड़ सक्कर हुआ, चीनी मिसरी कीन्ह।
मिसरी से कन्दा भया, यही सुहागिनि चीन्ह॥ २॥
पाँच तत्त की कोठरी, ता में जाल जंजाल।
जीव तहाँ बासा करै, निपट नगीचे काल॥ ३॥
दरिया दिल दरियाव है, अगम अपार बेअंत।
सब महँ तुम तुम में सभे, जानि मरम कोइ संत॥ ४॥
बूड़े भेख अलेख स्वाँग धरि, काल बली धरि खाय।
बाचे से जेहिं भर्म नहिं, सतगुरु भये सहाय॥ ५॥
जंगम जोगी सेवड़ा, पड़े काल के हाथ।
कह दरिया सोइ बाचिहै, (जो) सत्तनाम के साथ॥ ६॥

---

(१) जम जो गिनती में चौदह हैं। (२) "छप" अर्थात् गुप्त या छिपा,

दरिया साहब (मारवाड़ वाले)

——:०:——

जीवन समय सम्बत् १७३२ और १८४४ के दर्मियान। जन्म स्थान—जैतारन गाँव, मारवाड़। सतसंग स्थान मौज़ा रैन परगना मेड़ता जाति मुसलमान धुनियाँ। गुरु प्रेमजी बीकानेरी।

इनके पिता जब यह सात बरस के थे मर गये जिससे यह अपने नाना के घर रैन गाँव में आकर रहे। इन्होंने महाराज बक्तसिंहजी अपने देश के राजा को अपने गुरुमुख चेले सुखरामदास लोहार के द्वारा एक असाध रोग छुड़ा कर मंत्र-उपदेश किया।

॥ गुरुदेव ॥

दरिया सतगुरु भेंटिया, जा दिन जन्म सनाथ।
स्रवना सबद सुनाइ के, मस्तक दीन्हा हाथ॥ १॥
दरिया सतगुरु सबद को, लागी चोट सुठौर।
चंचल सों निस्चल भया, मिटि गइ मन की दौड़॥ २॥
डूबत रहा भवसिंध में, लोभ मोह की धार।
दरिया गुरु तैरू[1] मिला, कर दिया पैलै पार॥ ३॥
जन दरिया सतगुरु मिला, कोई पुरबले पुन्न।
जड़ पलट चेतन किया, आनि मिलाया सुन्न॥ ४॥
दरिया गुरु किरपा करी, सबद लगाया एक।
लागतही चेतन भया, नेतर खुला अनेक॥ ५॥
जैसे सतगुरु तुम करी, मुख से कछू न होय।
बिष भाँड़े बिष काढ़ करि, दिया अमी रस मोय॥ ६॥
गुरु आये घन गरज करि, अंतर कृपा उपाय।
तपता से सीतल किया, सोता लिया जगाय॥ ७॥
गुरु आये घन गरज करि, सबद किया परकास।
बीज पड़ा था भूमि में, भई फूल फल आस॥ ८॥
यह दरिया की बीनती, तुम सेती महराज।
तुम भृंगी मैं कीट हूँ, मेरी तुम को लाज॥ ९॥

---

(१) तैराक।

सतगुरु सा दाता नहीं, नहिं नाम सरीखा[1] देव ।
सिष सुमिरन साचा करै, हो जाय अलख अभेव ॥१०॥
भवजल बहता जात था, संसय मोह की बाढ़ ।
दरिया मोहिं गुरु कृपा करि, पकड़ बाँह लिया काढ़ ॥११॥

॥ नाम ॥

दरिया सूरज ऊगिया, चहुँ दिसि भया उजास ।
नाम प्रकासै देंह में, (तौ) सकल भरम का नास ॥ १ ॥
दरिया नर तन पाय करि, कीया चाहे काज ।
राव रंक दोनों तरैं, जो बैठे नाम जहाज ॥ २ ॥
लोह पलट कंचन भया, करि पारस को संग ।
दरिया परसै नाम को, सहजहिं पलटै अंग ॥ ३ ॥
दरिया नाके नाम के, बिरला आवै कोय ।
जो आवै तो परम पद, आवा गवन न होय ॥ ४ ॥
दरिया परछे[2] नाम के, दूजा दिया न जाय ।
तन मन आतम वार करि, राखीजे उर माँय ॥ ५ ॥
दरिया सतगुरु सबद ले, करै नाम संजोग ।
ज्ञान खुलै अरबल[3] बढ़ै, देंही रहै निरोग ॥ ६ ॥
दरिया अमल[4] है आसुरी, पिये होय सैतान ।
नाम रसायन जो पियै, सदा छाक[5] गलतान ॥ ७ ॥

॥ सुमिरन ॥

नाम भजै गुरु सबद ले, तौ पलटै मन देंह ।
दरिया छाना[6] क्यों रहै, भू पर बूठा[7] मेंह ॥ १ ॥
दरिया नाम है निरमला, पूरन ब्रह्म अगाध ।
कहे सुने सुख ना लहै, सुमिरे पावै स्वाद ॥ २ ॥
दरिया सुमिरै नाम को, दूजी आस निवारि ।
एक आस लागा रहै, तौ कधी न आवै हारि ॥ ३ ॥

---

(१) बराबर । (२) बदले । (३) उमर । (४) नशा । (५) मस्त । (६) छप्पर । (७) बरसा ।

दरिया सुमिरै नाम को, आतम को आधार।
काया काँची काँच सी, कंचन होत न बार ॥ ४ ॥
जो काया कंचन भई, रतनों जड़िया चाम।
दरिया कहै किस काम का, जो मुख नाहीं नाम ॥ ५ ॥

॥ बिरह ॥

दरिया हरि किरपा करी, बिरहा दिया पठाय।
यह बिरहा मेरे साध को, सोता लिया जगाय ॥ १ ॥
बिरह बियापी देंह में, किया निरंतर बास।
तालाबेली जीव में, सिसके साँस उसाँस ॥ २ ॥
दरिया बिरही साध का, तन पीला मन सूख।
रैन न आवै नींदड़ी, दिवस न लागै भूख ॥ ३ ॥
बिरहिन पिउ के कारने, ढूँढ़न बनखँड जाय।
निसि बीती पिउ ना मिला, दरद रहा लिपटाय ॥ ४ ॥

॥ साध ॥

दरिया लच्छन साध का, क्या गिरही क्या भेष।
निहकपटी निरसंक रहि, बाहर भीतर एक ॥ १ ॥
सत्त सबद सत गुरुमुखी, मत गजंद[1] मुख दंत।
यह तो तोड़ै पौल गढ़, वह तोड़ै करम अनंत ॥ २ ॥
दाँत रहै हस्ती बिना, (तो) पौल न टूटै कोय।
कै कर धारै कामिनी, कै खेलारौं[2] होय ॥ ३ ॥
साध कह्यो भगवंत कह्यो, कहै ग्रन्थ और बेद।
दरिया लहै न गुरु बिना, तत्त नाम का भेद ॥ ४ ॥
मतबादी जानै नहीं, ततबादी की बात।
सूरज ऊगा उल्लुवा, गिनै अँधारी रात ॥ ५ ॥
साधू जल का एक अँग, बरतै सहज सुभाव।
ऊँची दिसा न संचरै, निवन[3] जहाँ ढलकाव ॥ ६ ॥

(१) हाथी। (२) खिलौना। (३) नीचा।

मच्छी पंछी साध का, दरिया मारग नाहिं ।
अपनी इच्छा से चलैं, हुकम धनी के माहिं ॥ ७ ॥
दरिया संगत साध की, सहजे पलटै अंग ।
जैसे संग मजीठ के, कपड़ा होय सुरंग ॥ ८ ॥
जन दरिया अँम साध का, सीतल बचन सरीर ।
निर्मल दसा कमोदिनी, मिले मिटावै पीर ॥ ९ ॥

॥ सतसंग ॥

दरिया छुरी कसाव[1] की, पारस परसैं आय ।
लोह पलट कंचन भया, आमिष[2] भखा न जाय ॥ १ ॥
लोह काला भीतर कठिन, पारस परसैं सोय ।
उर नरमी अति निरमला, बाहर पीला होय ॥ २ ॥
पारस परसा जानिये, जो पलटै अंग अंग ।
अंग अंग पलटै नहीं, तौ है झूठा संग ॥ ३ ॥

॥ सूरमा ॥

इष्टी स्वाँगी बहु मिले, हिरसी मिले अनंत ।
दरिया ऐसा ना मिला, नाम रता कोइ संत ॥ १ ॥
दरिया सूरा गुरमुखी, सहै सबद का घाव ।
लागत ही सुधि बीसरै, भूलै आन सुभाव ॥ २ ॥
सबहि कटक[3] सूरा नहीं, कटक माहिं कोइ सूर ।
दरिया पड़ै पतंग ज्यों, जब बाजै रन तूर ॥ ३ ॥
पड़ै पतंगा अगिन में, देह की नाहिं सँभाल ।
दरिया सिष सतगुर मिलै, तौ हो जाय निहाल ॥ ४ ॥
दरिया खेत बुहारिया[4], चढ़ा दई की गोद ।
कायर काँपै खड़बड़ै, सूरा के मन मोद ॥ ५ ॥
सूर बीर की सभा में, कायर बैठे आय ।
सूरातन आवै नहीं, कोटि भाँति समुझाय ॥ ६ ॥

(१) कसाई । (२) माँस । (३) फौज । (४) साफ कर डाला—दूसरे पाठ में "जुहारिया" है जिसके अर्थ पुकारने या ललकारने के होते हैं ।

सूर न जानै कायरी, सूरातन से हेत।
पुरजा पुरजा ह्वै पड़ै, तहू न छाड़ै खेत ॥ ७ ॥

सूरा के सिर साम[1] है, साधों के सिर राम।
दूजी दिस ताकैं नहीं, पड़ै जो करड़ा काम ॥ ८ ॥

सूर चढ़ै संग्राम को, मन में संक न कोय।
आपा अरपै राम को, होनी होय सो होय ॥ ९ ॥

दरिया सो सूरा नहीं, जिन देह करी चकचूर।
मन को जीति खड़ा रहै, मैं बलिहारी सूर ॥१०॥

॥ भेद ॥

जन दरिया हिरदा बिचे, हुआ ज्ञान परकास।
हौद भरा जहँ प्रेम का, तहँ लेत हिलोरा दास ॥ १ ॥

दरिया चढ़िया गगन को, मेरु उलंघा[2] डड।
सुख उपजा साईं मिला, भेंटा ब्रह्म अखंड ॥ २ ॥

दरिया मेरु उलंघि करि, पहुँचा त्रिकुटी संध।
दुख भाजा सुख ऊपजा, मिटा भर्म का धुंध ॥ ३ ॥

अनंतहि चंदा ऊगिया, सूरज कोटि प्रकास।
बिन बादल बरषा घनी, छह रितु बारह मास ॥ ४ ॥

दरिया सूरज ऊगिया, सब भ्रम गया बिलाय।
उर में गंगा परगटी, सरवर काहे जाय ॥ ५ ॥

नौबत बाजै गगन में, बिन बादल घन गाज।
महल बिराजैं परम गुरु, दरिया के महराज ॥ ६ ॥

मन मेरू[3] से बावड़ै,[4], त्रिकुटी लग ओंकार।
जन दरिया इन के परे, ररंकार निरधार ॥ ७ ॥

ररंकार धुन हौद में, गरक[5] भया कोइ दास।
जन दरिया ब्यापै नहीं, नींद भूख और प्यास ॥ ८ ॥

---

(१) हथियार का नाम। (२) लाँघ गया। (३) पहाड़ अर्थात् त्रिकुटी जिसके नीचे तक मन की गम है परन्तु ओंकार शब्द उसके परे से आता है। (४) लौट आवै। (५) डूब गया।

दरिया त्रिकुटी हद्द लग, कोइ पहुँचै संत सयान ।
आगे अनहद ब्रह्म है, निराधार निरबान ॥ ६ ॥
दरिया अनहद अगिन का, अनुभव धूँवा जान ।
दूरा सेती देखिये, परसे होय पिछान ॥१०॥
अगम दरीचा अगम घर, जहँ कोइ रूप न रेख ।
जहँ दरिया दुबिधा नहीं, स्वामी सेवक एक ॥११॥
पाँच तत्त गुन तीन से, आतम भया उदास ।
सरगुन निरगुन से मिला, चौथे पद में बास ॥ १२॥
मन बुधि चित पहुँचै नहीं, सबद[1] सकै नहिं जाय ।
दरिया धन वे साधवा, जहाँ रहे लौ लाय ॥१३॥

॥ पारख ॥

दरिया चिंतामनि रतन, धर्यो स्वान पै जाय ।
स्वान सूँघि कानैं[2] भया, वह टूका ही चाय ॥ १ ॥
हीरा लेकर जौहरी, गया गँवारै देस ।
देखा जिन कंकर कहा, भीतर परख न लेस ॥ २ ॥
पारख आइ चेतन[3] भया, मन दे लीना मोल ।
गाँठ बाँध भीतर धसा, मिट गइ डावाँडोल ॥ ३ ॥

॥ जाग्रत ॥

दरिया सोता सकल जग, जागत नाहीं कोय ।
जागे में फिर जागना, जागा कहिये सोय ॥ १ ॥
साध जगावै जीव को, मत[4] कोइ उट्ठै जाग ।
जागे फिर सोवै नहीं, जन दरिया बड़ भाग ॥ २ ॥
माया मुख जागै सबै, सो सूता करि जान ।
दरिया जागै ब्रह्म दिस, सो जागा परमान ॥ ३ ॥

---

(१) अनहद शब्द ब्रह्मांड में होता है चौथे लोक या निर्मल चेतन्य देश में जो उसके परे है सत्य शब्द गाजता है । (२) किनारे । (३) पहिचाना । (४) कदाचित ।

॥ कपटी ॥

कबहुक भरिया समुँद सा, कबहुक नाहीं छाँट[1]।
जन दरिया इत उत रता, ते कहिये किरकाँट[2] ॥ १ ॥
किरकाँटा किस काम का, पलट करै बहुँ रंग।
जन दरिया हंसा भला, जद तद एकै रंग ॥ २ ॥
दरिया बगुला ऊजला, उज्जल ही है हंस।
ये सरवर मोती चुगैं, वा के मुख में मंस ॥ ३ ॥
बाहर से उज्जल दसा, भीतर मैला अंग।
ता सेती कौवा भला, तन मन एकहि रंग ॥ ४ ॥
सीखत ज्ञानी ज्ञान गम, करै ब्रह्म की बात।
दरिया बाहर चाँदना, भीतर काली रात ॥ ५ ॥

॥ उपदेश ॥

जन दरिया उपदेस दे, जा के भीतर चाय।
नातर गैला[3] जगत से, बकि बकि मरै बलाय ॥ १ ॥
बिरही प्रेमी मोम-दिल, जन दरिया निहकाम।
आसिक दिल दीदार का, जा से कहिये राम ॥ २ ॥
दरिया गैला जगत से, समझ औ मुख से बोल।
नाम रतन की गाँठड़ी, गाहक बिन मत खोल ॥ ३ ॥
दरिया गैला जगत को, क्या कीजे सुलझाय।
सुलझाया सुलझै नहीं, फिर सुलझ सुलझ उलझाय ॥ ४ ॥
दरिया सौ अंधा बिचै, एक सुझाको जाय।
वह तो बात देखी कहै, वा के नाहीं दाय[4] ॥ ५ ॥
कंचन कंचन ही सदा, काच काच सो काच।
दरिया झूठ सो झूठ है, साच साच सो साच ॥ ६ ॥
साध पुरुष देखी कहैं, सुनी कहै नहिं कोय।
कानों सुनी सो झूठ सब, देखी साची होय ॥ ७ ॥

---

(१) छींटा। (२) गिरगिट। (३) गँवार। (४) पसंद।

दूलनदास जी

यह परम भक्त जगजीवन साहिब के गुरुमुख शिष्य थे इस लिये इनका जन्म समय उनके जन्म के अनुमान वीस पचीस बरस पीछे अर्थात् अट्ठारहवें शतक के मध्य में मान लेना चाहिये। मित्र-बन्धु बिनोद में इनका ग्रंथ-रचना काल सम्बत् १८७० लिखा है परन्तु सत्तनामियों के अनुसार इसके पहिले ठहरेगा। यह जाति के सोमवंशी क्षत्री थे, मौजा समेसी जिला लखनऊ में जन्म लिया और मौजा धर्म्मे जिला रायबरैली में रह कर सतसंग कराया, सदा गृहस्थ आश्रम ही में रहे।

॥ गुरु महिमा ॥

गुरु ब्रह्मा गुरु बिस्नु हैं, गुरु संकर गुरु साध।
दूलन गुरु गोबिन्द भजु, गुरुमत अगम अगाध ॥ १ ॥
पति सनमुख सो पतिब्रता, रन सनमुख सो सूर।
दूलन सत सनमुख सदा, गुरुमुख गनी[1] सो पूर ॥ २ ॥
दूलन दुइ कर जोरि कै, याचै सतगुरु दानि।
राखहु सुरति हमारि दिढ़, चरन कँवल लपटानि ॥ ३ ॥
श्रीसतगुरु मुख चंद्र तें, सबद सुधा झरि लाग।
हृदय सरोवर राखु भरि, दूलन जागे भागि ॥ ४ ॥
दूलन गुरु तें बिषै बस, कपट करहि जे लोग।
निर्फल तिन की सेव है, निर्फल तिन का जोग ॥ ५ ॥

॥ नाम महिमा ॥

गावै सूरति सुन्दरी, बैठी सत अस्थान।
जन दूलन मन मोहिनी, नाम सुरंगी तान ॥ १ ॥
दूलन यहि जग जनमि कै, हर दम रटना नाम।
केवल नाम सनेह बिनु, जन्म समूह[2] हराम ॥ २ ॥
स्वास पलक माँ नाम भजु, बृथा स्वास जनि खोउ।
दूलन ऐसी स्वास को, आवन होउ न होउ ॥ ३ ॥
स्वास पलक माँ जातु है, पलकहिं माँ फिरि आउ।
दूलन ऐसी स्वास से, सुमिरि सुमिरि रट लाउ ॥ ४ ॥

---

(१) धनी, बेपरवाह। (२) समस्त।

रसना रटि जेहि लागिगे, चाखि भयो मस्तान ।
दूलन पायो परम पद, निरखि भयो निर्बान ॥ ५ ॥
सुनत चिकार पिपील की, ताहि रटहु मन माहिं ।
दुलनदास बिस्वास भजु, साहिब बहिरा नाहिं ॥ ६ ॥
चितवन नीची ऊँच मन, नामहिं जिकिर लगाय ।
दूलन सूझै परम पद, अंधकार मिटि जाय ॥ ७ ॥
ताति बाउ लागै नहीं, आठो पहर अनंद ।
दूलन नाम सनेह तें, दिन दिन दसा दुचंद ॥ ८ ॥
दूलन केवल नाम धुनि, हृदय निरंतर ठानु ।
लागत लागत लागिहै, जानत जानत जानु ॥ ९ ॥
दूलन केवल नाम लिय, तिन भेंटेउ जगदीस ।
तन मन छाकेउ दरस रस, थाकेउ पाँच पचीस ॥१०॥
सीतल हृदय सुचित्त ह्वै, तजि कुतर्क कुबिचार ।
दूलन चरनन परि रहै, नाम कि करत पुकार ॥११॥
गुरू बचन बिसरै नहीं, कबहूँ न टूटै डोरि ।
पियत रहौ सहजै दुलन, नाम रसायन घोरि ॥१२॥
दुलन नाम पारस परसि, भयो लोह तें सोन ।
कुन्दन होइ कि रेसमी, बहुरि न लोहा होन ॥१३॥
दुलन भरोसे नाम के, तन तकिया धरि धीर ।
रहै गरीब अतीम[1] होइ, तिन काँ कही फकीर ॥१४॥
अंध कूप संसार तें, सुरति आनहु फेरि ।
चरन सरन बैठारि कै, दुलन नाम रहु टेरि ॥१५॥
चारा पील पिपील को, जो पहुँचावत रोज ।
दूलन ऐसे नाम की, कीन्ह चाहिये खोज ॥१६॥
यहि कलि काल कुचाल तकि, आयो भागि डराइ ।
दूलन चरनन परि रहे, नाम की रटनि लगाइ ॥१७॥

(१) जिसके माँ बाप मर गये हैं ।

दूलन नाम रस चाखि सोइ, पुष्ट पुरुष परबीन ।
जिनके नाम हृदय नहीं, भये ते हिजरा हीन ॥१८॥
मरने की डर छोड़ि कै, नाम भजो मन माहिं ।
दूलन यहि जग जनमि कै, कोऊ अमर है नाहिं ॥१६॥
नामी लोग सबै बड़े, काको कहिये छोट ।
सब हित दूलनदास जिन, लीन्ह नाम की ओट ॥२०॥
दूलन चरनन सीस दै, नाम रटहु मन माँह ।
सदा सर्बदा जनम भरि, जा तें खैर सलाह ॥२१॥
नाम पुकारत राम जी, लागहिं भक्त गुहारि ।
दूलन नाम सनेह की, गहि रहु डोरि सँभारि ॥२२॥
राम नाम दुइ अच्छरै, रटै निरंतर कोइ ।
दूलन दीपक बरि उठै, मन परतीत जो होइ ॥२३॥

॥ शब्द महिमा ॥

सूर चंद नहिं रैन दिन, न हें तहँ साँझ बिहान ।
उठत सबद धुनि सुन्य माँ, जन दूलन अस्थान ॥ १ ॥
जगजीवन के चरन मन, जन दूलन आधार ।
निसु दिन बाजै बाँसुरी, सत्य सबद झनकार ॥ २ ॥
चरचा बाद बिबाद की, संगति दीन्हेउ त्यागि ।
दूलन माते अधर धुनि, भक्ति खुमारी[1] लागि ॥ ३ ॥
कोउ सुनै राग रु रागिनी, कोउ सुनै कथा पुरान ।
जन दूलन अब का सुनै, जिन सुनी मुरलिया तान ॥ ४ ॥
सबदै नानक नामदे, सबदै दास कबीर ।
सबदै दूलन जगजिवन, सबदै गुरु अरु पीर ॥ ५ ॥

॥ चितावनी ॥

दूलन यह परिवार सब, नदी नाव संजोग ।
उतरि परे जहँ तहँ चले, सबै बटाऊ लोग ॥ १ ॥
दूलन यहि जग आइ कै, का को रहो दिमाक[2] ।
चंद रोज को जीवना, आखिर होना खाक ॥ २ ॥

(१) नशा । (२) अहंकार ।

दूलन काया कबर है, कहँ लगि करौं बखान।
जीवत मनुआँ मरि रहै, फिरि नहिं कबर समान[1] ॥ ३ ॥

॥ प्रेम ॥

दूलन सत मनि छबि लहौ, निरखि चरन धरि सीस।
लागि प्रेम रस मस्त है, थाके पाँच पचीस ॥ १ ॥
दुलन कृपा तें पाइये, भक्ति न हाँसी ख्याल।
काहू पाई सहज हीं, कोउ ढूँढ़त फिरत बिहाल ॥ २ ॥
दूलन बिरवा प्रेम को, जामेउ जेहि घट माहिं।
पाँच पचीसौ थकित भे, तेहि तरवर की छाहिं ॥ ३ ॥
जग्य दान तप तीर्थ ब्रत, धर्म जे दूलनदास।
भक्ति-आसरित तप सबै, भक्ति न केहु की आस ॥ ४ ॥
दुलन तिरथ तप दान तें, और पाप मिटि जाइ।
भक्त-द्रोह अघ ना मिटै, करै जे कोटि उपाइ ॥ ५ ॥
धृग तन धृग मन धृग जनम, धृग जीवन जग माहिं।
दूलन प्रीति लगाय जिन्ह, ओर निबाही नाहिं ॥ ६ ॥
समरथ दूलनदास के, आस तोष[2] तुम राम।
तुम्हरे चरनन सीस दै, रटौं तुम्हारो नाम ॥ ७ ॥

॥ धीरज ॥

दूलन सतगुरु मन कहै, धीरज बिना न ज्ञान।
निरफल जोग सँतोष बिन, कहौं सबद परमान ॥ १ ॥
दूलन धीरज खंभ कहँ, जिकिरि बड़ेरा लाइ।
सूरत डोरी पोढ़ि करि, पाँच पचीस झुलाइ ॥ २ ॥

॥ बिनय ॥

साइं तेरी सरन हौं, अब की मोहिं निवाज।
दूलन के प्रभु राखिये, यहि बाना की लाज ॥ १ ॥

(१) फिर तन रूपी कबर में न पैठैगा अर्थात् आवागमन से छूट जायगा। (२) आनंद।

इत उत की लज्जा तुम्हें, रामराय सिर मौर।
दूलन चरनन लगि रहे, राखि भरोसा तोर ॥ २ ॥
चहिये सो करिहै, सरम साईं तेरे दस्त।
बाँध्यो चरन सनेह मन, दुलनदास रस मस्त ॥ ३ ॥
तुला रासि तीनिउँ सदा, जा को मन इक ठौर[1]।
राम पियारे भक्त सोइ, दूलन के सिर मौर ॥ ४ ॥
दूलन एक गरीब के, हरि से हितू न और।
ज्यों जहाज के काग को, सूझै और न ठौर ॥ ५ ॥
त्रिभुवन करता रामजो, दास तुम्हार कहाइ।
तुम्हें छाड़ि दूलन कहौ, केहि काँ याँचन जाइ ॥ ६ ॥
राम नाम दीपक सिखा, दूलन दिल ठहराय।
करम बिचारे सलभ[2] से, जरहिं उड़ाय उड़ाय ॥ ७ ॥

॥ उपदेश ॥

बंधन सकल छुड़ाइ करि, चित चरनन तें बाँधु।
दुलनदास बिस्वास करि, साइँ काँ आराधु ॥ १ ॥
ज्ञानी जानहिं ज्ञान बिधि, मैं बालक अज्ञान।
दूलन भजु बिस्वास मन, धुरपुर बाजु निसान ॥ २ ॥
दूलन चरनन लागि रहु, नाम की करत पुकार।
भक्ति सुधारस पेट भरु, का दहुँ लिखा लिलार ॥ ३ ॥
जग रहु जग तें अलग रहु, जोग जुगति की रीति।
दूलन हिरदे नाम तें, लाइ रहौ दृढ़ प्रीति ॥ ४ ॥

॥ साधु महिमा ॥

दुलन साधु सब एक हैं, बाग फूल सम तूल[3]।
कोइ कुदरती सुबास है, और फूल के फूल ॥ १ ॥

(१) जिसका मन एक ठौर अर्थात् स्थिर है उसके तराजू की तीनों डोरियाँ सदा एक सम और नथी हैं, भाव, तिरगुन का वेग नहीं व्यापता। (२) पतंगा। (३) तुल्य = बराबर।

जा दिन संत सताइया, ता छिन उलटि खलक्क[1]।
छत्र खसै धरनी धसै, तीनिउँ लोक गरक्क[2] ॥ २ ॥

॥ फुटकर ॥

भाग बड़े यहि जग्र भा, जेहि के मन बैराग।
विषय भोग परिहरि दुलन, चरन कमल चित लाग ॥ १ ॥
दूलन पीतम जेहि चहैं, कही सुहागिल ताहि।
आपन आपन भाग है, साझा काहु क नाहिं ॥ २ ॥
सती अगिन की आँच सहि, लोह आँच सहि सूर।
दूलन सत आँचहि सहै, राम भक्त सो पूर ॥ ३ ॥
दूलन चोला चाम को, आयो पहिरि जहान।
इहाँ कमाई बसि भयो, सहना औ सुलतान ॥ ४ ॥
दूलन छोटे नै बड़े, मुसलमान का हिन्दु।
भूखे देवैं भोरियाँ, सेवैं गुरु गोबिन्दु ॥ ५ ॥
काल कर्म की गमि नहीं, नहिं पहुँचै भ्रम बान।
दूलन चरन सरन रहु, छेम कुसल अस्थान ॥ ६ ॥
दूलन यह तन जक्त भा, मन सेवै जगदीस।
जब देखो तबही पर्यो, चरनन दीन्हे सीस ॥ ७ ॥
कतहुँ प्रगट नैनन निकट, कतहूँ दूरि छिपानि।
दूलन दीनदयाल ज्यों, मालव मारू पानि[3] ॥ ८ ॥

बुल्ला साहिब

जीवन-समय—सम्बत् १७५० और १८२५ के दर्मियान। जन्म स्थान—ज़िला ग़ाजीपुर। सतसंग स्थान—भुरकुड़ा गाँव ज़िला ग़ाजीपुर। जाति—कुनबी। गुरू—यारी साहिब।

घरऊ नाम इनका बुलाकीराम था और पहिले गुलाल साहिब की सेवा में हरवाहे का काम करते थे। फिर गुलाल साहिब इनका चमत्कार देख कर इनके चेले हुए।

[देखो जीवन-चरित्र इनकी बानी के आदि में]

---

(१) खलक़=सृष्टि। (२) डूब जाना। (३) संस्कृत में "मालव" मालवा देश को कहते हैं जहाँ पानी की बहुतायत है, और "मारू" मड़वार देश का नाम है जहाँ की भूमि बलुई (मरु) है और पानी का टोटा है।

॥ बेहद ॥

अछै रंग में रंगिया, दीन्ह्यो प्रान अकोल[1]।
उनमुनि मुद्रा भस्म धरि, बोलत अमृत बोल ॥ १ ॥
बोलत डोलत हँहि खेलत, आपुहिं करत कलोल।
अरज करौं बिनु दामहीं, बुल्लहिं लीजै मोल ॥ २ ॥
बिना नीर बिनु मालिहीं, बिनु सींचे रँग होय।
बिनु नैनन तहँ दरसनो, अस अचरज इक सोय ॥ ३ ॥
ना वह टूटै ना वह फूटै, ना कबहीं कुम्हिलाय।
सर्ब कला गुन आगरो[2], मोपै बरनि न जाय ॥ ४ ॥

॥ उपदेश ॥

आठ पहर चौंसठ घरी, जन बुल्ला धरु ध्यान।
नहिं जानो कौनी घरी, आइ मिलैं भगवान ॥ १ ॥
आठ पहर चौंसठ घरी, भरो पियाला प्रेम।
बुल्ला कहै बिचारि कै, इहै हमारो नेम ॥ २ ॥
जग आये जग जागिये, पगिये हरि के नाम।
बुल्ला कहै बिचारि कै, छोड़ि देहु तन धाम ॥ ३ ॥

केशवदास जी

जीवन समय इन महात्मा का सम्बत् १७५० और १८२५ के दर्मियान पाया जाता है। यह जाति के बनिया और यारी साहिब के चेले थे अर्थात् उसी गुरु घराने के थे जिसमें पलटू साहिब सरीखे संत प्रगट हुए।

सुरति समानो ब्रह्म में, दुबिधा रह्यो न कोय।
केसो संभलि खेत में, परै सो संभलि होय ॥ १ ॥
सात दीप नौ खंड के, ऊपर अगम अबास।
सबद गुरू केसो भजै, सो जन पावै बास ॥ २ ॥
आस लगें बासा मिलै, जैसी जा की आस।
इक आसा जग बास है, इक आसा हरि पास ॥ ३ ॥

(१) घूस, यहाँ न्योछावर का भाव है। (२) श्रेष्ठ।

आसा मनसा सब थकी, मन निज मनहिं मिलान।
ज्यों सरिता समुँदर मिलो, मिटिगो आवन जान ॥ ४ ॥
जेहि घर केसो नहिं भजन, जीवन प्रान अधार।
सो घर जम का गेह है, अंत भये ते छार ॥ ५ ॥
जगजीवन घट घट बसै, करम करावन सोय।
बिन सतगुरु केसो कहै, केहि विधि दरसन होय ॥ ६ ॥
सतगुरु मिल्यो तो का भयो, घट नहिं प्रेम प्रतीत।
अंतर कोर न भींजई, ज्यों पत्थल जल भीत ॥ ७ ॥
केसो दुबिधा डारि दे, निर्भय आतम सेव।
प्रान पुरुष घट घट बसै, सब महँ सबद अभेव ॥ ८ ॥
पंच तत्त गुन तीन के, पिंजर गढ़े अनंत।
मन पंछी सो एक है, पारब्रह्म को तंत ॥ ९ ॥
ऐसो संत कोइ जानि है, सत्त सबद सुनि लेह।
केसो हरि सों मिलि रहो, न्यौछावर करि देंह ॥१०॥
भजन भलो भगवान को, और भजन सब धंध।
तन सरवर मन हंस है, केसो पूरन चंद ॥११॥

चरनदास जी

जीवन-समय—१७६० से १८३९ तक। जन्म स्थान—मौजा डेहरा, मेवात (राजपूताना)। सतसंग स्थान—दिल्ली (पंजाब)। जाति और आश्रम—दूसर बनिया, गृहस्थ। गुरू—शुकदेव मुनि।

इनका चरनदासी पथ हिन्दुस्तान के बहुतेरे हिस्सों में फैला हुआ है। कहते हैं कि ब्यास के पुत्र शुकदेव मुनि जिन्हें अमर बतलाते हैं इन्हें उन्नीस बरस की अवस्था में जंगल में मिले और शब्द मार्ग का उपदेश दिया। इन्होंने दिल्ली ही में चोला छोड़ा।

॥ गुरुदेव ॥

गुरु समान तिहुँ लोक में, और न दीखै कोय।
नाम लिये पातक नसै, ध्यान किये हरि होय ॥ १ ॥
गुरु ही के परताप सूँ, मिटै जगत की ब्याध।
राग दोष दुख ना रहै, उपजै प्रेम अगाध ॥ २ ॥

गुरु के चरनन में धरो, चित बुधि मन हंकार।
जब कुछ आपा ना रहै, उतरै सबही भार॥ ३॥
तुम दाता हम मंगता, स्त्री सुकदेव दयाल।
भक्ति दई ब्याधा गई, मेटे जग जंजाल॥ ४॥
किसू काम के थे नहीं, कोई न कौड़ी देह।
गुरु सुकदेव कृपा करी, भई अमोलक देह॥ ५॥
दूसर के बालक हुते, भक्ति बिना कंगाल।
गुरु सुकदेव कृपा करी, हरि धन किये निहाल॥ ६॥
जा धन कूँ ठग ना लगै, धारी[1] सकै न लूट।
चोर चुराय सकै नहीं, गाँठ गिरै नहिं छूट॥ ७॥
बलिहारी गुरु आपने, तन मन सदके[2] जाँव।
जीव ब्रह्म छिन में कियो, पाई भूली ठाँव॥ ८॥
जब सूँ गुरु किरपा करी, दरसन दीन्हे मोहिं।
रोम रोम में वै रमे, चरनदास नहिं कोय॥ ९॥
सतगुरु मेरा सूरमा, करै सबद की चोट।
मारै गोला प्रेम का, ढहै भरम का कोट॥१०॥
मुख सेती बोलन थका, सुनै थका जो कान।
पावन सूँ फिरबा थका, सतगुर मारा बान॥११॥
मैं मिरगा[3] गुरु पारधी[4], सबद लगायो बान।
चरनदास घायल गिरे, तन मन बीधे प्रान॥१२॥
सतगुरु सबदी तेग[5] है, लागत दो करि देहि।
पीठ फेरि कायर भजै, सूरा सनमुख लेहि॥१३॥
सतगुरु सबदी लागिया, नावक[6] का सा तीर।
कसकत है निकसत नहीं, होत प्रेम की पीर॥१४॥

(१) धरकार जो लुटेरू होते हैं। (२) न्योछावर। (३) हिरन। (४) शिकारी। (५) तलवार। (६) गाँसी।

सतगुरु सबदो बान है, अँग अँग डारे तोड़।
प्रेम खेत घायल गिरे, टाँका लगै न जोड़ ॥१५॥
सतगुरु के मारे मुए, बहुरि न उपजैं आय।
चौरासी बंधन छुटैं, हरिपद पहुँचैं जाय ॥१६॥
गुरु के आगे जाय करि, बोलै साचे बोल।
कछू कपट राखै नहीं, अरज करै मन खोल ॥१७॥
यह आपा तुम कूँ दिया, जित चाहौ तित राखि।
चरनदास द्वारे परो, भावै झिड़कौ लाखि ॥१८॥
हरि सेवा कृत सौ बरस, गुरु सेवा पल चार।
तौ भी नहीं बराबरी, बेदन कियो बिचार ॥१९॥
हरि रूठें कुछ डर नहीं, तू भी दे छुटकाय।
गुरु को राखौ सीस पर, सब बिधि करैं सहाय ॥२०॥
गुरु कहैं सो कीजिये, करैं सो कीजै नाहिं।
चरनदास की सीख सुन, यही राख मन माहिं ॥२१॥

। सुमिरन ॥

सकल सिरोमनि नाम है, सब धरमन के माहिं।
अनन्य भक्त वह जानिये, सुमिरन भूलै नाहिं ॥ १ ॥
मन ही मन में जाप करु, दरपन उज्जल होय।
दरसन होवै राम का, तिमिर जाय सब खोय ॥ २ ॥
करते अनहद ध्यान के, ब्रह्म रूप ह्वै जाय।
चरनदास यों कहत है, बाधा सब मिटि जाय ॥ ३ ॥
गगन मध्य जो पदुम है, बाजत अनहद नूर।
दल हजार को कँवल है, पहुँचे गुरुमत सूर ॥ ४ ॥

॥ अनहद ॥

जोग जुक्ति करि खोजि ले, सुरत निरत करि चीन्ह।
दस प्रकार अनहद बजै, होय जहाँ लयलीन ॥

॥ लव ॥

जग माहीं न्यारे रहौ, लगे रहौ हरि ध्यान।
पृथवी पर देही रहै, परमेसुर में प्रान॥

॥ बिरह और प्रेम ॥

प्रेम बराबर जोग ना, प्रेम बराबर ज्ञान।
प्रेम भक्ति बिन साधिबो, सब ही थोथा ध्यान॥ १॥
हिरदै माहीं प्रेम जो, नैनों झलकै आय।
सोई छका हरि रस पगा, वा पग परसो धाय॥ २॥
गद गद बानी कंठ में, आँसू टपकै नैन।
वह तो बिरहिन राम की, तलफत है दिन रैन॥ ३॥
हाय हाय हरि कब मिलैं, छाती फाटी जाय।
ऐसा दिन कब होयगा, दरसन करौं अघाय॥ ४॥
पीव बिना तो जीवना, जग में भारी जान।
पिया मिलैं तो जीवना, नहीं तो छूटै प्रान॥ ५॥
मुख पियरो सूखे अधर[1], आँखैं खरी उदास।
आह जो निकसै दुख भरी, गहिरे लेत उसास[2]॥ ६॥
वह बिरहिन बौरी भई, जानत ना कोइ भेद।
अगिन बरै हियरा जरै, भये कलेजे छेद॥ ७॥
वा तन को बिरहा लगो, ज्यों घुन लागो दार[3]।
दिन दिन पीरी होत है, पिया न बूझै सार॥ ८॥
वे नहिं बूझैं सार हो, बिरहिन कौन हवाल।
जब सुधि आवै लाल की, चुभत कलेजे भाल[4]॥ ९॥
पीव चहौ कै मत चहौ, वह तौ पी की दास।
पिय के रँग राती रहै, जग सूँ होय उदास॥१०॥
पी पी करते दिन गया, रैनि गई पिय ध्यान।
बिरहिन के सहजै सधै, भक्ति जोग अरु ज्ञान॥११॥

(१) होंठ। (२) साँस। (३) दारु=लकड़ी। (४) गाँसी।

जाप करै तो पीव का, ध्यान करै तो पीव।
पिव बिरहिन का जीव है, जिव बिरहिन का पीव ॥१२॥

॥ बिनय ॥

सतगुरु से माँगूँ यही, मोहिं गरीबी देहु।
दूर बड़प्पन कीजिये, नान्हा हीं करि लेहु ॥ १ ॥
आदि पुरुष किरपा करो, सब ओगुन छुटि जाहिं।
साध होन लच्छन मिलैं, चरन कमल की छाँहिं ॥ २ ॥
तुम्हरी सक्ति अपार है, लीला को नहिं अंत।
चरनदास यौं कहत है, ऐसे तुम भगवंत ॥ ३ ॥
तुम्हरी कहा अस्तुति करूँ, मो पै कही न जाय।
इतनी सक्ति न जीभ को, महिमा कहै बनाय ॥ ४ ॥
किरपा करो अनाथ पर, तुम हौ दीनानाथ।
हाथ जोड़ माँगूँ यही, मम सिर तुम्हरे हाथ ॥ ५ ॥
हिय हुलसो आनँद भयो, रोम रोम भयो चैन।
भये पबित्तर कान ये, सुनि सुनि तुम्हरे बैन ॥ ६ ॥
गुरु ब्रह्मा गुरु बिस्नु, गुरू देवन के देवा।
सर्ब सिद्धि फल देव, गुरू तुम मुक्ति करेवा ॥ ७ ॥
गुरु केवट तुम होय, करौ भवसागर पारी।
जीव ब्रह्म करि देत, हरौ तुम ब्याधा सारी ॥ ८ ॥
आदि पुरुष परमातमा, तुम्हैं नवाऊँ माथ।
चरनन पास निवास दे, कीजे मोहिं सनाथ ॥ ९ ॥
तुम्हरी भक्ति न छोड़हूँ, तन मन सिर क्यों न जाव।
तुम साहिब मैं दास हूँ, भलो बनो है दाव ॥१०॥

॥ सार गहनो ॥

दूध मध्य ज्यों घीव है, मिहँदी माहीं रंग।
जतन बिना निकसै नहीं, चरनदास सो ढंग ॥ १ ॥

जो जानै या भेद कूँ, और करै परबेस।
सो अबिनासी होत है, छूटै सकल कलेस ॥ २ ॥
जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों जिम्या मुख माहिं।
घीव घना भच्छन करै, तौ भी चिकनी नाहिं ॥ ३ ॥
ऐसा हो जो साध हो, लिये रहै बैराग।
चरन कमल में चित धरै, जग में रहै न पाग ॥ ४ ॥

॥ पतिब्रता ॥

पतिबरता वहि जानिये, आज्ञा करै न भंग।
पिय अपने के रँग रतै, और न सोहै ढंग ॥ १ ॥
आज्ञाकारी पीव की, रहै पिया के संग।
तन मन सूँ सेवा करै, और न दूजो रंग ॥ २ ॥
रंग होय तो पीव को, आन पुरुष बिषरूप।
छाँह बुरी पर घरन की, अपनी भली जु धूप ॥ ३ ॥
अपने घर का दुख भला, पर घर का सुख छार[1]।
ऐसे जानै कुल बधू, सो सतवंती[2] नार ॥ ४ ॥
पति की ओर निहारिये, औरन सूँ क्या काम।
सबै देवता छोड़ि के, जपिये हरि का नाम ॥ ५ ॥
यह सिर नवै तो राम कूँ, नाहीं गिरियो टूट।
आन देव नहिं परसिये, यह तन जावो छूट ॥ ६ ॥
जब तू जानै पीव हीं, वह अपनो करि लेहि।
परम धाम में राखि करि, बाँह पकरि सुख देहि ॥ ७ ॥
सतबादी सत सूँ रहो, सत हीं मुख सूँ बोल।
एक ओर हरि नाम रख, एक ओर जग तोल ॥ ८ ॥

॥ उपदेश ॥

जग का कहा न मानिये, सतगुरु से ले बुद्धि।
ता कूँ हिये में राखिये, करो सिताबी सुद्धि ॥ १ ॥

(१) धूल, राख। (२) पतिब्रता।

अरसठ तीरथ तोहि बिषे, बाहर क्यों भटकाय ।
चरनदास यों कहत है, उलटा ह्वै घट आय ॥ २ ॥
भरमत भरमत आइया, पाई मानुष देह ।
ऐसो औसर फिर कहाँ, नाम सिताबी[1] लेह ॥ ३ ॥
करै तपस्या नाम बिन, जोग जज्ञ अरु दान ।
चरनदास यों कहत है, सब ही थोथे जान ॥ ४ ॥
जिन को मन विरकत सदा, रहौ जहाँ चित होय ।
घर बाहर दोउ एक सा, डारी दुबिधा खोय ॥ ५ ॥
सतगुरु सरनै आय करि, कहा न मानै एक ।
ते नर बहु दुख पाइ हैं, तिन कूँ सुख नहिं नेक ॥ ६ ॥
आपै भजन करैं नहीं, औरै मने करैं ।
चरनदास वै दुष्ट नर, भ्रम भ्रम नरक परैं ॥ ७ ॥
औरन कूँ उपदेस करि, भजन करैं निष्काम ।
चरनदास वै साध जन, पहुँचै हरि के धाम ॥ ८ ॥
भक्ति पदारथ उदय सूँ, होय सभी कल्यान ।
पढ़ै सुनै सेवन करै, पावै पद निर्बान ॥ ९ ॥
सब सूँ रखु निरबैरता, गहो दीनता ध्यान ।
अंत मुक्ति पद पाइहौ, जग में होय न हानि ॥१०॥

॥ बैरागी की रहनी ॥

जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों अम्बुज[2] सर[3] माहिं ।
रहै नीर के आसरे, पै जल छूवत नाहिं ॥ १ ॥
अब के चूके चूक है, फिर पछतावा होय ।
जो तुम जक्त न छोड़िहौ, जन्म जायगो खोय ॥ २ ॥

॥ साच ॥

मिटते सूँ मत प्रीति करि, रहते सूँ करि नेह ।
झूठे कूँ तजि दीजिये, साचे में करि गेह[4] ॥ १ ॥

(१) जल्द । (२) कँवल । (३) तालाब । (४) घर ।

॥ दया ॥

दुखी न काहू कूँ करै, दुख सुख निकट न जाय।
सम दृष्टी धीरज सदा, गुन सात्विक कूँ पाय ॥ १ ॥
दया नम्रता दीनता, छिमा सील संतोष।
इन कूँ लै सुमिरन करै, निस्चै पावै मोख[१] ॥ २ ॥

॥ काम ॥

तन मन जारै काम ही, चित करि डाँवाँडोल।
धरम सरम सब खोय के, रहै आप हिये खोल ॥ १ ॥
नर नारी सब चेतियो, दीन्हो प्रगट दिखाय।
पर तिरिया पर पुरुस दोउ, भोग नरक को जाय ॥ २ ॥

॥ क्रोध ॥

क्रोध महा चंडाल है, जानत है सब कोय।
जा के अँग बरनन करूँ, सुनियो सुरत समोय ॥ १ ॥
जेहिं घट आवै धूम सूँ, करै बहुत ही ख्वार।
पत खोवै बुधि कूँ हनै, कहा पुरुस कहा नार ॥ २ ॥

॥ लोभ ॥

लोभ नीच बर्नन करूँ, महा पाप की खानि।
मंत्री जा का झूठ है, बहुत अधर्मी जानि ॥ १ ॥
तृस्ना जा की जोय[२] है, सो अंधा करि देय।
घटी बढ़ी सूझै नहीं, नहीं काल का भेय ॥ २ ॥

॥ मोह ॥

मोह बड़ा दुख रूप है, ता कूँ मारि निकास।
प्रीति जगत की छोड़ि दे, तब होवै निर्बास ॥ १ ॥
मोह बली सब सूँ अधिक, महिमा कही न जाय।
जा कूँ बाँध्यो जग सबै, छूटै ना बौराय ॥ २ ॥

(१) मुक्ति। (२) स्त्री।

॥ मान ॥

अभिमानी चढ़ करि गिरे, गये बासना माहिं।
चौरासी भरमत भये, कबहीं निकसैं नाहिं ॥ १ ॥
अभिमानी मींजे गये, लूटि लिये धन बाम[1]।
निरअभिमानी ह्वै चले, पहुँचे हरि के धाम ॥ २ ॥
चरनदास यों कहत है, सुनियो संत सुजान।
मुक्ति मूल आधीनता, नरक मूल अभिमान ॥ ३ ॥
मन में लाइ बिचार कूँ, दीजै गर्ब निकार।
नान्हापन तब आइ है, छूटै सकल बिकार ॥ ४ ॥
पाँचो उतरैं भूत जब, होइहौ ब्रह्म अरूप।
आनँद पद को पाइहौ, जित है मुक्ति सरूप ॥ ५ ॥

॥ निद्रा ॥

सोवन में नहिं खोइये, जन्म पदारथ पाय।
चरन दास ह्वै जागिये, आलम सकल गँवाय ॥ १ ॥
पहिले पहरे सन जगैं, दूजे भोगी मान।
तीजे पहरे चोर ही, चौथे जोगी जान ॥ २ ॥
जागै ना पिछले पहर, करै न गुरुमत जाप।
मुँह फारे सोवत रहै, ता कूँ लागै पाप ॥ ३ ॥
मरजादा की यह कही, क्या बिरक्त परमान।
आठ पहर साठौं घरी, जागै हरि के ध्यान ॥ ४ ॥
जो कोइ बिरही नाम के, तिन कूँ कैसी नींद।
सस्तर लागा नेह का, गया हिये को बींध ॥ ५ ॥
सोये हैं संसार सूँ, जागे हरि की ओर।
तिन कूँ इकरसही सदा, नहीं साँझ नहिं भोर ॥ ६ ॥
उन कूँ नींद न आवई, राम मिलन की चीत।
सोवैं ना सुख सेज पै, तजि के हरि सा मीत ॥ ७ ॥

(१) स्त्री अर्थात् माया।

॥ आशा ॥

ज्यों किरपिन[1] बहु दाम हीं, गाड़ि जिमीं के नीच।
सदा वाहि तकतै रहै, सुरति रहै ता बीच ॥ १ ॥
तन छूटे हो सरप[2] हीं, जा बैठै वा ठौर।
जहाँ आस तहँ बास है, कहूँ न भरमै और ॥ २ ॥

॥ अहार ॥

जो पावै सोई चरै, करै नहीं पहिचान।
पीठ लदै हरि ना जपै, ता कूँ खर ही जान ॥ १ ॥
बहुता किये अहार ही मैली रही जो बुद्धि।
हरि के निर्मल नाम की, कैसे आवै सुद्धि ॥ २ ॥
सूच्छम भोजन खाइये, रहिये, ना परि सोय।
ऐसो मानुख देह कूँ, भक्ति बिना मत खोय ॥ ३ ॥

बुल्लेशाह

जीवन समय—१७६० के लगभग से १८१० तक। जन्म स्थान—रूम। सतसंग स्थान—मौ० कुसूर, ज़िला लाहौर। जाति और आश्रम—सैयद, भेष। गुरू—शाह इनायत।

यह एक नामी सूफी और भक्त पंजाब में गुरू नामक के अनुमान डेढ़ सौ बरस पीछे प्रगट हुए। इनका जन्म का स्थान रूम था पर दस बरस की ही अवस्था में पंजाब आगये थे। अनुमान पचास बरस की उमर में देहान्त इनका कुसूर के गाँव में जहाँ इनकी गद्दी और समाधि मौजूद है सन् ११७१ हिजरी = सम्बत् १८१० विक्रमी में हुआ। इन्होंने अपना ब्याह नहीं किया और सदा साधु के बाने में रहे। कुरान और शरअ का खुल्लम खुल्ला खंडन करने के कारन मुसलमान मौलवियों और मुल्लाओं के साथ इनका भारी झगड़ा रहा।

॥ सार गहनी ॥

बुल्ला होर[3] ने गलड़ियाँ[4], इक अल्ला अल्ला दी गल्ल[5]।
कुज रौला पाया आलमाँ, कुज कागजाँ पाया झल्ल[6] ॥ १ ॥

---

(१) कंजूस। (२) साँप। (३) और। (४) बकवाद। (५) बात। (६) कुछ तो विद्वानों ने रौला मचाया है और कुच किताबों ने झमेला डाल दिया है।

बुल्ला चल्ल सुन्यार दे, जित्थे गहना घड़िये लाख।
सूरत आपो आपनी, तूँ इको रूप ये आख ॥ २ ॥[1]
बुल्ला साडा उत्थे वासा, जित्थे बहुते अन्नें[2]।
ना कोइ साडी कदर पछाने, ना को सानूँ मन्नें ॥ ३ ॥

॥ बिरह ॥

बुल्ला हिजरत[3] बिच अलाह दे, मेरा नित है खास अराम[4]।
नित नित मराँ ते नित जियाँ, मेरा नित नित कूच मुकाम ॥

॥ प्रेम ॥

बुल्ला आसिक हो यों रब्ब दा, मुलामत[5] होई लाख।
लोग काफर काफर आखदे[6], तूँ आहो आहो[7] आख ॥

॥ तीर्थव्रत मूर्ति पूजा ॥

बुल्ला धर्मसाला बिच धाड़वी[8] रहंदे, ठाकुरद्वारे ठग्ग।
मसीताँ बिच कोस्ती[9] रहंदे, आसिक रहन अलग्ग ॥ १ ॥
बुल्ला धर्मसाला बिच साला[10] नहिं, जित्थे मोहन भोग जिवाय[11]।
विच्च मसीताँ धक्के मिलदे, मुल्लाँ थोडे पाय ॥ २ ॥
ना खुदा मसीते लभदा, ना खुदा खाना काबे।
ना खुदा कुरान कितेबाँ, ना खुदा नमाजे ॥ ३ ॥
ना खुदा मैं तीरथ डिट्ठा, ऐवें पैंडे झागे[12]।
बुल्ला शौह[13] जद मुरशिद मिल गया, टूटे सब्ब तगादे[14] ॥ ४ ॥
बुल्ला मक्के गयाँ गल्ल मुकदी[15] नहीं, जिचर दिलों न आप मुकाय[16]।
गंगा गयाँ पाप नहिं छुटदे, भावें सौ सौ गोते लाय ॥ ५ ॥

---

(१) सुनार के यहाँ चल जहाँ लाखों गहने गढ़े जाते हैं जो हर एक जुदा जुदा सूरत का होता है पर तू उन्हें एक ही मूल वस्तु (अर्थात् सोना) कह। (२) अंधे। (३) बियोग। (४) सुख। (५) निन्दा। (६) कहें। (७) हाँ हाँ। (८) डाकू। (९) बदमाश। (१०) स्त्री का भाई अर्थात् ससुराल। (११) खिलाया जाय। (१२) व्यर्थ रास्ता काटा। (१३) मालिक। (१४) कर्मों का तक़ाज़ा। (१५) बात नहीं खतम होती। (१६) जब तक अपने दिल से आपा न छोड़ दे।

गया गयाँ गल्ल मुकदी नहीं, भावें कितने पिंड भराय ।
बुल्लेशाह गल्ल ताँई मुकदी, जब "मैं" नूँ खड़्या लुटाय[१] ॥ ६ ॥

॥ उपदेश ॥

बुल्ला गैन गरूरत साड़सुट्ट, हौं मैं खूह पाय[२] ।
तन मन दी सुरत गँवाय दे, घर आप मिलेगा आय[३] ॥ १ ॥
बुल्ला हच्छे दिन ताँ पिच्छे गये, जब हरि किया न हेत ।
अब पछुतावा क्या करे, जब चिड़ियाँ चुग लिया खेत ॥ २ ॥
बुल्ला दौलतमंदाँ ने बूहे[४], उत्ते चोबदार बहाये[५] ।
पकड़ दरवाजा रब सच्चे दा, जित्थे दुख दिल दा मिट जाये ॥ ३ ॥
बुल्ले नूँ लोक मत्ती[६] देंदे, तूँ जा बहु[७] विच्च मसीती ।
विच्च मसीताँ की कुज होंदा, जे दिलों नमाज न लीती ॥ ४ ॥
बाहरों पाक कीते की होंदा, जो अंदरों न गई पलीती[८] ।
बिन मुरशिद कामिल बुल्लातेरी, ऐवें[९] गई इबादत कीती ॥ ५ ॥

॥ मिश्रित ॥

भठ्ठ[१०] नमाजाँ ते[११] चिक्कड़[१२] रोजे, मुँह कलमे ते[१३] फिर गइ स्याही ।
बुल्लाशाह शौह[१४] अंदरों मिल्या, भुल्ली फिरे लुकाई ॥ १ ॥
बुल्ला रंगमहल्लीं जा चढ्या, लोग पुच्छन आये खैर[१५] ।
असाँ एह कुज दुनिया तो वट्टिया[१६], मुँह काला नीले पैर ॥ २ ॥
बुल्ला मन मँजोला मूंज दा, किते गोसे बहि के कुट्ट[१७] ।
एह खजाना तैनूँ अर्स[१८] दा, तूँ समल[१९] समल के लुट्ट ॥ ३ ॥
बुल्ला वारे जाये उन्हाँ तों[२०], जिहड़े गल्ली देन प्रचाय[२१] ।
सुई सलाई दान करन, अहरन[२२] लेन छपाय ॥ ४ ॥

---

(१) बात जभी खतम होगी जब खड़े खड़े हौं मैं को लुटा दो । (२) अहंकार को जला डाल और हँगता को कुएँ में डाल दे । (३) मालिक घर में आप आकर मिलेगा । (४) दरवाजा । (५) बैठाये । (६) समझौती । (७) बैठ । (८) गंदगी, मैल । (९) व्यर्थ । (१०) भाड़ में पड़ें । (११) और । (१२) कीचड़ में मिलै । (१३) पर । (१४) मालिक । (१५) कुशल । (१६) कमाया । (१७) मन मूँज के पूले समान है उसे कहीं एकान्त में बैठ कर कूट । (१८) नवाँ आसमान । (१९) सम्हल कर । (२०) ऐसों की बलिहारी जाउँ—यह व्यंग से कहा है । (२१) जो बातों से परचाय लें । (२२) निहाई अर्थात् बड़ी चीज ।

बुल्ला वारे जाये उन्हाँ तों, जिहड़े मारन गप्प सड़प्प।
कौड़ी लभे देनचा, बगुचा घाऊघप्प[1] ॥ ५ ॥
बुल्ला मुल्ला ते मसालची, दोहाँदा इक्को चित्त[2]।
लोकाँ करदे चानना, आप हनेरे[3] विच्च ॥ ६ ॥

सहजोबाई

यह और दयाबाई सम्वत् १८०० में वर्त्तमान थीं और महात्मा चरनदास जी की चेली और उनकी सजाती अर्थात् दूसर बनियाइन गृहस्थ आश्रम में थी। दोनों मेवात (राजपूताना) की निवासी और आपस में संसारी और परमार्थी बहिन थीं,

॥ बिरह ॥

हरि किरपा जो होय तो, नाहीं होय तो नाहिं।
पै गुरु किरपा दया बिनु, सकल बुद्धि बहि जाहिं ॥ १ ॥
गुरु मग दृढ़ पग राखिये, डिगमिग डिगमिग छाँड़।
सहजो टेक टरै नहीं, सूर सती ज्यों माँड ॥ २ ॥
गुरु बिन मारग ना चलै, गुरु बिन लहै न ज्ञान।
गुरु बिन सहजो धुंध है, गुरु बिन पूरी हान ॥ ३ ॥
सतगुरु बिन भटकत फिरै, परसत पाथर नीर।
सहजो कैसे मिटत है, जम जालिम की पीर ॥ ४ ॥
सिष का माना सतगुरू, गुरु झिड़कै लख बार।
सहजो द्वार न छोड़िये, यही धारना धार ॥ ५ ॥
गुरु दरसन कर सहजिया, गुरु का कोजे ध्यान।
गुरु की सेवा कीजिये, तजिये कुल अभिमान ॥ ६ ॥
दीपक ले गुरु ज्ञान को, जगत अँधेरे माहिं।
काम क्रोध मद मोह में, सहजो उरझै नाहिं ॥ ७ ॥
सहजो सतगुरु के मिले, भये और सूँ और।
काग पलट गति हंस ह्वै, पाई भूली ठौर ॥ ८ ॥

---

(१) अगर कौड़ी पावें तो दे दें और गठरी हजम कर जायें। (२) दोनों का एक ही मत है। (३) अँधेरे।

चिंउटी जहाँ न चढ़ि सकै, सरसों ना ठहराय।
सहजो कूँ वा देस में, सतगुरु दई बसाय ॥ ६ ॥
सहजो गुरु रँगरेज सा, सबहीं कूँ रँग देत।
जैसा तैसा बसन है, जो कोइ आवै सेत ॥१०॥

॥ झूठे गुरू ॥

सहजो गुरु बहुतक फिरैं, ज्ञान ध्यान सुधि नाहें।
तार सकैं नहिं एक कूँ, गहैं बहुत की बाँह ॥

॥ नाम ॥

पारस नाम अमोल है, धनवन्ते घर होय।
परख नहीं कंगाल कूँ, सहजो डारै खोय ॥ १ ॥
सहजो जा घट नाम है, सो घट मंगल रूप।
नाम बिना धिरकार है, सुन्दर धनवँत भूप ॥ २ ॥
सहजो भवसागर बहै, तिमिर बरस घन घोर।
ता में नाम जहाज है, पार उतारै तोर ॥ ३ ॥
मेंह सहै सहजो कहै, सहै सीत औ धाम।
पर्बत बैठो तप करै, तोभी अधिको नाम ॥ ४ ॥
जागत में सुमिरन करै, सोवत में लौ लाय।
सहजो इकरस हीं रहै, तार टूटि नहिं जाय ॥ ५ ॥
सील छिमा संतोष गहि, पाँचो इन्द्री जीत।
राम नाम ले सहजिया, मुक्ति होन की रीत ॥ ६ ॥

॥ सुमिरन ॥

एक घड़ी का मोल ना, दिन का कहा बखान।
सहजो ताहि न खोइये, बिना भजन भगवान ॥ १ ॥
सहजो सुमिरन कीजिये, हिरदे माहिं दुराय[1]।
होठ होठ सूँ ना हिलै, सकै नहीं कोइ पाय ॥ २ ॥
सहजो सुमिरन सब करैं, सुमिरन माहिं बिवेक।
सुमिरन कोई जानि है, कोटों मद्धे एक ॥ ३ ॥

(१) छिपाकर, गुप्त।

बैठे लेटे चालते, खान पान ब्यौहार।
जहाँ तहाँ सुमिरन करै, सहजो हिये निहार ॥ ४ ॥

॥ चितावनी ॥

सहजो भज हरि नाम कूँ, तजो जगत सूँ नेह।
अपना तो कोइ है नहीं, अपनी सगी न देह ॥ १ ॥
यही कही गुरुदेवजू, यही पुकारैं संत।
सहजो तज या जगत कूँ, तोहि तजैगो अंत ॥ २ ॥
जैसे सँड़सी लोह की, छिन पानी छिन आग।
ऐसे दुख सुख जगत के, सहजो तू मत पाग ॥ ३ ॥
अचरज जीवन जगत में, मरिबो साँचो जान।
सहजो अवसर जात है, हरि सूँ ना पहिचान ॥ ४ ॥
जब लग चावल धान में, तब लग उपजै आय।
जग छिलके कूँ तजि निकस, मुक्ति रूप ह्वै जाय ॥ ५ ॥
दरद बटाय सकैं नहीं, मुए न चालैं साथ।
सहजो क्योंकर आपने, सब नाते बरबाद ॥ ६ ॥
सहजो जीवत सब सगे, मुए निकट नहिं जायँ।
रोवैं स्वारथ आपने, सुपने देख डरायँ ॥ ७ ॥
सहजो धन माँगे कुटुँब, गाड़ा धरा बताय।
जो कछु है सो दे हमें, फिर पाछे मरिजाय ॥ ८ ॥
मुख देखैं ढाँपैं भजैं, तड़ दे तोड़ैं नेह।
सहजो पति सुत निज हितू, जारि करैंगे खेह ॥ ९ ॥
काढ़ काढ़ बेगी कहैं, भीतर बाहर लोय।
जीव छुटे सहजो कहै, तन का सगा न कोय ॥१०॥
सहजो फिर पछितायगी, स्वास निकसि जब जाय।
जब लग रहै सरीर में, राम सुमिर गुन गाय ॥११॥
सहजो नौबत स्वास की, बाजत है दिन रैन।
मूरख सोवत है महा, चेतन कूँ नहिं चैन ॥१२॥

यह रस्ता बहता रहै, थमै नहीं छिन एक।
बहु आवैं बहु जातु हैं, सहजो आँखन देख ॥१३॥
जग देखत तुम जावगे, तुम देखत जग जाय।
सहजो योंही रीति है, मत कर सोच उपाय ॥१४॥
देह निकट तेरे पड़ी, जीव अमर है नित्त।
दुइ में मूवा कौन सा, का सूँ तेरा हित्त ॥१५॥
कलप रोय पछिताय थक, नेह तजौगे कूर।
पहिले ही सूँ जो तजै, सहजो सो जन सूर ॥१६॥
आगे मुए सो जा चुके, तू भी रहै न कोय।
सहजो पर कूँ क्या झुरै, आपन हीं कूँ रोय ॥१७॥

॥ प्रेम ॥

प्रेम दिवाने जो भये, मन भयो चकनाचूर।
छके रहैं घूमत रहैं, सहजो देखि हजूर ॥ १ ॥
प्रेम दिवाने जो भये, कहैं बहकते बैन।
सहजो मुख हाँसी छुटै, कबहूँ टपकै नैन ॥ २ ॥
प्रेम दिवाने जो भये, जाति बरन गइ छूट।
सहजो जग बौरा कहै, लोग गये सब फूट[1] ॥ ३ ॥
प्रेम दिवाने जो भये, नेम धरम गयो खोय।
सहजो नर नारी हँसैं, वा मन आनँद होय ॥ ४ ॥
प्रेम दिवाने जो भये, सहजो डिगमिग देह।
पाँव पड़ै कितकै किती, हरि सम्हाल तब लेह ॥ ५ ॥
कबहूँ हकधक हो रहैं, उठैं प्रेम हित गाय।
सहजो आँख मुँदी रहै, कबहूँ सुधि हो जाय ॥ ६ ॥
मन में तो आनँद रहै, तन बौरा सब अंग।
ना काहू के संग हैं, सहजो ना कोई संग ॥ ७ ॥

(१) बिरोध से अलग हो जाना।

॥ साध ॥

सहजो साधन के मिले, मन भयो हरि के रूप।
चाह गई थिरता भई, रंक लख्यो सोइ भूप॥ १ ॥
साध मिले दुख सब गये, मंगल भये सरीर।
बचन सुनत ही मिटि गई, जनम मरन की पीर॥ २ ॥
जो आवै सतसंग में, जाति बरन कुल खोय।
सहजो मैल कुचैल जल, मिलै सु गंगा होय॥ ३ ॥
सहजो सगत साध की, काग हंस हो जाय।
तजि के भच्छ अभच्छ कूँ, मोती चुगि चुगि खाय॥ ४ ॥
सहजो संगत साध की, छूटै सकल बियाध।
दुर्मति पाप रहै नहीं, लागै रंग अगाध॥ ५ ॥
सहजो दरसन साध का, देखूँ वारूँ प्रान।
जिनकी किरपा पाइये, निर्भय पद निर्बान॥ ६ ॥

॥ काम ॥

काम क्रोध लोभ मोह मद, तजि भज हरि को नाम।
निस्चै सहजो मुक्ति हो, लहै अमरपुर धाम॥ १ ॥
कामी मति भिष्टल[1] सदा, चलै चाल बिपरीत।
सील नहीं सहजो कहै, नैनन माहि अनीत॥ २ ॥

॥ क्रोध ॥

सहजो क्रोधी अति बुरो, उलटी समझै बात।
सबही सूँ ऐंठो रहै, करै बचन की घात॥ १ ॥
कूकर ज्यों भूसत फिरै, तामस मिलवाँ बोल।
घर बाहर दुख रूप है, बुधि रहै डाँवाडोल॥ २ ॥

॥ लोभ ॥

नीच लोभ जा घट बसै, झूठ कपट सूँ काम।
बौरायो चहुँ दिसि फिरै, सहजो कारन दाम॥ १ ॥

(१) भ्रष्ट।

द्रब्य हेत हरि कूँ भजे, धनही की परतीत ।
स्वारथ ले सब सूँ मिलै, अन्तर की नहिं प्रीत ॥ २ ॥

॥ मोह ॥

मन मैला तन छीन है, हरि सूँ लगै न नेह ।
दुखी रहै सहजो कहै, मोह बसै जा देह ॥ १ ॥
मोह मिरग काया बसै, कैसे उबरै खेत ।
जो बोवै सोई चरै, लगै न हरि सूँ हेत ॥ २ ॥

॥ मान ॥

अभिमानी मुख धूर है, चहै बड़ाई आप ।
डिंभ लिये फूलो फिरै, करतो डरै न पाप ॥ १ ॥
प्रभुताई कूँ चहत है, प्रभु को चहै न कोय ।
अभिमानी घट नीच है, सहजो ऊँच न होय ॥ २ ॥

॥ नन्हा महा उत्तम ॥

धन छोटापन सुख महा, धिरग बड़ाई ख्वार[1] ।
सहजो नन्हा हूजिये, गुरु के बचन सम्हार ॥ १ ॥
सहजो तारे सब सुखी, गहैं[2] चन्द और सूर ।
साधू चाहे दीनता, चहै बड़ाई कूर[3] ॥ २ ॥
अभिमानी नाहर बड़ो, भरमत फिरत उजाड़ ।
सहजो नन्हीं बाकरी, प्यार करै संसार ॥ ३ ॥
सीस कान मुख नासिका, ऊँचे ऊंचे नाँव ।
सहजो नीचे कारने, सब कोउ पूजे पाँव ॥ ४ ॥
नन्हीं चींटी भवन में, जहाँ तहाँ रस लेह ।
सहजो कुंजर अति बड़ो, सिर में डारै खेह ॥ ५ ॥
सहजो चंदा दूज का, दरस करै सब कोय ।
नन्हे सूँ दिन दिन बढ़ै, अधिको चाँदन होय ॥ ६ ॥

---

(१) खराब । (२) ग्रहन लगता है । (३) दुष्ट ।

बड़ा भये आदर नहीं, सहजो आँखिन देख।
कला सभी घट जायगी, कछू न रहसी रेख ॥ ७ ॥
सहजो नन्हा बालका, महल भूप के जाय।
नारी परदा ना करै, गोदहिं गोद खेलाय ॥ ८ ॥
बड़ा न जाने पाइहै, साहिब के दरबार।
द्वारे ही सूँ लागिहै, सहजो मोटी मार ॥ ९ ॥
बारे दीवे चाँदना, बड़ा भये अँधियार[1]।
सहजो तून हलका तिरै, डूबै पत्थर भार ॥१०॥
भली गरीबी नवनता, सकै नहीं कोइ मार।
सहजो रुई कपास की, काटै ना तरवार ॥११॥
चरनदास सतगुरु कही, सहजो कूँ यह चाल।
सकौ तो छोटा हूजिये, छूटै सब जंजाल ॥१२॥
साहन कूँ तो भय घना, सहजो निर्भय रंक।
कुंजर के पग बेड़ियाँ, चींटी फिरै निसंक ॥१३॥
ऊँचे उज्जल भाग सूँ, आय मिले गुरुदेव।
प्रेम दिया नन्हा किया, पूरन पायो भेव ॥१४॥
सहजो पूरन भाग सूँ, पाय लिये सुखदान।
नख सिख आई दीनता, भजे बड़ाई मान ॥१५॥
औगुन थे सो सब गये, राज करैं उनतीस[2]।
प्रेम झिला प्रीतम मिला, सहजो वारा सीस ॥१६॥

॥ अजपा जाप ॥

ऐसा सुमिरन कीजिये, सहज रहै लौ लाय।
बिनु जिभ्या बिनु तालुवै, अन्तर सुरति लगाय ॥ १ ॥

---

(१) दीवा या रोशनी "बढ़ा" देना मुहावरे में चिराग बुझा देने को कहते हैं—इस साखी का अर्थ यह है कि नन्हा सा दीवा जब बाला गया तो चाँदना करता है और जब "बढ़ाया" (बुझाया) गया तो अँधेरा हो जाता है। (२) मन ओर ३ गुण और २५ प्रकृतियाँ।

हंसा सोहं तार करि, सुरति मकरिया पोय।
उतर उतर फिरि फिरि चढ़ै, सहजो सुमिरन होय॥ २॥
बरत[1] बाँध करि धरन में, कला गगन में खाय।
अर्ध उर्ध नट ज्यों फिरै, सहजो राम रिझाय॥ ३॥
लगै सुन्न में टकटकी, आसन पदम लगाय।
नाभि नासिका माहिं करि, सहजो रहै समाय॥ ४॥
सहज स्वास तीरथ बहै, सहजो जो कोइ न्हाय।
पाप पुन्न दोनों छुटैं, हरि पद पहुँचै जाय॥ ५॥
हक्का रे[2] उठि नाम सूँ, सक्का रे होय लीन।
सहजो अजपा जाप यह, चरनदास कहि दीन॥ ६॥
सब घट अजपा जाप है, हंसा सोहं पुर्ष।
सुरत हिये ठहराय के, सहजो या बिधि निर्ख॥ ७॥
सब घट ब्यापक राम है, देंही[3] नाना भेष।
राव रंक चंडाल घर, सहजो दीपक एक॥ ८॥

॥ सत्त बैराग जगत मिथ्या ॥

आतम में जागत नहीं, सुपने सोवत लोग।
सहजो सुपने होत हैं, रोग भोग और जोग॥ १॥
कोटि बरस इक छिन लगै, ज्ञान दृष्टि जो होय।
बिसरि जगत और बनै, सहजो सुपने सोय॥ २॥
ऐसे ही सब स्वप्न है, स्वर्ग मिर्तु पाताल।
तीन लोक छल रूप है, सहजो इन्द्रजाल॥ ३॥
अज्ञानी जानत नहीं, लिप्त भया करि भोग।
ज्ञानी तौ दृष्टा भये, सहजो खुसी न सोग॥ ४॥
मन माहीं बैराग है, ब्रह्म माहिं गलतान।
सहजो जगत अनित्य है, आतम कूँ नित जान॥ ५॥

---

(१) रस्सी। (२) पुकारै। (३) शरीर।

सहजो सुपने एक पल, बीतै बरस पचास।
आँख खुले जब झूठ है, ऐसे ही घर बास ॥ ६ ॥
मृग तृस्ना जल साच है, जब लगि निकट न जाय।
सहजो तब लगि जग बन्यौ, सतगुरु दृष्टि न पाय ॥ ७ ॥
जैसे बालक जल विषे, देखि देखि डरपाय।
समझ भई जब भर्म था, सहजो रहै खिसाय ॥ ८ ॥
ज्ञानी कूँ जग झूठ है, अज्ञानी कूँ साच।
कोटि लाल कागद लिखे, सहजो बैठा बाँच ॥ ९ ॥
जगत तरैयाँ भोर की, सहजो ठहरत नाहिं।
जैसे मोती ओस की, पानी अँजुली माहिं ॥१०॥
धूवाँ को सो गढ़ बन्यो, मन में राज सँजोय।
झाँई माई सहजिया, कबहूँ साच न होय ॥११॥
ऐसे ही जग जूठ है, आतम कूँ नित जान।
सहजो काल न खा सकै, ऐसो रूप पिछान ॥१२॥

॥ सच्चिदानन्द ॥

नया पुराना होय ना, घुन नहिं लागै जासु।
सहजो मारा ना मरै, भय नहिं ब्यापै तासु ॥ १ ॥
किरै[1] घटै छीजै नहीं, ताहि न भिजवै नीर।
ना काहू के आसरे, ना काहू के सीर ॥ २ ॥
रूप बरन वा के नहीं, सहजो रंग न देह।
मीत इष्टी वा के नहीं, जाति पाँति नहिं गेह ॥ ३ ॥
सहजो उपजै ना मरै, सदबासी नहिं होय।
रात दिवस ता में नहीं, सीत ऊस्न नहिं सोय ॥ ४ ॥
आग जलाय सकै नहीं, सस्तर सकै न काटि।
धूप सुखाय सकै नहीं, पवन सकै नहिं आटि[2] ॥ ५ ॥

(१) कीड़ा लगै। (२) उड़ाना, हटाना।

मात पिता वा के नहीं, नहीं कुटुँब को साज।
सहजो वाहि न रकता, ना काहू को राज ॥ ६ ॥
आदि अंत ता के नहीं, मध्य नहीं तेहि माहिं।
वार पार नहिं सहजिया, लघू दीर्घ भी नाहिं ॥ ७ ॥
परलय में आवै नहीं, उत्पति होय न फेर।
ब्रह्म अनादी सहजिया, घने हिराने हेर ॥ ८ ॥
जा के किरिया करम ना, षट दर्सन को भेस।
गुन औगुन ना सहजिया, ऐसो पुरुष अलेस ॥ ६ ॥
रूप नाम गुन सूँ रहित, पाँच तत्त सूँ दूर।
चरनदास गुरु ने कही, सहजो छिमा हजूर ॥१०॥
आपा खोये पाइये, और जतन नहिं कोय।
नीर छीर निर्ताय के, सहजो सुरति समोय ॥११॥

॥ नित्य अनित्य सांख्य मत ॥

भिन्न भिन्न दोनों करै, वही सांष्य मत भेद।
जीवन और बिदेह सूँ, मुक्ति पाय तजि खेद ॥ १ ॥
जाग्रत और सुषोपती, स्वप्न अवस्था तीन।
काया ही सूँ होत है, घटै बढ़ै है छीन ॥ २ ॥
तुरिया इक रस आतमा, इन तें परे निहार।
इन्द्री मन गहि ना सकै, सहजो तत्त अपार ॥ ३ ॥
जिभ्या चाखि सकै नहीं, स्रवन सुनै नहिं ताहि।
नैन बिलोकि सकै नहीं, नासा तुचा न पाय ॥ ४॥
अनुभव ही सूँ जानिये, चित बुधि थकि थकि जाहिं।
तीन भाँति हंकार की, सो भी पावै नाहिं ॥ ५ ॥
जा के रस नहिं रूप नहिं, गंध नहीं वा ठौर।
सबद नहीं अस्पर्स नहिं, सहजो वह कछु और ॥ ६ ॥
गुन तीनों सूँ है परे, ता में रूप न रेख।
बोध रूप हो सहजिया, ब्रह्म दृष्टि करि देख ॥ ७ ॥

॥ निर्गुन सर्गुन संशय-निवारन भक्ति ॥

निराकार आकार सब, निर्गुन और गुनवंत।
है नाहीं सूँ रहित है, सहजो यों भगवंत ॥ १ ॥
नाम नहीं औ नाम सब, रूप नहीं सब रूप।
सहजो सब कछु ब्रह्म है, हरि परगट हरि गूप ॥ २ ॥
कहा कहूँ कहा कहि सकूँ, अचरज अलख अभेव।
सुने अचंभो सो लगै, सहजो ब्रह्म अलेव[1] ॥ ३ ॥
भक्त हेत हरि आइया, पिरथी भार उतारि।
साधन की रच्छा करी, पापी डारे मारि ॥ ४ ॥
निर्गुन सूँ सर्गुन भये, भक्त उधारनहार।
सहजो की दंडौत है, ता कूँ बारम्बार ॥ ५ ॥
ता के रूप अनन्त हैं, जा के नाम अनेक।
ता के कौतुक बहुत हैं, सहजो नाना भेष ॥ ६ ॥
गीता में स्रीकृस्न ने, बचन कहे सब खोल।
सब जीवन में मैं बसूँ, कै चर कहा अडोल ॥ ७ ॥
मैं अखंड ब्यापक सकल, सहज रहा भरपूर।
ज्ञानी पावै निकट हीं, मूरख जानै दूर ॥ ८ ॥
जोगी पावै जोग सूँ, ज्ञानी लहै विचार।
सहजो पावै भक्ति सूँ, जा के प्रेम अधार ॥ ९ ॥

॥ कर्म अनुसार जोनी ॥

उपजि उपजि फिरि फिरि मरौ, जम दे दारुन दुक्ख।
लाज नही सहजो कहै, धिर्ग तुम्हारो मुक्ख ॥ १ ॥
सहजो रहै मन बासना, तैसी पावै ठौर।
जहाँ आस तहँ बास है, निस्चै करी कड़ोर ॥ २ ॥
देंह छुटै मन में रहै, सहजो जैसी आस।
देंह जन्म जैसो मिलै, जैसे ही घर बास ॥ ३ ॥

(१) बेदाग़, पवित्र।

चौरासी के त्रास सुनि, जम किंकर की मार।
सहजो आई गुरु चरन, सुमिरयो सिरजनहार ॥ ४ ॥
धन जीबन सुख सम्पदा, बादर की सी छाहिं।
सहजो आखिर धूप है, चौरासी के माहिं ॥ ५ ॥
चौरासी जोनी भुगत, पायो मनुष सरीर।
सहजो चूके भक्ति बिनु, फिर चौरासी पीर ॥ ६ ॥

दयाबाई

—:०:—

[संक्षिप्त जीवन-चरित्र के लिये देखो सहजोबाई का संक्षिप्त जीवन-चरित्र पृष्ठ १५४]

॥ गुरुदेव ॥

जै जै परमानंद प्रभु, परम पुरुष अभिराम।
अंतरजामी कृपानिधि, 'दया' करत परनाम ॥ १ ॥
ब्रह्म रूप सागर सुधा, गहिरो अति गम्भीर।
आनँद लहर सदा उठै, नहीं धरत मन धीर ॥ २ ॥
जहाँ जाय मन मिटत, है ऐसो तत्त सरूप।
अचरज देखि 'दया', करै बंदन भाव अनूप ॥ ३ ॥
चरनदास गुरुदेवजू, ब्रह्म-रूप सुख-धाम।
ताप-हरन सब सुख-करन, 'दया' करत परनाम ॥ ४ ॥
अंध कूप जग में पड़ी, 'दया' करम बस आय।
बूड़त लई निकासि करि, गुरु गुन[1] ज्ञान गहाय ॥ ५ ॥
छके रहैं आनन्द में, आठ पहर गलतान।
अद्‌भुत छबि जिनकी बनी, 'दया' धरत मन ध्यान ॥ ६ ॥
सतगुरु सम कोउ है नहीं, या जग में दातार।
देत दान उपदेस सों, करैं जीव भव पार ॥ ७ ॥

(१) डोरी।

या जग में कोउ है नहीं, गुरु सम दीन-दयाल।
सरनागत कूँ जानि कै, भले करैं प्रतिपाल ॥ ८ ॥
मनसा बाचा करि 'दया', गुरु चरनौं चित लाव।
जग समुद्र के तरन कूँ, नाहिन आन उपाव ॥ ९ ॥
जे गुरु कूँ बंदन करैं, 'दया' प्रीति के भाय।
आनँद मगन सदा रहैं, तिरबिधि ताप नसाय ॥१०॥
चरन कमल गुरुदेव के, जे सेवत हित लाय।
'दया' अमरपुर जात हैं, जग सुपनो बिसराय ॥११॥
सतगुरु ब्रह्म सरूप हैं, मनुष भाव मत जान।
देह भाव मानैं 'दया', ते हैं पसू समान ॥१२॥
नित प्रति बंदन कीजिये, गुरु कूँ सीस नवाय।
'दया' सुखी करि देत हैं, हरि सरूप दरसाय ॥१३॥

॥ सुमिरन ॥

हरि भजते लागै नहीं, काल-ब्याल दुख-झाल।
ता तें राम सँभालिये, 'दया' छोड़ि जग-जाल ॥ १ ॥
'दयादास' हरि नाम लै, या जग में यह सार।
हरि भजते हरि ही भये, पायौ भेद अपार ॥ २ ॥
मनमोहन को ध्याइये, तन मन करिये प्रीति।
हरि तज जे जग में पगे, देखौ बड़ी अनीति ॥ ३ ॥
जे जन हरि सुमिरन बिमुख, तासूँ मुख हुँ न बोल।
राम रूप में जे पगे, तासूँ अंतर खोल ॥ ४ ॥
राम नाम के लेत ही, पातक झरैं अनेक।
रे नर हरि के नाम की, राखो मन में टेक ॥ ५ ॥
सोवत जागत हरि भजो, हरि हिरदे न बिसार।
डोरी गहि हरि नाम की, 'दया' न टूटै तार ॥ ६ ॥

'दया' जगत में यहि नफो[1], हरि सुमिरन कर लेहि।
छल-रूपी छिन-भंग है, पाँच तत्त की देंहि ॥ ७ ॥
'दया' देंह सूँ नेह तजि, हरि भजु आठौ जाम।
मन निर्मल ह्वै तनि में, पावै निज बिस्राम ॥ ८ ॥
'दया' नाव हरि नाम की, सतगुरु खेवनहार।
साधू जन के संग मिलि, तिरत न लागै बार ॥ ९ ॥

॥ अजपा जाप ॥

पद्मासन सूँ बैठ करि, अंतर दृष्टि लगाव।
'दया' जाप अजपा जपो, सुरति स्वास में लाव ॥ १ ॥
अर्ध उर्ध मधि सुरति धरि, जपै जु अजपा जाप।
'दया' लहै निज धाम कूँ, छुटै सकल संताप ॥ २ ॥
स्वासउस्वास बिचार करि, राखै सुरति लगाय।
'दया' ध्यान त्रिकुटी धरै, परमातम दरसाय ॥ ३ ॥
बिन रसना बिन माल कर, अंतर सुमिरन होय।
'दया' दया गुरुदेव की, बिरला जानै कोय ॥ ४ ॥
सतगुरु के परताप तें, 'दया' कियो निरधार।
अजपा सोहं जाप है, परम गम्य निज सार ॥ ५ ॥
प्रथम पैठि पाताल सूँ, धमकि चढ़ै आकास।
'दया' सुरति नटिनी भई, बाँधि बरत[2] निज स्वास ॥ ६ ॥
छिन छिन में उतरत चढ़त, कला गगन में लेत।
'दया' रीझि गुरुदेवजू, दान अभय पद देत ॥ ७ ॥
चरनदास गुरु कृपा तें, मनुवा भयो अपंग।
सुनत नाद अनहद 'दया', आठो जाम अभंग ॥ ८ ॥
घंटा ताल मृदंग धुनि, सिंह गरज पुनि होय।
'दया' सुनत गुरु कृपा तें, बिरला साधू कोय ॥ ९ ॥

---

(१) नफा। (२) रस्सी।

गगन मध्य मुरली बजै, मैं जु सुनी निज कान।
'दया' दया गुरुदेव की, परस्यो पद निर्बान ॥१०॥
जहाँ काल अरु ज्वाल नहिं, सीत उस्न नहिं बीर।
'दया' परसि निज धाम कूँ, पायो भेद गँभीर ॥११॥

॥ चितावनी ॥

'दया कुँवर' या जक्त में, नहीं आपनो कोय।
स्वारथ-बंधी जीव है, राम नाम चित जोय ॥ १ ॥
'दया' सुपन संसार में, ना पचि मरिये बीर[1]।
बहुतक दिन बीते बृथा, अब भजिये रघुबीर ॥ २ ॥
'दया कुँवर' या जक्त में, नहीं रह्यो थिर कोय।
जैसो बास सराँय को, तैसो यह जग होय ॥ ३ ॥
जैसो मोती ओस को तैसो यह संसार।
बिनसि जाय छिन एक में, 'दया' प्रभू उर धार ॥ ४ ॥
भाई बंधु कुटुम्ब सब, भये इकट्ठे आय।
दिना पाँच[2] को खेल है, 'दया' काल ग्रसि जाय ॥ ५ ॥
तात मात तुम्हरे गये, तुम भी भये तयार।
आज काल्ह में तुम चलौ, 'दया' होहु हुसियार ॥ ६ ॥
अस्तु[3] गज अरु कंचन 'दया', जोरे लाख करोर।
हाथ झाड़ रीते[4] गये, भयो काल को जोर ॥ ७ ॥
तीन लोक नौ खंड के, लिये जीव सब हेर।
'दया' काल परचंड है, मारै सब कूँ घेर ॥ ८ ॥
बड़ो पेट है काल को, नेक न कहूँ अघाय।
राजा राना छत्र-पति, सब कूँ लीले जाय ॥ ९ ॥
बहे जात हैं जीव सब, काल नदी के माहिं।
'दया' भजन नौका[5] बिना, उपजि उपजि मरि जाहिं ॥१०॥

---

(१) बहिन, भाई। (२) दो दिन जन्म और मरन के छोड़ने से सप्ताह या हफ़्ते के पाँच दिन रह जाते हैं। (३) घोड़ा। (४) खाली। (५) नाव।

छिन छिन बिनस्यो जात, है ऐसो जग निरमूल ।
नाम रूप जो धूस[1] है, ताहि देखु, मत भूल ॥११॥
बिनसत बादर बात[2] बसि, नभ में नाना भाँति ।
इमि नर दीसत काल बसि, तऊ न उपजै सांति ॥१२॥
चरनदास सतगुरु मिले, समरथ परम कृपाल ।
दीन जानि कीन्ही दया, मो पर भये दयाल ॥१३॥

॥ बिरह ॥

बिरह ज्वाल उपजी हिये, राम-सनेही आय ।
मन-मोहन सोहन सरस, तुम देखन दा[3] चाय ॥ १ ॥
बिरह बिथा सूँ हूँ बिकल, दरसन कारन पीव ।
'दया' दया की लहर कर, क्यों तलफावो जीव ॥ २ ॥
जनम जनम के बीछुरे, हरि अब रह्यो न जाय ।
क्यो मन कूँ दुख देत हो, बिरह तपाय तपाय ॥ ३ ॥
काग उड़ावत थके कर[4], नैन निहारत बाट ।
प्रेम सिन्ध में पर्‌यो मन, ना निकसन को घाट ॥ ४ ॥
बौरी ह्वै चितवत फिरूँ, हरि आवैं केहिं ओर ।
छिन ऊठूँ छिन गिरि परूँ, राम-दुखी मन मोर ॥ ५ ॥
सोवत जागत एक पल, नाहिन बिसरूँ तोहिं ।
करुना-सागर दया-निधि, हरि लीजे सुधि मोहिं ॥ ६ ॥

॥ प्रेम ॥

'दया' प्रेम-उनमत्त जे, तन की तनि[5] सुधि नाहिं ।
झुके रहैं हरि रस छके, थके नेम ब्रत नाहिं ॥ १ ॥
'दया' प्रेम प्रगट्यो तिन्हैं, तन की तनि[5] न सँभार ।
हरि रस में माते फिरैं, गृह बन कौन बिचार ॥ २ ॥

---

(१) मिट्टी का ऊँचा ढेर जो किले के चारों ओर पुश्ते की तरह बना देते हैं जिसमें शत्रु की तोप के गोले घुस कर रह जायँ और गढ़ तक न पहुँच सकैं। (२) हवा। (३) का। (४) कौवों के बैठने और बोली से प्रीतम के आने का शगुन और अशगुन बिचारते हैं। (५) जरा भी।

प्रेम मगन जे साधवा, बिचरत रहत निसंक।
हरि रस के माते 'दया', गिनैं राव ना रंक ॥ ३ ॥
प्रेम मगन जे साध जन, तिन गति कही न जात।
रोय रोय गावत हंसत, 'दया' अटपटी बात ॥ ४ ॥
हरि रस माते जे रहैं, तिन को मतो अगाध।
त्रिभुवन को संपति 'दया', तृन सम जानत साध ॥ ५ ॥
प्रेम मगन गद्‌गद बचन, पुलकि रोम सब अंग।
पुलकि रह्यो मन रूप में, 'दया' न ह्वै चित भंग ॥ ६ ॥
कहूँ धरत पग परत कहुँ, डिगमिगात सब देह।
दया मगन हरि रूप में, दिन दिन अधिक सनेह ॥ ७ ॥
चित चिंता हरि रूप बिन, मो मन कछु न सुहाय।
हरि हरखित हमकूँ 'दया', कब रे मिलैंगे आय ॥ ८ ॥
प्रेम-पुंज प्रगटै जहाँ, तहाँ प्रगट हरि होयँ।
'दया' दया करि देत हैं, स्त्री हरि दर्सन सोय ॥ ९ ॥

॥ बिनय मालिका (संक्षिप्त) ॥

केहि बिधि रीझत हो प्रभू, का कहि टेरूँ नाथ।
लहरि मिहरि जब हीं करो, तब हीं होउँ सनाथ ॥ १ ॥
भयमोचन अरु सर्बमय, व्यापक अचल अखंड।
दयासिंधु भगवान जू, ता कै सब ब्रह्मंड ॥ २ ॥
चौरासी चरखान[1] को, दुःख सहो नहिं जाय।
दयादास ता तैं लई, सरन तिहारी आय ॥ ३ ॥
कर्म फाँस छूटै नहीं, थकित भयो बल मोर।
अब की बेर उबारि लो, ठाकुर बंदी-छोर ॥ ४ ॥
भवजल नदी भयावनी, किस बिधि उतरूँ पार।
साहिब मेरी अरज है, सुनिये बारम्बार ॥ ५ ॥

---

(१) चार खान।

पैरत थाको हे प्रभू, सूझत वार न पार।
मिहर मौज जब हीं करौ, तब पाऊँ दरबार ॥ ६ ॥
कर्म रूप दरियाव से, लीजै मोहिं बचाय।
चरन कमल तर राखिये, मिहर जहाज़ चढ़ाय ॥ ७ ॥
निरपच्छी के पच्छ तुम, निराधार के धार।
मेरे तुम हीं नाथ इक, जीवन प्रान अधार ॥ ८ ॥
काहू बल अप[1] देह को, काहू राजहि मान।
मोहिं भरोसो तेरही, दीनबंधु भगवान ॥ ९ ॥
हौं गरीब सुन गोबिंदा, तुही गरीब-निवाज।
दयादास आधीन के, सदा सुधारन काज ॥१०॥
हौ अनाथ के नाथ तुम, नेक निहारो मोहिं।
दयादास तन हे प्रभू, लहर मिहर की होहि ॥११॥
नर देही दीन्ही जबै, कीन्हो कोटि करार।
भक्ति कबूली आदि में, जग में भयो लबार ॥१२॥
कछू दोष तुम्हरो नहीं, हमरी है तकसीर।
बीचहिं बीच बिबस भयो, पाँच पचीस के भीर ॥१३॥
ऐंचा खैंची करत हैं, अपनी अपनी ओर।
अब की बेर उबारि लो, त्रिभुवन बंदी-छोर ॥१४॥
तुम ठाकुर त्रैलोक-पति, ये ठग बस करि देहु।
दयादास आधीन की, यह बिनती सुनि लेहु ॥१५॥
हौं पाँवर[2] तुम हौ प्रभु, अधम-उधारन ईस।
दयादास पर दया हो, दयासिंधु जगदीस ॥१६॥
ठग पापी कपटी कुटिल, ये लच्छन मोहिं माहिं।
जैसो तैसो तेर ही, अरु काहू को नाहिं ॥१७॥

(१) अपने। (२) नीच।

जेते करम हैं पाप के, मोसे बचे न एक।
मेरी ओर लखो कहा, बिर्द बानो तन देख[1] ॥१८॥
अधम-उधारन बिरद[2] सुन, निडर रह्यो मन माहिं।
बिर्द बानो की हार देव, की तारो गहि बाँहिं ॥१९॥
असंख जीव तरि तरि गये, लै लै तुम्हरो नाम।
अब की बेरी बाप जो, परो मुगध[3] से काम ॥२०॥
जो जा की ताकै सरन, ता को ताहि खभार[4]।
तुम सब जानत नाथ जू, कहा कहौं बिस्तार ॥२१॥
पूजा अरचन बंदगी, नहिं सुमिरन नहिं ध्यान।
प्रभुजी अब राखे बनै, बिर्द बाने की कान[5] ॥२२॥
नहिं संजम नहिं साधना, नहिं तीरथ ब्रत दान।
मात भरोसे रहत है, ज्यों बालक नादान ॥२३॥
लाख चूक सुत से परै, सो कछु तजि नहिं देह।
पोष चुचुक[6] ले गोद में, दिन दिन दूनों नेह ॥२४॥
दुख तजि सुख की चाह नहिं, नहिं बैकुंठ बिवान।
चरन कमल चित चहत हौं, मोहिं तुम्हारी आन[7] ॥२५॥
तन मद धन मद राज मद, अंत काल मिटि जाय।
जिन के मद तेरो प्रभू, तेहि जम काल डेराय ॥२६॥
धूप हरै छाया करै, भोजन को फल देत।
सरनाये[8] की करत है, सब काहू पर हेत ॥२७॥
कलप बृच्छ के निकट हीं, सकल कल्पना जाय।
दयादास ता तें लई, सरन तिहारी आय ॥२८॥
देह धरौं संसार में, तेरो कहि सब कोय।
हाँसी होय तो तेरिहो, मेरी कछू न होय ॥२९॥

---

(१) बिरद अर्थात् नीच के उद्धार करने का जो बाना आपने धरा है उसकी ओर देखिये। (२) यहाँ बिरद का अर्थ यश है। (३) मूढ़। (४) फिकर, भार। (५) लाज। (६) चुमकार के। (७) टेक, सौगंद। (८) सरन आये।

जो नहिं अधम उधारनो, तौ नहिं गहते फेंट।
बिर्द की पैज[1] सम्हारि लो, सकल चूक को मेट ॥३०॥
जो मेरे करमन लखो, तौ नहिं होत उबार।
दयादास पर दया करि, दीजै चूक बिसार ॥३१॥
हौं अनाथ तोहिं बिनय करि, भय सों करूँ पुकार।
दयादास तन हेर प्रभु अब के पार उतार ॥३२॥
मलयागिर के निकटहीं, सब चंदन ह्वै जात।
छूटै करम कुबासना, महा सुगँध महकात ॥३३॥
लोहा पारस के निकट, कंचन ही सो होय।
जितना चाहै लै करै, लोहा कहै न कोय ॥३४॥
जैसे सूरज के उदय, सकल तिमिर नसि जाय।
मिहर तुम्हारी हे प्रभू, क्यों अज्ञान रहाय ॥३५॥
अनँत भानु तुम्हरी मिहर, कृपा करो जब होय।
दयादास सूझै अलम, दिब्य दृष्टि तन होय ॥३६॥
तीन लोक में हे प्रभू, तुम हीं करो सो होय।
सुर नर मुनि गंधर्ब जे, मेटि सकैं नहिं कोय ॥३७॥
बेर बेर चूकत गयो, दीजै गुसा[2] बिसार।
मिहरबान होइ सबरे[3], मेरी ओर निहार ॥३८॥
दया दीन पर करत हौ, सो किमि लेखी जाहि।
बेदे बिरत बोलत फिरै, तीन लोक के माहिं ॥३९॥
बज्रैं तिनका करत हौ, तिनकै बज्र बनाय।
मिहर तुम्हारी हे प्रभू, सागर गिरि[4] उतराय ॥४०॥
बड़े बड़े पापी अधम, तारत लगी न बार।
पूँजी लगै कछु नंद की, हे प्रभु हमरी बार[5] ॥४१॥

---

(१) प्रन। (२) अप्रसन्नता। (३) हुजूर। (४) पहाड़। (५) नन्दजी श्रीकृष्ण के पिता का नाम है—दयादास की बिनती है कि हे प्रभु आपने बड़े बड़े पापियों को तार दिया अब मेरे तारने के लिये क्या आप की पूँजी चुक गई और अपने बाबा से लेनी पड़ेगी।

सीस नवै तौ तुमहिं कूँ, तुमहिं सुँ भाखूँ दीन।
जो झगरूँ तौ तुमहिं सूँ, तुम चरनन आधीन ॥४२॥
और नजर आवै नहीं, एक राव का साह।
चिरहटा के पंख ज्यों, थोथो काम दिखाह[1] ॥४३॥
तेरी दिसि आसा लगी, भ्रमत फिरूँ सब दीप।
स्वाँती मिलै सनाथ हों, जैसे चातृक सीप ॥४४॥
चित चातृक रटना लगी, स्वाँति बूँद की आस।
दया-सिंध भगवान जू, पुजवौ अब की आस ॥४५॥
कब को टेरत दीन भो[2], सुनौ न नाथ पुकार।
की सरवन ऊँचो सुनो, का बिर्द दियो बिसार ॥४६॥
सुनत दीनता दास की, बिलम कहूँ नहिं कीन्ह।
दयादास मन-कामना, मनभाई कर दीन्ह ॥४७॥

॥ साधु ॥

जगत-सनेही जीव है, राम-सनेही साध।
तन मन धन तजि हरि भजैं, जिन का मता अगाध ॥ १ ॥
दया दान अरु दीनता, दीना-नाथ दयाल।
हिरदै सीतल दृष्टि सम, निरखत करैं निहाल ॥ २ ॥
काम क्रोध मद लोभ नहिं, खट बिकार करि हीन।
पंथ कुपंथ न जानहीं, ब्रह्म भाव रस लीन ॥ ३ ॥
साध संग संसार में, दुरलभ मनुष सरीर।
सतसंगति सूँ मिटत है, त्रिबिध ताप की पीर ॥ ४ ॥
साधू सिंह समान है, गरजत अनुभव ज्ञान।
करम भरम सब भजि गये, 'दया' दुरयो[3] अज्ञान ॥ ५ ॥
साध रूप हरि आप हैं, पावन परम पुरान।
मेटैं दुबिधा जीव की, सब का करैं कल्यान ॥ ६ ॥

(१) जिस तरह चिड़िया का बच्चा डैना फड़फड़ाता है पर उड़ नहीं सकता ऐसी हीमेरी दशा है। (२) होकर। (३) दूर हुआ।

साध संग छिन एक को, पुन्न न बरन्यो जाय।
रति[1] उपजै हरि नाम सूँ, सबही पाप बिलाय ॥ ७ ॥
कोटि जग्य ब्रत नेम तिथि, साध संग में होय।
बिषय ब्याधि सब मिटत हैं, सांति रूप सुख जोय ॥ ८ ॥
साधन के संसा नहीं, 'दया' सर्ब सुख जान।
मन की दुबिधा मेट करि, कियो राम-रस पान ॥ ९ ॥
साधू बिरला जक्त में, हर्ष सोक करि हीन।
कहन सुनन कूँ बहुत हैं, जन जन आगे दीन ॥१०॥
कलि केवल संसार में, और न कोउ उपाय।
साध संग हरि नाम बिन, मन की तपन न जाय ॥११॥
साध संग जग में बड़ो, जो करि जानै कोय।
आधो छिन सतसंग को, कलमख डारै खोय ॥१२॥

॥ सूरमा ॥

जग तजि हरि भजि दया गहि, क्रूर कपट सब छाड़ि।
हरि सन्मुख गुरु-ज्ञान गहि, मनहीं सूँ रन माँड़ि[2] ॥ १ ॥
सूरा वही सराहिये, बिन सिर लड़त कबंद[3]।
लोक लाज कुल कान कूँ, तोड़ि होत निर्बंद ॥ २ ॥
सुनत सबद नीसान[4] कूँ, मन में उठत उमंग।
ज्ञान गुरज[5] हथियार गहि, करत जुद्ध अरि[6] संग ॥ ३ ॥
जो पग धरत सो दृढ़ धरत, पग पाछे नहिं देत।
अहंकार कूँ मार करि, राम रूप जस लेत ॥ ४ ॥
आप मरन भय दूर करि, मारत रिपु[6] को जाय।
महा मोह दल दलन करि, रहै सरूप समाय ॥ ५ ॥

---

(१) लौ, प्रेम। (२) लड़ाई ठानो। (३) एक राक्षस का नाम जिस का सिर गदा की चोट लगने से धड़ के भीतर घुस गया था लेकिन फिर भी वह बराबर लड़ता था। (४) डंका। (५) गदा, सोंटा। (६) दुश्मन।

सूरा सन्मुख समर[1] में, घायल होत निसंक।
यों साधू संसार में, जग के सहै कलंक ॥ ६ ॥
कायर कंपै देख करि, साधू को संग्राम।
सीस उतारै भुइँ धरै, जब पावै निज ठाम ॥ ७ ॥

॥ परिचय ॥

पिय को रूप अनूप लखि, कोटि भान उँजियार।
'दया' सकल दुख मिटि गयो, प्रगट भयो सुख सार ॥ १ ॥
अनँत भान उँजियार तहँ, प्रगटी अद्‌भुत जोत।
चकचौंधी सी लगत है, मनसा सीतल होत ॥ २ ॥
सेत सिंहासन पीव को, महा तेजमय धाम।
पुरुषोत्तम राजत तहाँ, 'दया' करत परनाम ॥ ३ ॥
बिन दामिनि उँजियार अति, बिन घन परत फुहार।
मगन भयो मनुवाँ तहाँ, दया निहार निहार ॥ ४ ॥
वही एक ब्यापक सकल, ज्यों मनिका[2] में डोर।
थिर चर कीट पतंग में, 'दया' न दूजो और ॥ ५ ॥

॥ मिश्रित ॥

महा मोह की नींद में, सोवत सब संसार।
'दया' जगी गुरु दया सूँ ज्ञान भान उँजियार ॥ १ ॥
भोर भयो गुरु ज्ञान सूँ, मिटी नींद अज्ञान।
रैन अबिद्या मिटि गई, प्रगट्यो अनुभव भान ॥ २ ॥
जागत ही अज्ञान सूँ, दरस्यो हरि गुरु रूप।
जिनके चरन परस 'दया', पायो तत्व अनूप ॥ ३ ॥
अबिनासी चेतन पुरुष, जग झूठो जंजाल।
हरि चितवन में मन मगन, सुख पायो तत्काल ॥ ४ ॥
'दया' रूप अद्‌भुत लख्यो, अक्री[3] अमर अगाध।
निरखत ही सब मिटि गई, काल ज्वाल अरु ब्याध ॥ ५ ॥

---

(१) लड़ाई। (२) माला। (३) निराकार।

नेत नेत करि बेद जेहिं, गावत हैं दिन रैन।
'दया कुँवर' चरनदास गुरु, मोहिं लखायो सैन ॥ ६ ॥
सकल ठौर में रहत है, सब गुन रहित अपार।
'दया कुँवर' सूँ दया करि, सतगुरु कह्यो बिचार ॥ ७ ॥
अजर अमर अविगत अमित, अनुभय अलख अभेव।
अबिनासी आनन्दमय, अभय सो आनँद देव ॥ ८ ॥
सब साधन की दास हूँ, मो में नहिं कछु ज्ञान।
हरि जन मो पै दया करि, अपनो लीजै जान ॥ ९ ॥

ग़रीबदासजी

—:०:—

जीवन समय—१७७४ से १८३५ तक। जन्म और सतसंग स्थान—मौज़ा छुड़ानी ज़िला रुहतक (पंजाब)। जाति और आश्रम—जाट, गृहस्थ। गुरू कबीर साहिब।

बाईस बरस की अवस्था में इन महात्मा ने अपनी सत्रह हज़ार साखी और चौपाई के ग्रंथ की रचना आरंभ की जिसमें कबीर साहिब की सात हजार साखी शामिल हैं। उसी ग्रन्थ के चुने हुए अंग और कड़ियाँ बिचित्र टिप्पनी और जीवन-चरित्र के साथ बेलविडियर प्रेस इलाहाबाद में छपी हैं।

॥ गुरुदेव ॥

पुर पट्टन पर लोक है, अदली सतगुरु सार।
भगति हेत से ऊतरे, पाया हम दीदार ॥ १ ॥
ऐसा सतगुरु हम मिला, अललपच्छ[1] की जात।
काया माया ना उहाँ, नहीं पिंड नहिं नात ॥ २ ॥
ऐसा सतगुरु हम मिला, उजल हिरंबर आद।
भलका ज्ञान कमान का, घालत है सर साध ॥ ३ ॥
ऐसा सतगुरु हम मिला, सुन्न बिदेसी आप।
रोम रोम परकास है, देंही अजपा जाप ॥ ४ ॥

(१) एक आकाशी चिड़िया जो आकाश ही में अंडा देती है और अंडे से पृथ्वी पर पहुँचने के पहिले बच्चा निकल कर ऊपर को उड़ जाता है।

ऐसा सतगुरु हम मिला, मगन किये मुस्ताक।
प्याला प्रेम पिलाइया, गगन मंडल गरगाप[1] ॥ ५ ॥
ऐसा सतगुरु हम मिला, गलताना[1] गुलजार।
वार पार की मति नहीं, नहिं हलका नहिं भार ॥ ६ ॥
ऐसा सतगुरु हम मिला, बेपरवाह अबंध।
परम हंस पूरन पुरुष, रोम रोम रवि चंद ॥ ७ ॥
ऐसा सतगुरु हम मिला, तेज पुंज का अंग।
झिलमिल नूर जहूर है, रूप रेख नहिं रंग ॥ ८ ॥
ऐसा सतगुरु हम मिला, तेज पुंज की लोय[2]।
तन मन अरपौं सीस हू, होनी होय सो होय ॥ ९ ॥
ऐसा सतगुरु हम मिला, खोले बज्र कपाट।
अगम भूमि में गम करो, उतरे औघट घाट ॥१०॥
ऐसा सतगुरु हम मिला, मारी गाँसी सैन।
रोम रोम में सालती, पलक नहीं है चैन ॥११॥
माया का रस पीय कर, फूटि गये दोउ नैन।
ऐसा सतगुरु हम मिला, बास दिया सुख चैन ॥१२॥
सतगुरु के लच्छन कहूँ, अचल बिहंगम चाल।
हम अमरापुर ले गया, ज्ञान सबद के नाल ॥१३॥
जिंदा जोगी जगत-गुरु, मालिक मुरसिद पीव।
काल करम लागै नहीं, नहिं संका नहिं सींव[3] ॥१४॥
सतगुरु मारा बान कस, कैबर गाँसी खैंच।
भरम करम सब जरि गये, लई कुबुधि सब ऐंच ॥१५॥
सतगुरु आये दया करि, ऐसे दीन-दयाल।
बंदि छुड़ाई बिरद सुनि, जठर अगिन प्रतिपाल ॥१६॥

(१) मतवाला। (२) लौ। (३) सीमा, हद।

जोनी संकट मेटिहैं, अधो मुखी नहिं आय।
ऐसा सतगुरु सेइये, जम से लेत छुड़ाय ॥१७॥
ऐसा सतगुरु हम मिला, भवसागर के माँहि।
नौका नाम चढ़ाय करि, ले राखे निज ठाँहि ॥१८॥
ऐसा सतगुरु हम मिला, भवसागर के बीच।
खेवट सब कूँ खेवता, क्या उत्तम क्या नीच ॥१९॥
साचा सतगुरु जो मिलै, हंसा पावै थीर।
झकझोलै जूनी मिटै, मुरसिद गहिर गँभीर ॥२०॥
साहिब से सतगुरु भये, सतगुरु से भये साध।
ये तीनों अँग एक हैं, गति कछु अगम अगाध ॥२१॥
सतगुरु के सदके करूँ, तन मन धन कुरबान।
दिल के अंदर देहरा, तहाँ मिले भगवान ॥२२॥
दरस परस देवल धुजा, फरकै दिन राती।
जोत अखंडित जगमगै, दीपक बिन बाती ॥२३॥
ऐसा सतगुरु सेइये, सबद समाना होय।
भवसागर में डूबते, पार लगावै सोय ॥२४॥
सतगुरु पूरन ब्रह्म है, सतगुरु आप अलेख।
सतगुरु रमता राम है, या में मीन न मेख ॥२५॥
सतगुरु आदि अनादि है, सतगुरु मध अरु मूल।
सतगुरु कूँ सिजदा करूँ, एक पलक नहिं भूल ॥२६॥
पुर पट्टन की पैंठ में, सतगुरु ले गया मोय।
सिर साँटे सौदा हुआ, अगली पिछली खोय ॥२७॥
सतगुरु पारस रूप है, हमरी लोहा जात।
पलक बीच कंचन करै, पलटै पिंडा गात ॥२८॥
पुर पट्टन की पैंठ में, सतगुरु ले गया साथ।
जहँ हीरे मानिक बिकैं, पारस लागा हाथ ॥२९॥

ुर पट्टन की पैंठ में, प्रेम पियाले खूब।
जहँ हम सतगुरु ले गया, मतवाला महबूब ॥३०॥
हम पसुआ-जन[1] जीव हैं, सतगुरु जाति भिरंग।
मुरदे से जिन्दा करैं, पलट धरत हैं अंग[2] ॥३१॥

॥ नाम ॥

ारस तुम्हरा नाम है, लोहा हमरी जात।
जड़ सेती जड़ पलटिया, तुम कूँ केतिक बात ॥ १ ॥
ऐसा अविगत नाम है, आदि अंत नहिं कोय।
ार पार कीमत नहीं, अचल निरंतर सोय ॥ २ ॥
ऐसा अविगत नाम है, अगम अगोचर नूर।
ुन्न सनेही आदि है, सकल लोक भरपूर ॥ ३ ॥
ुहू दीन मध एैब है, अलह अलख पहिचान।
ाम निरंतर लीजिये, भगत हेत उत्पान ॥ ४ ॥
कल बियापी सुरत में, मन पवना गहि राख।
ोम रोम धुनि होत है, सतगुरु बोले साख ॥ ५ ॥
अचल अभंगी नाम है, गलताना दम लीन[3]।
ुरत निरत के अंतरे, बाजे अनहद बीन ॥ ६ ॥
अगम अनाहद भूमि है, जहाँ नाम का दीप।
एक पलक बिछुरै नहीं, रहता नैनों बीच ॥ ७ ॥
ऐसा निरमल नाक है, निरमल करै सरीर।
और ज्ञान मँडलीक[4] हैं, चकवै[5] ज्ञान कबीर ॥ ८ ॥
ामै निःचल निरमला, अनंत लोक में गाज।
निरगुन सरगुन क्या कहै, प्रगटा संतों काज ॥ ९ ॥

(१) नरपशु। (२) जैसे भृङ्गी (लखोहरी) झींगुर वगैरह को मार कर अपने खोतों
ं उस पर बैठ कर अपने चींकार शब्द से जिला कर उसको अपना ऐसा रूप वाला बना
ती हैं। (३) महत, रत। (४) छोटे छोटे मंडल के राजा। (५) चक्रवर्ती राजा।

अबिनासी के नाम में, कौन नाम निज मूल।
सुरत निरत से खोजि ले, बास बड़ी अक[1] फूल ॥१०॥
फूल सही सरगुन कहा, निरगुन गंध सुगंध।
मन माली के बाग में, भँवर रहा कहँ बंध ॥११॥
नाम बिना सूना नगर, पड़ा सकल में सोर।
लूट न लूटी बंदगी, हो गया हंसा भोर ॥१२॥
नाम रसायन पीजिये, यहि औसर यहि दाव।
फिर पीछे पछतायगा, चला चली हो जाव ॥१३॥
राम नाम निज सार है, मूल मंत्र मन माहिं।
पिंड ब्रह्मंड से रहित है, जननी जाया नाहिं ॥१४॥
नाम रटत नहिं ढील कर, हर दम नाम उचार।
अमी महा रस पीजिये, बहुतक बारंबार ॥१५॥
गगन मँडल में रहत है, अबिनासी आलेख।
जुगन जुगन सतसंग है, धरि धरि खेलै भेख ॥१६॥
काया माया खंड है, खंड राज अरु पाट।
अमर नाम निज बंदगी, सतगुरु से भइ साँट ॥१७॥
अमर अनाहद नाम है, निरभय अपरंपार।
रहता रमता राम है, सतगुरु चरन जुहार ॥१८॥
बिन रसना है बंदगी, बिन चस्मों दीदार।
बिन सरवन बानी सुनै, निर्मल तत्त निहार ॥१९॥
मैं सौदागर नाम का, टाँडे[2] पड़ा बहीर[3]।
लदते लदते लादिये, बहुर न फेरा[4] बीर ॥२०॥
नाम बिना क्या होत है, जप तप संजम ध्यान।
बासर भरमै मानवी, अभि अंतर में जान ॥२१॥

---

(१) या। (२) बंजारों का झुण्ड। (३) माल, जिन्स। (४) आवागमन।

नाम बिना निपजै नहीं, जप तप करिहैं कोटि।
लख चौरासी त्यार है, मूड़ मुड़ाया घोंटि ॥२२॥
नाम सरोवर सार है, सोहं सुरत लगाय।
ज्ञान गलीचे बैठ करि, सुन्न सरोवर न्हाय ॥२३॥
मान सरोवर न्हाइये, परमहंस का मेल।
बिना चुंच मोती चुँगै, अगम अगोचर खेल ॥२४॥
ऐसा नाम अगाध है, अबिनासी गंभीर।
हद जीवों से दूर है, बेहदियों के तीर ॥२५॥
ऐसा नाम अगाध है, बेकीमत करतार।
सेस सहस फन रटत है, अजहुँ न पाया पार ॥२६॥

। सुमिरन ।।

नाम जपा तो क्या हुआ, उर में नहीं यकीन।
चोर मुसै घर लूटहीं, पाँच पचीसो तीन ॥ १ ॥
कोटि गऊ जे दान दे, कोटि जज्ञ जेवनार।
कोटि कूप तीरथ खनै[1], मिटे नहीं जम मार ॥ २ ॥
कोटिन तीरथ ब्रत करै, कोटिन गज करि दान।
कोटि अस्व बिप्रों दिये, मिटै न खैंचा तान ॥ ३ ॥
सुमिरन तब ही जानिये, जब रोम रोम धुनि होय।
कुंज कमल में बैठ करि, माला फेरै सोय ॥ ४ ॥

।। अनहद ।।

गगन गरज घन बरषहीं, बाजै अनहद तूर।
लै लागी तब जानिये, सन्मुख सदा हजूर ॥ १ ॥
गगन गरज घन बरषहीं, बीजे दीरघ नाद।
अमरापुर आसन करै, जिन के मते अगाध ॥ २ ॥

---

(१) खोदै।

॥ भक्ति ॥

बिना भगति क्या होत है, कासी करवत[1] लेह।
मिटै नहीं मन बासना, बहु बिधि भरम सँदेह ॥ १ ॥
भगति बिना क्या होत है, भरम रहा संसार।
रत्ती कंचन पाय नहिं, रावन चलती बार[2] ॥ २ ॥
सुरत लगै अरु मन लगै, लगै निरत धुन ध्यान।
चार जुगन की बंदगी, एक पलक परमान ॥ ३ ॥
सुरत लगै अरु मन लगै, लगै निरत तिस माहिं।
एक पलक तहँ संचरै, कोटि पाप अघ जाहिं ॥ ४ ॥
अविगत की अविगत कथा, अविगत है सब ख्याल।
अविगत सों अविगत मिलै, कर जोरे तब काल ॥ ५ ॥
नाम रसायन पीजिये, चोखा फूल चुवाय।
सुन्न सरोवर हंस मन, पीया प्रेम अघाय ॥ ६ ॥
अधम-उधारन भगति है, अधम-उधारन नावँ।
अधम-उधारन संत हैं, जिनके मैं बलि जावँ ॥ ७ ॥
कहता दास गरीब है, बाँदी-जाद[3] गुलाम।
तुम हो तैसी कीजिये, भगति हिरंबर नाम ॥ ८ ॥
जैसे माता गर्भ को, राखै जतन बनाय।
ठेस लगै तो छीन है, ऐसे भगति दुराय[4] ॥ ९ ॥

॥ लव ॥

लै लागी तब जानिये, जग सूँ रहै उदास।
नाम रटै निरदुंद है, अनहदबुर में बास ॥ १ ॥
लै लागी तब जानिये, हर दम नाम उचार।
एकै मन एकै दसा, साईं के दरबार ॥ २ ॥

---

(१) काशी में काशी करवत एक स्थान है जहाँ एक कुए में आरे लगे थे और लोग उस पर मुक्ति के हेतु कट मरते थे। (२) कहते हैं कि लंका सोने की बनी थी लेकिन जो राम-द्रोही था मरते समय खाली हाथ गया। (३) खाना-ज़ाद। (४) छिपाय।

ये पुरपट्टन ये गली, बहुरि न देखै आय।
सतगुरु सूँ सौदा हुआ, भर ले माल अघाय ॥ ३ ॥
ज्ञान जोग अरु भगति ले, सील सँतोष बिबेक।
लै लागी तब जानिये, जब दिल आवै एक ॥ ४ ॥
गगन गरजि भाठी चुए, हीरा घंटिक सार।
लै लागी तब जानिये, उतरै नहीं खुमार ॥ ५ ॥

॥ चितावनी ॥

पानी की इक बूँद सूँ, साज बनाया जीव।
अंदर बहुत अँदेस था, बाहर बिसरा पीव[1] ॥ १ ॥
धरनीधर जाना नहीं, कीन्हा कोटि जतन्न।
जल से साज बनाय करि, मानुष किया रतन्न ॥ २ ॥
अधोमुखी जब रहे थे, तल सिर ऊपर पाँव।
राखनहारा राखिया, जठर अगिन की लाव[2] ॥ ३ ॥
तुही तुही तुतकार की, जपता अजपा जाप।
बाहर आकर भरमिया, बहुत उठाये पाप ॥ ४ ॥
जठर अगिन से राखिया, ना साईं गुन भूल।
वह साहिब दरहाल है, क्यों बोवत है सूल ॥ ५ ॥
आध घड़ी की अध घड़ी, आध घड़ी की आध।
साधू सेती गोस्टी[3], जो कीजे सो लाभ ॥ ६ ॥
पाव घड़ी तो याद कर, नौमाना सन[4] खोय।
सतगुरु हेला देत है, बिषै सूल नहिं बोय ॥ ७ ॥
अलिफ अलह कूँ याद कर, कादिर कूँ कुरबान।
साईं सेती तोड़ कर, राखा अधम जहान ॥ ८ ॥

---

(१) पुराणों में कथा है कि जब प्राणी गर्भ में आता है तब उसे ईश्वर का निरंतर दर्शन होता है और ईश्वर से प्रार्थना किया करता है कि इस मलाशय से मुझे बाहर कीजिये मैं प्रतिदिन आप का ध्यान किया करूँगा, परन्तु बाहर आते ही संसार की माया से अज्ञानी होकर उसको भूल जाता है। (२) लवर। (३) बातचीत। (४) पूरा बरस।

अलिफ अलह कूँ याद कर, जिन्ह कीन्हा यह साज।
उस साहिब कूँ याद कर, पाला[1] बिन जल नाज ॥ ९ ॥
संसारी में आन करि, कहा किया रे मूढ़।
सूआ सेमर सेइया, लागे डोंड़े टूट ॥१०॥
आदि समय चेता नहीं, अंत समय अँधियार।
मद्ध समय माया रते, पाकड़ लिले गँवार ॥११॥
अंत समय बीतै घनी, तन मन धरै न धीर।
उस साहिब कूँ याद कर, जिन्ह यह धरा सरीर ॥१२॥
यह माटी का महल है, ता से कैसा नेह।
जो साईं मिलि जात है, तौ पारायन देंह ॥१३॥
यह माटी का महल है, छार मिलै छिन माहिं।
चार सकस[2] काँधे धरे, मरघट कूँ ले जाहिं ॥१४॥
जार बार तन फूँकिया, होगा हाहाकार।
चेत सकै तो चेतिये, सतगुरु कहैं पुकार ॥१५॥
जार बार तन फूँकिया, मरघट मंडन माँड।
या यन की होरी बनी, मिटी न जन की डाँड ॥१६॥
माया हुई तो क्या हुआ, भूल रहा नर भूत।
पिता कहैगा कौन कूँ, तू बेस्वा का पूत ॥१७॥
लख चौरासी बंध तें, सतगुरु लेत छुड़ाय।
जे उर अंतर नाम है, जोनी बहुरि न जाय ॥१८॥
इस माटी के महल में, मन बाँधी बिष पोट।
अहरन[3] पर हीरा धरा, ताहि सहै घन चोट ॥१९॥
काचा हीरा चिरच है, नहीं सहै घन मार।
ऐसा मन यह है रहा, लेवा ले करतार ॥२०॥

---

(१) पालन किया। (२) आदमी। (३) निहाई।

हीरा घन की चोट सहि, साचे कूँ नहिं आँच।
वह दरगह[1] में क्या कहै, जाके संग हैं पाँच[2] ॥२१॥
संतों सेतीं ओलने[3], संसारी से नेह।
सो दरगह में मारिये, सिर में देकर खेह ॥२२॥
मात पिता सुत बंधवा, देखैं कुल के लोग।
रे नर देखत फूँकिये, करते हैं सब सोग ॥२३॥
महल मँडेरी नीम सब, चलै कौन के साथ।
कागा गैला हो रहा, कछू न लागा हाथ ॥२४॥
पंछी उड़ै अकास कूँ, कित कूँ कीन्हा गौन।
यह मन ऐसे जात है, जैसे बुदबुद[4] पौन ॥२५॥
धन संचै तो सील का, दूजा परम सँतोख।
ज्ञान रतन भाजन[5] भरो, असल खजाना रोक ॥२६॥
दया धर्म दो मुकट हैं, बुद्धि बिबेक बिचार।
हर दम हाजिर हूजिये, सौदा त्यारंत्यार ॥२७॥
नाम अभय पद निरमला, अटल अनूपम एक।
यह सौदा सत कीजिये, बनिजी बनिज अलेख ॥२८॥
गगन मंडल में रमि रहा, तेरा संगी सोय।
बाहर भरमे हानि है, अंतर दीपक जोय ॥२९॥
चित के अंदर चाँदना, कोटि सूर ससि भान।
दिल के अंदर देहरा, काहे पूजि पषान ॥३०॥
रतन रसायन नाम है, मुक्ता महल मजीत[6]।
अंधे कूँ सूझै नहीं, आगे जलै अँगीठ ॥३१॥
रतन खजाना नाम है, माल अजोख अपार।
यह सौदा सत कीजिये, दुगुने तिगुने चार ॥३२॥

---

(१) दरबार। (२) पाँच दूत। (३) शिकायत। (४) बुलबुला। (५) बरतन। (६) मस्जिद।

मन माया की डुगडुगी, बाजत है मिरदंग ।
चेत सकै तो चेतिये, जाना तुझे निहंग[१] ॥३३॥
फूँक फाँक फ़ारिग किया, कहीं न पाया खोज ।
चेत सकै तो चेतिये, ये माया के चोज[२] ॥३४॥
ज्यों कुंजर सिर धुनत है, अगला[३] जनम सुझंत ।
अब की हेले[४] नर करै, तो सेऊँ पूरे संत ॥३५॥

॥ विश्वास ॥

सील संतोष बिबेक बुधि, दया धर्म इक तार ।
बिन निहचै पावै नहीं, साहिब का दीदार ॥ १ ॥
कासी मरै सो जाय मुक्ति कूँ, मगहर गदहा होई ।
पुरुष कबीर चले मगहर कूँ, ऐसा निहचा जोई[५] ॥ २ ॥

॥ दुबिधा ॥

हरष सोग है स्वान गति, संसा सरप सरीर ।
राग द्वेष बड़ रोग है, जम के परे जँजीर ॥ १ ॥
करम भरम भारी लगे, संसा सूल बबूल ।
डाली पातों डोलते, परसत नाहीं मूल ॥ २ ॥

॥ समरथ ॥

समरथ का सरना लिया, ताहि न चाँपै काल ।
पारब्रह्म का ध्यान धर, होत न बाँका बाल ॥ १ ॥
चरन कमल के ध्यान से, कोटि बिघन टल जाहिं ।
राजा होवै लोक का, जहाँ परै हुम[६] छाँहिं ॥ २ ॥

॥ बेहद ॥

गगन मँडल में रमि रहा, गलताना महबूब ।
वार पार नहिं छेव[७] है, अबिचल मूरत खूब ॥ १ ॥

---

(१) नङ्गा । (२) बिलास । (३) पुरबला । (४) बार । (५) कबीर साहिब काशी से जाकर मगहर में रहे थे और वहीं शरीर त्याग किया । मगहर को मगहर देश बोलते हैं और लोगों का विश्वास है कि वहाँ मरने से गधे की जोनि मिलती है क्योंकि गुरुद्रोही राजा त्रिशंकु का शरीर जो अधर में लटक रहा है उसकी छाया उस भूमि पर पड़ने से वह अपवित्र हो गई है । (६) हुमा चिड़िया जिसकी निस्वत कहते हैं कि उसका साया पड़ने से आदमी बादशाह हो जाता है । (७) आकार, खंड ।

अजब महल बारीक है, अजब सुरत बारीक।
अजब निरत बारीक है, महल धसे बिन बीक[1] ॥ २ ॥
पारब्रह्म बिन परख है, कीमत मोल न तोल।
बिना वजन अरु रंग है, बहुरंगो अनबोल ॥ ३ ॥
सजन सलोना राम है, अब मत अंतहिं जाय।
बाहर भीतर एक है, सब घट रहा समाय ॥ ४ ॥
सजन सलोना राम है, अचल अभंगी एक।
आदि अंत जा के नहीं, ज्यों का त्योंहीं देख ॥ ५ ॥
तुमहीं सोहं सुरत हौ, तुमहीं मन अरु पौन।
स में दूसर कौन है, आवै जाय सो कौन ॥ ६ ॥
स में दूसर कर्म है, बंधो अविद्या गाँठ।
ाँच पचीसो ले गये, अपने अपने बाट ॥ ७ ॥

॥ बिनय ॥

ाहिब मेरी बीनती, सुनो गरीब-निवाज।
ल को बूँद महल रचा, भला बनाया साज ॥ १ ॥
ाहिब मेरी बीनती, सुनिये अर्स[2] अवाज।
ादर पिदर करीम तू, पुत्र पिता को लाज ॥ २ ॥
ाहिब मेरी बीनती, कर जोरौं करतार।
न मन धन कुरबान है, दीजै मोहिं दीदार ॥ ३ ॥
ील सँतोष बिबेक बुध, दया धर्म इकतार।
कल यकीन इमान रख, गही बस्तु निज सार ॥ ४ ॥
ाहिब तेरी साहिबी, कैसे जानी जाय।
सरेनू[3] से झीन है, नैनों रहा समाय ॥ ५ ॥
नंत कोटि ब्रह्मंड का, रचनहार जगदीस।
सा सूच्छम रूप धरि, आन बिराजा सीस ॥ ६ ॥

(१) डर। (२) सातवाँ आसमान। (३) तीन परमाणु का एक त्रिसरेणु होता है।

साहिब पुरुष करीम तूँ, अविगत अपरंपार ।
पल पल माहें बंदगी, निरधारो आधार ॥ ७ ॥
दरदमंद दरवेस तूँ, दिल-दाना महबूब ।
अचल बिसंभर बसि रहा, सूरत मूरत खूब ॥ ८ ॥
सुरत निरत से भीन है, जगन्नाथ जगदीस ।
त्रिकुटी छाजे पुर रहै, है ईसन का ईस ॥ ९ ॥
साहिब तेरी साहिबी, कहा कहूँ करतार ।
पलक पलक की दीठ में, पूरन ब्रह्म हमार ॥१०॥
एते करता कहाँ हैं, वह तो साहिब एक ।
जैसे फूटी आरसी, टूक टूक में देख ॥११॥
करौं बीनती बंदगी, साहिब पुरुष सुभान ।
संख असंखी बरन है, कैसे रचा जहान ॥१२॥
साहिब तेरी साहिबी, समझ परै नहिं मोहिं ।
एता रूप जहान जग, कैसे सिरजा तोहिं ॥१३॥
एक बीज इक बिंदु है, एक महल इक द्वार ।
चरन कमल कुरबान जाँ, सिरजे रूप अपार ॥१४॥
मौला जल से थल करै, थल से जल कर देत ।
साहिब तेरी साहिबी, स्याम कहूँ की सेत ॥१५॥
साहिब मेरा मिहरबाँ, सुनिये अर्स अवाज ।
पंजा राखो सीस पर, जमहीं होत तिरास ॥१६॥
मादर पिदर परान तू, साहिब समरथ आप ।
रोम रोम धुनि होत है, सबद सिंधु परकास ॥१७॥
तन मन धन जगदीस का, रती सुमेर समान ।
मिहर दया कर मुझ दिया, तन मन वारों प्रान ॥१८॥
यह माया जगदीस की, अपनी कहैं गँवार ।
जमपुर धक्के खायँगे, नाहक करैं बिगार ॥१९॥

मैं समरथ के आसरे, दमक दमक कतार।
गफ़लत मेरी दूर कर, खड़ा रहूँ दरबार ॥२०॥
सुनो पुरुष मेरी बीनती, साहिब दीन-दयाल।
पतित-उधारन साइयाँ, तुम हो नजर निहाल ॥२१॥
नागदमन[1] निरगुन जड़ी, ऐसा तुम्हरा नाम।
तच्छक तोछा डरत है, हर दम जप ले नाम ॥२२॥
आतम इंद्री कारने, मत भटकावै मोहिं।
जगन्नाथ जगदीस गुरु, सरना आया तोहिं ॥२३॥
हुमा छाँह जा पर परै, पिरथी-नाथ कहाय।
पसु पछी आदम सबै, सनमुख परखै ताय ॥२४॥
दिब्य-दृष्टि देवा दयाल, सतगुरु संत सुजान।
तिरलोकी के जीव कूँ, परख लेत परवान ॥२५॥
अगले पिछले जन्म कूँ, जानत है जगदीस।
मुंडमाल सिव के गले, पहिर रहे ज्यों ईस[2] ॥२६॥
दम सूँ दम कूँ समझि ले, उठत बैठ आराध।
रंचक ध्यान समान सुध, पूरन सकल मुराद ॥२७॥
अनंत कोटि ब्रह्मंड में, बटक[3] बीज बिस्तार।
सुरत सरूपी पुरुष है, तन मन धन सब वार ॥२८॥
रतन अमोली फूल है, सो साहिब के सीस।
जो रँग नाहीं स्त्रिष्टि में, देखा बिस्वे बीस ॥२६॥
सतगुरु के सदके करूँ, अनंत कोटि ब्रह्मंड।
निरगुन नाम निरंजना, मेटत है जम दंड ॥३०॥

---

(१) नाम साँप की जड़ी का। (२) एक समय पारबतीजी ने शिवजी से पूछा कि यह मुँडमाल जो आप पहिने हुए हैं उसमें किन किन के सिर हैं। शिवजी बोले कि तुम हमको इतनी प्रिय हो कि जितने जन्म तुमने धरे हैं तुम्हारे हर एक शरीर का मुंड मैंने अपने गले में डाल रक्खा है। (३) बड़ का पेड़।

दिल के अंदर देहरा, जा देवल में देव ।
हर दम साखी-भूत है, करो तासु की सेव ॥३१॥
जल का महल बनाइया, धन समरथ साईं ।
कारीगर कुरबान जाँ, कुछ कीमत नाईं ॥३२॥
कोटि जतन करि राखिया, जठरा के माईं ।
गर्भ बास को बीनती, सुनि पुरुष गुसाईं ॥३३॥
अष्ट कमल दल आरती, हर दम हरि होई ।
नाभि कमल में प्रान-नाथ, राखे निरमोई ॥३४॥
माया की बुरकी[1] पड़ी, मारग नहिं पावै ।
दस इंद्री लारे लगी, अब कौन छुटावै ॥३५॥
बड़वा नल का द्वार है, नाभी के नीचे ।
जो सतगुरु भेदी मिलै, तहँ अमृत सींचे ॥३६॥
मन माया मौजूद है, काया गढ़ माहीं ।
बीच पुरजन[2] बसत है, सो पावै नाहीं ॥३७॥
पाँच भार[3] जो आदि है, जा के सँग डोलै ।
तीन लोक कूँ खा गई, मुख से नहिं बोलै ॥३८॥
बड़ी कुसंगन सुपचनी, सुध बुध बिसरावै ।
चिंता चेरी चूहरी[4], नित नाद बजावै ॥३९॥
बीच पुरंजन बैठ कर, बहु नाच नचावै ।
लोक परगने बाँट कर, बड़दच्छा[5] ध्यावै ॥४०॥
मनसा मालिन आनकर, नित सेज बिछावै ।
तहाँ पुरंजन बैठ कर, नित भोग करावै ॥४१॥
तीन लोक की मेदनी[6], सब हाजिर होई ।
मन रंगी के रंग में, रंगा सब कोई ॥४२॥

---

(१) परदा । (२) निरंजन, त्रिलोकीनाथ । (३) बोझ अर्थात् तत्व । (४) भंगन । (५) बरिच्छा । (६) पृथिवी ।

आसन असथल उठ गये, कुछ पिंड न आना ।
फेर पुरंजन आनकर, घाला घमसाना ॥४३॥
दुरमति दूती और है, इक दारुन माया ।
जैसे काँजी[1] दूध में, घृत खंड कराया ॥४४॥
द्वादस कोटि कटक चढ़ै, कुछ गिनती नाहीं ।
लालच नीचन की बहै, जिन फौजाँ माहीं ॥४५॥
संसा सोच सराय में, सूतक दिन राती ।
जीवत ही जूती परै, जम तोरै छाती ॥४६॥
रहजन[2] कोटि अनंत हैं, काया गढ़ माहीं ।
ममता माया बिस्तरी, तिर्गुन तन माहीं ॥४७॥
बाँकी फौज पुरंजना, कुछ पार न पावै ।
मन राजा के राज में, क्या भगति करावै ॥४८॥
मन के मारे मुनि बड़े, नारद से ज्ञानी ।
सिंगी रिषि पारासरा, किन्हे रजधानी ॥४९॥
डरै पुरंजन एक से, जो जाना जाई ।
निज मन का आरंभ करि, सुरती लौ लाई ॥५०॥
सील संतोष बिबेक से, जा के दरबाना ।
काम क्रोध भागे जबै, गढ़ देखा सामाँ ॥५१॥
लोभ मोह मारे परे, सेना सब भागी ।
सतगुरु के परताप से, जब आतम जागी ॥५२॥
पुरुष पुरंजन पाकड़ा, गढ़ घेरा जाई ।
निज मन की फौजाँ धसी, काया गढ़ माहीं ॥५३॥
अकल यकीन इमान औ, मनसा भइ थीरं ।
अजपा तारी धुन लगी, जम कटे जँजीरं ॥५४॥

---

(१) सिरका । (२) बटमार ठग ।

थाक्यो मन पिंगल चढ़ा, परवान परेवा[1] ।
कोटि पदम की दामिनी, गरजत बहु भेवा ॥५५॥
प्रान अपान[2] समान कर, सुरती लौ लाई ।
दुहुबर कोट ढहाइया, अरु तहँ बड़ खाँई ॥५६॥
भरम बुरज भाने सबै, सोलह सुर धाई ।
सत्रह सुरती हंसिनी, सब खबरैं लाई ॥५७॥

॥ साध ॥

धन जननी धन भूमि धन, धन नगरी धन देस ।
धन करनी धन सुकुल धन, जहाँ साध परबेस ॥ १ ॥
साइँ सरिखे संत हैं, या में मीन न मेख ।
परदा अंग अनादि है, बाहर भीतर एक ॥ २ ॥
साईं सरिखे देख ले, बरतावै जे कोय ।
सप्त कोस जल चढ़ गया, जहाँ साध मुख धोय[3] ॥ ३ ॥
बृच्छ नदी औ साध जन, तीनों एक सुभाव ।
जल न्हावे भल बृच्छ दे, साध लखावै नाँव ॥ ४ ॥
ऐसे साधू संत जन, पारब्रह्म की जात ।
सदा रते हरि नाम सूँ, अंतर नाहीं घात ॥ ५ ॥
साध समुंदर कमल गति, माहें साइँ गध ।
जिन में दूजी भिन्न क्या, सो साधू निरबंध ॥ ६ ॥
नौ नेजे जो जल चढ़ै, कमल न भींजै गात ।
माहें ज्ञान सुगंध सर[4], आदि अंत का साथ ॥ ७ ॥
संत सरोवर हंस है, भच्छन करैं बिचार ।
पुहुप बासना ज्यूँ रहैं, राई रंच न भार[5] ॥ ८ ॥
साध कमल मध बासना, ऐसा हलका अंग ।
मैल मनोरथ ना रहै, निरमल धारा गंग ॥ ९ ॥

---

(१) कबूतर के समान । (२) नीचे की वायु । (३) गिरनार पहाड़ जहाँ अच्छे साधू रहते हैं वहाँ से सात कोस नीचे हनुमान धारा गिरती है । (४) तालाब । (५) जैसे फूल में सुगंध जिस का रत्ती भर बोझ नहीं होता ।

साध सँगत हरि भक्ति बिनु, कोई न पावै पार।
निरमल आदि अनादि हैं, गंदा सब संसार ॥१०॥
ज्यूँ जल में पाषान है, भींजत नाहीं अंग।
चकमक लागे अगिन है, कहा करै सतसंग ॥११॥
साध संत के औन[1] में, बसैं हजूर अमान।
जा घर नेंदा साध की, सो घर डूबे जान ॥१२॥
संत सकल के मुकट हैं, साईं साध समान।
बड़ भागी वे हंस हैं, जिन संतों नाल पिछान ॥१३॥
साध सगे हैं जगत में, संत सगाई साच।
साधू ढूँढ़न नीकलूँ, बहु बिधि काछूँ काछ ॥१४॥
साईं सरिखे साध हैं, इन सम तुल नहिं और।
संत करैं सोइ होत है, साहिब अपनी ठौर ॥१५॥
संतों कारन सब रचा, सकल जमीं असमान।
चंद सूर पानी पवन, जग तीरथ औ दान ॥१६॥
ज्यूँ बच्छा गउ की नजर में, यूँ साईं औ संत।
हरि जन के पीछे फिरैं, भक्त बछल भगवंत ॥१७॥
पंडित कोटि अनंत हैं, ज्ञानी कोटि अनंत।
स्रोता कोटि अनंत हैं, बिरले साधू संत ॥१८॥
जिन्ह मिलते सुख ऊपजे, मेटैं कोटि उपाध।
भुवन चतुरदस ढूँढ़िये, परम सनेही साध ॥१९॥
राम सरीखे साध हैं, साध सरीखे राम।
सतगुरु को सिजदा करूँ, जिन्ह दीन्हा निज नाम ॥२०॥

॥ बैराग ॥

बैराग नाम है त्याग का, पाँच पचीसो माहिं।
जब लग संसा सरप है, तब लग त्यागी नाहिं ॥ १ ॥

---

(१) आँख, घर।

बैराग नाम है त्याग का, पाँच पचीसों संग।
ऊपर की कैंचल तजी, अंतर विषय भुवंग ॥ २ ॥
असन बसन सब तज गये, तज गये गाँव गिरेह।
माहें संसा सूल है, दुरलभ तजना येह ॥ ३ ॥
बाज कुही[1] गत ज्ञान की, गगन गरज गरजंत।
लूटै सुन्न अकास तें, संसा सरप भछंत ॥ ४ ॥
नित ही जामै नित मरै, संसय माहिं सरीर।
जिन का संसा मिट गया, सो पीरन सिर पीर ॥ ५ ॥
ज्ञान ध्यान दो सार है, तीजे तत्त अनूप।
चौथे मन लागा रहै, सो भूपन सिर भूप ॥ ६ ॥
मन की झीनी ना तजी, दिल ही माहिं दलाल।
हर दम सौदा करत है, करम कुसंगति काल ॥ ७ ॥
मन सेती खोटी गढ़ै, तन सूँ सुमिरन कीन्ह।
माला फेरे क्या हुआ, दुर कुट्टन बेदीन ॥ ८ ॥
तन मन एक वजूद कर, सुरत निरत लौ लाय।
बेड़ा पार समुद्र होइ, चक्क पलक ठहराय ॥ ९ ॥
चार पदारथ एक कर, सुरत निरत मन पौन।
असल फकीरी जोग यह, गगन मँधल कूँ गौन ॥१०॥

॥ सतसंग सज्जन को ॥

संगत कीजे साध की, संसारी भटकंत।
पिंजर सूआ बसत है, किस कूँ बूझै पंथ ॥ १ ॥
साधों की संगत करै, बड़ भागी बड़ देव।
आपन तो संसा नहीं, औरै उतारै खेव ॥ २ ॥
संगत सुर की कीजिये, असुरन सूँ क्या हेत।
डार मूल पावै नहीं, ज्यों मूली का खेत ॥ ३ ॥

---

(१) शिकरा।

दम सुमार आधार रख, पलकों मद्ध धियान।
संतों की संगति करै, समझि बूझि गुरु ज्ञान ॥ ४ ॥
नाम रते निरगुन कला, मानस नहीं मुरार[1]।
ज्यों पारस लोहा लगे, कटि हैं करम लगार ॥ ५ ॥

॥ सतसंग दुर्जन को ॥

बगुला हंसा एक सर, एकै रूप रसाल।
वह सरवर मोती चुँगै, वह मच्छी का काल ॥ १ ॥
तन तो बाँबी हो गया, मन की गई न बान।
स्वर्ग पहुँच दोजख गये, सतगुरु लगे न कान ॥ २ ॥
सतगुरदतदाता[2] कहै, बानी बड़ो बलंद।
मुख बोले क्या होत है, अंतर हेत न अंध ॥ ३ ॥
कमरी के रँग ना चढ़ै, कोइला नहीं सपेद।
सतगुरु बिन सूझै नहीं, कहा पढ़त है बेद ॥ ४ ॥
कस्तूरी की बासना, मिरगा लेत सुबास।
निरख परख आवै नहीं, बहुरि ढँढोरै घास ॥ ५ ॥

॥ कुसंग ॥

कमल फूल मन भँवर है, काँटा करम कुसंग।
पाँच बिषय सुँ बँधि रहा, कैसे लागै रंग ॥ १ ॥
भूमि पड़ै जैसा फलै, सुर की संगत कीन्ह।
नीचन मुख नहिं देखना, ना कोइ मिलै कुलीन ॥ २ ॥
सीप पियत है स्वाँति कूँ, बिच है खारी नीर।
माहें मोती नीपजे, करनी-बंध सरीर[3] ॥ ३ ॥
संसारी सूँ साख क्या, ऊसर बरषा देख।
बोवै बीज न खेत हित, तो क्या काटै मेख ॥ ४ ॥

---

(१) मन में जिनके कोई कामना नहीं रही है। (२) तोता के पढ़ने की बोली। (३) यह उपमा इस बात की है कि सच्ची लगन वाले पर कुसंग भी बुरा असर नहीं पैदा करता।

॥ उपदेश ॥

कोटि जग्य असुमेध कर, एक पलक धर ध्यान ।
षटदल के री बंदगी, नहीं जग्य उनमान ॥ १ ॥
अठसठ तीरथ भरमता, भटक मुआ संसार ।
बारहबानी[1] ब्रह्म है, जा का करो बिचार ॥ २ ॥
काया अपनी है नहीं, माया कहँ से होय ।
चरन कमल में ध्यान रख, इन दोनों को खोय ॥ ३ ॥
इस दुनियाँ में आय कर, इन चारों कूँ बंध ।
काम क्रोध छोह चूहरा[2], लोभ लपटिया अंध ॥ ४ ॥

॥ घट मठ ॥

स्वर्ग सात असमान पर, भटकत है मन मूढ़ ।
खालिक[3] तो खोया नहीं, इसी महल[4] में ढूँढ़ ॥

॥ साच ॥

साचा सतगुरु जो मिलै, हंसा पावै धीर ।
झकझोले जूनी मिटै, मुरसिद गहिर गँभीर ॥ १ ॥
साचे कूँ परनाम है, झूठे के सिर दंड ।
ठौर नहीं तिहुँ लोक में, भरमत है नौ खंड ॥ २ ॥
साचे का सुमिरन करो, झूठे द्यो जंजाल ।
साचा साहिब आप है, झूठ कपट सब काल ॥ ३ ॥
साचे कूँ स्वर्गापुरी, झूठा दोजख माहिं ।
चंद सूर की आयु[5] लग, दोजख निकसै नाहिं ॥ ४ ॥
साचे का सेवन करै, झूठे कूँ ले लूट ।
झूठ सबद सूँ यूँ डरै, ज्यों स्याने की मूठ[6] ॥ ५ ॥
साचे कूँ सब सौंप दे, भगति बंदगी नाम ।
झूठ कपटी मारिये, हमरे कौन काम ॥ ६ ॥

---

(१) खरा सोना । (२) भंगी । (३) कर्त्ता । (४) शरीर । (५) उमर, स्थिति ।
(६) गुनी के जादू का बान ।

साचे सदा मसंद[1] पर, उस चंगे दरबार।
झूठों के जूती पड़ै, जम किंकर की मार ॥ ७ ॥
साहिब जिनके उर बसै, झूठ कपट नहिं अंग।
तिन का दरसन न्हान है, कहँ परबी फिर गंग ॥ ८ ॥
साचे सूरे संत हैं, मरदाने जूझार[2]।
लाख दोस ब्यापै नहीं, एक नाम की लार ॥ ९ ॥
सत्त सुकृत अरु बंदगी, जा उर ज्ञान बिबेक।
साध रूप साईं मिले, पूरन ब्रह्म अलेख ॥१०॥
सत्त सुकृत संतोष सर, आधीनी अधिकार।
दया धरम जा उर बसै, सो साईं दीदार ॥११॥
साचे कूँ संका नहीं, झूठे भय घर माहिं।
कोट किले क्या चुनत है, झूठा छूटै नाहिं ॥१२॥

॥ जरना[3] ॥

ऐसी जरना[3] चाहिये, ज्यों पृथ्वी तत थीर।
खोदे से कसकै नहीं, ऐसा बज्र सरीर ॥ १ ॥
ऐसी जरना चाहिये, ज्यों अप[4] तेज अनूप।
न्हावै धोवै थूक दे, तामस नहीं सरूप ॥ २ ॥
ऐसी जरना चाहिये, पवन तत्त परमान।
कुटिल बचन कोई कहै, मानै नहीं अमान ॥ ३ ॥
ऐसी जरना चाहिये, ज्यों अगिन तत्त में होय।
जो कुछ परै सो सब जरै, बुरा न बाचै कोय ॥ ४ ॥
ऐसी जरना चाहिये, ज्यों तरवर[5] के तीर।
काटै चीरै काठ को, तौ भी मन है धीर ॥ ५ ॥
ऐसी जरना चाहिये, ज्यों घनहर[6] जल मेह।
सबही ऊपर बरसता, ना दिल दोष सनेह ॥ ६ ॥

(१) तकिया मसनद। (२) जोधा। (३) सहन, छिमा, पचाना. गुप्त रखना। (४) जल। (५) पेड़। (६) गहरा बादल।

दीठी अनदीठी करैं, जिन की लूँ मैं दाद ।
सँग से कभी न बिच्छरूँ, परम सनेही साध ॥ ७ ॥
दीठी अनदीठी करैं, सब अपने सिर लेहिं ।
सँग से कभी न बिच्छरूँ, जो मुझ सरबस देहिं ॥ ८ ॥
दीठी अनदीठी करैं, जिन के हूँ मैं संग ।
भक्ति पुरातम देत हैं, चढ़त नवेला रंग ॥ ९ ॥
दीठी अनदीठी करैं, सो साधू सिर-पोस ।
जो बीतै सो सिर धरैं, देहि न काहू दोस ॥१०॥
दीठी अनदीठी करैं, जिन की लूँ मैं दाद ।
सँग से कभी न बीछरूँ, खेलूँ आद अनाद ॥११॥
ऐसी जरना चाहिये, ज्यों अललपच्छ[1] के अंग ।
अंडा छुटै अकास तें, बहुर मिलै सतसंत ॥१२॥
ऐसी जरना चाहिये, ज्यों चंदन के अंग ।
मुख से कछू न कहत है, तन कूँ खाय भुवंग ॥१३॥
ऐसी जरना चाहिये, ज्यों पारस के होय ।
लोहे से सोना करै, कह न सुनावै कोय ॥१४॥
परदा कभी न पाड़िये[2], जे सिर जलै अँगीठ ।
चाबुक तोड़ौ चौपटे, गुनहगार की पीठ ॥१५॥
कथनी में कुछ है नहीं, करनी में रँग लाग ।
करनी करि जरना जरै, सो जोगी बड़ भाग ॥१६॥
काँछ बाँछ को कसि रहे, सतबादी नर एक ।
साइं के दरबार में, रहे जिन्हों की टेक ॥१७॥

---

(१) एक चिड़िया जिसकी निस्बत कहा जाता है कि वह इतने ऊँचे आकाश में रहती है कि वहाँ जब अँडा देती है तो रास्ते में वायु मंडल की रगड़ से अंडा सेया जाता है और बच्चा पैदा होकर पृथ्वी पर पहुँचने के पहिले उसके पंख जम आते हैं और रास्ते ही से अपने माता पिता की संगत में लौट जाता है। (२) उघारिये।

॥ दीनता ॥

सुरग नरक बाँछे नहीं, मोच्छ बंध से दूर।
बड़ी गरीबी जगत में, संत चरन रज धूर॥

॥ बिचार ॥

ज्ञान बिचार बिबेक बिन, क्यों दम तोरै स्वास।
कहा होत हरि नाम सूँ, जो दिल ना बिस्वास॥ १॥
समझ बिचारे बोलना, समझ बिचारे चाल।
समझ बिचारे जागना, समझ बिचारे ख्याल॥ २॥
करै बिचारे समझ करि, खोज बूझ का खेल।
बिना मथे निकसै नहीं, है तिल अंदर तेल॥ ३॥
जैसे तिल में तेल है, यूँ काया मध राम।
कोल्हू में डारे बिना, तत्त नहीं सहकाम॥ ४॥
बिचार नाम है समझ का, समझ न परी परक्ख।
अकलमंद एकै घना, बिना अकल क्या लक्ख॥ ५॥
पुर पट्टन नगरी बसै, निरधारं आधार।
लख चौरासी पोषता, ऐसी जरना सार॥ ६॥
चौरासी भाँडे गढ़ै, खेलै खेल अपार।
खान पान सब देत है, ऐसा समरथ सार॥ ७॥

॥ काम ॥

चौरासी की चाल क्या, मो सेती सुत लेह।
चोरी जारी करत है, जाके मुखड़े खेह॥

॥ क्रोध ॥

काम क्रोध मद लोभ लट, छुटी रहै बिकराल।
क्रोध कसाई उर बसै, कुसब्द छुरा घर घाल॥

॥ तृष्णा ॥

आसा तृस्ना नदी में, डूबे तीनूँ लोक।
मनसा माया बिस्तरी, आतम आतम दोष॥

॥ मन ॥

जीवत मुकता सो कहो, आसा तृस्ना खंड।
मन के जीते जीत है, क्यूँ भरमे ब्रह्मंड॥

॥ निन्दा ॥

निंदा बिंदा छाड़ि दे, संतों सूँ कर प्रीत।
भौसागर तिर जात है, जीवत मुक्त अतीत॥ १॥
एक सत्रु इक मित्र है, भूल परी रे प्रान।
जम की नगरी जाहिगा, सब्द हमारा मान॥ २॥

॥ मिश्रित ॥

सुआ सतगुर कहत है, पिंजरे परे परान।
खिरकी खुलते उड़ गया, मंतर लगा न कान॥ १॥
सुअटा पढ़ै सुभान गत, अंतर नहीं उचार।
कुंज[1] कुरल[2] अंड पोखहीं, कोसन सहस हजार॥ २॥
ऐसी संगत जो मिलै, तौ साईं सूँ भेट।
ऊपरली बरबाद है, जम मारैगा फेट॥ ३॥
सती पुकारै सर[3] चढ़ी, मुख बोलत है राम।
कौतुक[4] देखन सो गये, जिन के मन सहकाम॥ ४॥
सती बहुर उपजै नहीं, घर जाने की प्रीत।
सती रटत है राम कूँ, कौतुक गावै गीत॥ ५॥
तपी तपै तन कूँ दहै, पाँचो इन्द्री साधि।
नहिं इच्छा दीदार की, भूले आदि अनादि॥ ६॥
लाख बज्र कूँ झेल करि, सूरे जूझैं खेत।
बादी जोगी हठ करैं, चिनगी बरखै रेत॥ ७॥
पुर पट्टन नगरी बसै, भेद न काहू देत।
कीड़ी कुंजर पोषता[5], अपना नाम न लेत॥ ८॥

——:०:——

(१) कुञ्जबन चिड़िया। (२) कोक चिड़िया। (३) सरा, चिता। (४) तमाशाई। (५) चींटी से हाथी तक का पालन करता है।

गुलाल साहिब

जीवन-समय --अट्ठारहवें शतक के पिछले भाग से उन्नीसवें शतक के अगले हिस्से तक। जन्म स्थान—तअल्लुका बसहरि जिला गाजीपुर। सतसंग स्थान—मौजा भुरकुड़ा जिला गाजीपुर। जाति और आश्रम—क्षत्री, गृहस्थ। गुरु—बुल्ला साहिब।

यह बसहरि के जमींदार थे वहीं पैदा हुए और वहीं चोला छोड़ा। भुरकुड़ा इसी तअल्लुके का एक गाँव है। [पूरा जीवन-चरित्र इनकी बानी के आदि में छपा है।]

सत्त सबद गुन गायेऊ, संतन प्रान-अधार।
अगम अगोचर दूरि है, कोऊ न पावत पार॥ १॥
उठ तरंग दसहूँ दिसा, भाँति भाँति के राग।
बिन पग नाच नचायेऊ, बिन रसना गुन गाय॥ २॥
ज्ञान ध्यान तहवाँ नहीं, सहज सरूप अपार।
जन गुलाल दिल सों मिलो, सोई कंत हमार॥ ३॥
बिन जल कँवला बिगसेऊ, बिना भँवर गुंजार।
नाभि कँवल जोती बरै, तिरबेनी उँजियार॥ ४॥
सुखमन सेज बिछायेऊ, पौढ़हिं प्रभु हमार।
सुरति निरति लेजायेऊ, दसो दिसा के द्वार॥ ५॥
पुलकि पुलकि मन लायेऊ, आवा गवन निवार।
जन गुलाल तहँ भायेऊ, जम का करहि हमार॥ ६॥
मन पवनहिं जीतो जबै, महसुन[1] माहिं समाध।
सुखमन जोति सँवारेऊ, बरि बरि होत प्रकास॥ ७॥
ओअंकार समाइलो, जोति सरूपी नाम।
सेत सुहावन जगमगर, जीव मिलल सतनाम॥ ८॥
जिन यह ब्रह्म बिचारल, सोई गुरू हमार।
जन गुलाल सत बोलही, झूठ फिरहि संसार॥ ९॥
दृष्टि पदारथ फरल सोइ, सहज के परलि धमार।
अति अद्भुत तहँ देखल, पुलकि पुलकि बलिहार॥ १०॥

---

(1) महासून्य।

बरतन बरनि न आवई, कोटि चंद छबि वार ।
दसौ दिसा पूरित सोई, संत सदा रखवार ॥११॥
जिन पावल तिन गावल, और सकल भ्रम डार ।
कहै गुलाल मनोरवा[1], पूरन आस हमार ॥१२॥
प्रेम कै परल हिंडोलवा, मानिक बरल लिलार ।
कहैं गुलाल मनोरवा, पुजवल आस हमार ॥१३॥
अनुभौ फाग मनोरवा, दहुँ दिसि परलि धमार[2] ।
काया नगर में रंग रच्यो, प्रान-नाथ बलिहार ॥१४॥
बिनु बाजे धुनि गाजई, अधरहिं अगम अपार ।
प्रान तबहिं उड़ि गवनेऊ, बहुरि नाहिं औतार ॥१५॥
प्रेम पगल मन शतल, आनँद मंगलचार ।
तीन लोक के ऊपरे, मिललेहिं कंत हमार ॥१६॥
जोग जग्य जप तप नहीं, दुख सुख नहिं संताप ।
घटत बढ़त नहिं छीजई, तहवाँ पुन्न न पाप ॥१७॥
संत सभा में बैठि के, आनँद उजल प्रकास ।
जन गुलाल पिय मिलसहो, पूजलि मन कै आस ॥१८॥
बंकनाल चढ़ि के गयो, आयो प्रभु दरबार ।
जगमग जोति जगन लगी, कोटि चंद छबि वार ॥१६॥
मुक्ता झरि बरखन लगो, दसो दिसा झनकार ।
जन गुलाल तन मन दियो, पूरी खेप हमार ॥२०॥
मानिक भवन उदित[2] तहाँ, भाँवर दै दै गाय ।
जन गुलाल हरखित भयो, कौतुक कह्यो न जाय ॥२१॥

---

(१) एक राग का नाम । (२) ऊंचा' उदय ।

भीखा साहिब

जीवन-समय अठ्ठारहवें शतक के अंत से उन्नीसवें शतक के मध्य तक। जन्म स्थान --मौजा खानपुर--बोहना जिला आजमगढ़। सतसंग स्थान—मौजा भुरकुड़ा जिला गाजीपुर। जाति और आश्रम—चौबे, गृहस्थ। गुरु—गुलाल साहिब।

उपदेश लेने के पीछे भीखा साहिब भुरकुड़ा से जहाँ उनके गुरु का स्थान था नहीं हटे और उनके चोला छोड़ने पर उन की गद्दी पर बैठे। अनुमान पचास बरस की अवस्था में चोला छोड़ा। [पूरा जीवन-चरित्र इनकी बानी के आदि में छपा है]

॥ गुरुदेव ॥

संत चरन में जाइ के, सीस चढ़ायो रेनु[1]।
भीखा रेनु के लागते, गगन बजायो बेनु ॥ १ ॥
बेनु बजायो मगन ह्वै, छुटी खलक की आस।
भीखा गुरु परताप तें, लियो चरन में बास ॥ २ ॥

॥ सुमिरन ॥

जोग जुक्ति अभ्यास करि, सोहं सबद समाय।
भीखा गुरु परताप तें, निज आतम दरसाय ॥ १ ॥
जाप जपै जो प्रीत सों, बहु बिधि रुचि उपजाय।
साँझ समय औ प्रात लगि, तत्त पदारथ पाय ॥ २ ॥
राम को नाम अनंत है, अंत न पावै कोय।
भीखा जस लघु बुद्धि है, नाम तवन[2] सुख होय ॥ ३ ॥
एकै धागा नाम का, सब घट मनिया माल।
फेरत कोई संत जन, सतगुरु नाम गुलाल ॥ ४ ॥

॥ भेष की रहनी ॥

काया कुंड बनाइ के, घूमि घोंटना[3] देइ।
बिजया[4] जीव मिलाइ के, निर्मल घोंटा[5] लेइ ॥ १ ॥
साफी[6] सहज सुभाव की, छानो सुरति लगाय।
नाम पियाला छकि रहै, अमल उतरि नहिं जाय ॥ २ ॥

---

(१) चरन की रज या धूल। (२) तैसा। (३) घुमाय के घोटै। (४) भाँग। (५) घूँट। (६) छन्ना।

जोग जुक्ति सुमिरन बनो, हर दम मनिया[1] नाम।
करम खंड कंठो गुहो, गर बाँधो प्रानायाम ॥ ३ ॥
अगम ज्ञान गूदर लियो, ढाँको सकल सरीर।
ब्रह्म जनेऊ मेखला, पहिरहिं मस्त फकीर ॥ ४ ॥
सेल्ही संसय नासि करि, डारो हृदय लगाय।
तिलक उनमुनी ध्यान धरि, निज सरूप दरसाय ॥ ५ ॥
ताखी[2] तत्त जो माल[3] है, राखो सीस चढ़ाय।
चरन कमल निरखत रहो, मौजै मौज समाय ॥ ६ ॥
तूमा[4] तन मन रूप है, चेतनि आब[5] भराय।
पीवत कोई संत जन, अमृत आगु छिपाय ॥ ७ ॥
कुबरी[6] धानी[7] अंग भो, पवन दृढ़ बरजोर।
लागी डोरी प्रेम की, तम मेटो भयो भोर ॥ ८ ॥
पौवा[8] अधर अधार को, चलत सो पाँव पिराय।
जो जावै सो गुरु कृपा, कोउ कोउ सीस गँवाय ॥ ९ ॥
मुरछल मन उनमान का, छाया ज्ञान अकार।
उस्न[9] ताप निसि दिन सहै, केवल नाम अधार ॥१०॥
अर्ध उर्ध के बीच में, कमर-बस्त[10] ठहराय।
इँगला पिंगला एक ह्वै, सुखमन के घर जाय ॥११॥
झोरी मौज अनयास[11] की, बटुआ आनँद[12] लेय।
मृगछाला त्रिकुटी भई, बैठि सबद चित देय ॥१२॥
सकल संत कै रेनु[13] लै, गोजा गोल बनाय।
प्रेम प्रीति घसि ताहि को, अंग बिभूति लगाय ॥१३॥
भिच्छा अनुभव अन्न लै, आतम भोग बिचार।
रहे सो रहनि अकासवत, बरजित जानि अहार ॥१४॥

---

(१) माला का दाना। (२) साधुओं की टोपी। (३) माला। (४) तुम्बा। (५) पानी। (६ छड़ो, बैरागिनी। (७) हाथ। (८) खड़ाऊँ। (९) गरमी। (१०) कमरबंद। (११) आसा से रहित। (१२) सुख। (१३) चरन रज।

जटा बढ़ावै भाव की, जब हरि कृपा अमान।
मुद्रा नावै नाम की, गुरु सबद सुनावै कान ॥१५॥
आड़बंद[1] हर हाल की, अलफी[2] रहनि अडोल।
बाघम्बर[3] है सुन्न का, अविगत करत कलोल ॥१६॥
पाँच पचीस धुइँ लगी, धीरज कुंड भराय।
ज्ञान अगिन ता में दियो, बिषय इन्हन[4] जरि जाय ॥१७॥
फाहुलि[5] अगम अचिंत की, चीपी[6] ध्यान लगाय।
नूर जहूर झलकत रहै, ता में मन अरुझाय ॥१८॥
भेख अलेख अपार है, कहत न ज्ञान समाय।
सुन्न निरंतर अलख है, खोज करै कोउ जाय ॥१९॥
साहिब सब घट रमि रह्यो, पूरन आपै आप।
भीखा जो नहिं जानही, सहै करम संताप ॥२०॥

॥ मिश्रित ॥

एक संप्रदा[7] सबद घट, एक द्वार सुख संच[8]।
इक आतम सब भेष[9] मां, दूजा जग परपंच ॥ १ ॥
भीखा भयो दिगम्बर[10], तजि कै जक्त बलाय।
कस्त[11] कर्‌यो निज रूप को, जहँ को तहाँ समाय ॥ २ ॥
भीखा केवल एक है, किरतिम भयो अनंत।
एकै आतम सकल घट, यह गति जानहिं संत ॥ ३ ॥
आरति हरि गुरु चरन की, कोइ जानै संत सुजान।
भीखा मन बच करमना, ताहि मिलै भगवान ॥ ४ ॥

———

(१) लँगोट। (२) बिना बँहोली का कुरता। (३) शेर के चमड़े का वस्त्र। (४) ईंधन। (५) फरुही। (६) नार का कटोरा। (७) मत। (८) समूह। (९) रूप। (१०) साधू जो नंगे रहते हैं। (११) इरादा।

पलटू साहिब

जीवन समय—उन्नीसवाँ शतक। जन्म स्थान मौजा नगपुर-जलालपुर ज़िला फैज़ाबाद। सतसंग स्थान—अयोध्या। जाति और आश्रम काँदू बनियाँ गृहस्थ। गुरू गोविन्द जी।

यह गहिरे भक्त अवध के नवाब शुजाउद्दौला और हिन्दुस्तान के बादशाह शाह आलम के समय में वर्त्तमान थे। इनके वंश के लोग अब तक इनके जन्म स्थान के गाँव में मौजूद हैं। [पूरा जीवन-चरित्र उनकी कुंडलिया के आदि में दिया है]

॥ गुरुदेव ॥

संत संत सब बड़े हैं, पलटू कोऊ न छोट।
आतम-दरसी मिहीं[1] है, और चाउर सब मोट॥ १॥
पलटू जो कोउ संत हैं, सब हमरे सिरताज।
सबंगों कोउ एक है, राखै सब की लाज॥ २॥
पलटू ऐना[2] संत हैं, सब देखैं तेहि माहिं।
टेढ़ सोझ मुँह आपना, ऐना टेढ़ा नाहिं॥ ३॥
वहि देवा को पूजिये, सब देवन कै देव।
पलटू चाहै भक्ति जो, सतगुरु अपना सेव॥ ४॥

॥ नाम ॥

जप तप तीरथ बर्त है, जोगी जोग अचार।
पलटू नाम भजे बिना, कोउ न उतरै पार॥ १॥
पलटू जप तप के किहे, सरै न एको काज।
भवसागर के तरन को, सतगुरु नाम जहाज॥ २॥
जरि बूटी के खोजते, गई सुध्याई[3] खोय।
पलटू पारस नाम का, मनै रसायन होय॥ ३॥

॥ चितावनी ॥

पलटू यहि संसार में, कोऊ नाहीं होत।
सोऊ बैरी होत है, जा को दीजै प्रात॥ १॥
पलटू नर तन पाइ कै, मूरख भजै न राम।
कोऊ ना सँग जायगा, सुत दारा धन धाम॥ २॥

(१) बारीक। (२) दर्पन। (३) शुद्धता।

बैद धनंतर मरि गया, पलटू अमर न कोय।
सुर नर मुनि जोगी जती, सबै काल बस होय ॥ ३ ॥
पलटू नर तन पाइ कै भजै नहीं करतार।
जमपुर बाँधे जाहुगे, कहौं पुकार पुकार ॥ ४ ॥
पलटू नर तन जातु है, सुंदर सुभग सरीर।
सेवा कीजै साध की, भजि लीजै रघुबीर ॥ ५ ॥
पलटू सिष्य जो कीजिये, लीजै बूझ बिचार।
बिन बूझे सिष करौगे, परिहै तुम पर भार ॥ ६ ॥
दिना चारि का जीवना, का तुम करौ गुमान।
पलटू मिलिहैं खाक में, घोड़ा बाज[1] निसान ॥ ७ ॥
पलटू हरि जस गाइ ले, यही तुम्हारे साथ।
बहता पानी जातु है, धोउ सिताबी[2] हाथ ॥ ८ ॥

॥ प्रेम ॥

राम नाम जेहि मुखन तें, पलटू होय प्रकास।
तिन के पद बंदन करौं, वो साहिब मैं दास ॥ १ ॥
तन मन धन जेहि राम पर, कै दीन्हों बकसीस[3]।
पलटू तिनके चरन पर, मैं अरपत हौं सीस ॥ २ ॥
राम नाम जेहि उच्चरै, तेहि मुख देहुँ कपूर।
पलटू तिनके नफ़र[4] की, पनहीं का मैं धूर ॥ ३ ॥
पलटू ऐसी प्रीति करु, ज्यों मजीठ को रंग।
टूक टूक कपड़ा उड़ै, रंग न छोड़ै संग ॥ ४ ॥
आठ पहर जो छकि रहै, मस्त अपाने हाल।
पलटू उनसे सब डरै वो साहिब के लाल ॥ ५ ॥
करम जनेऊ तोड़ि कै, भरम किया छयकार[5]।
जेहि गोबिंद[6] गोबिंद[7] मिले, थूक दिया संसार ॥ ६ ॥

---

(१) बाजा। (२) जल्द। (३) यहाँ "भेंट" का अर्थ है। (४) सेवक। (५) नाश।
(६) पलटू साहिब के गुरू का नाम। (७) ईश्वर।

पलटू सीताराम सों, हम तो किहे हैं प्रीति ।
देखि देखि सब जरत हैं, कौन जक्त की रीति ॥ ७ ॥
पलटू बाजी लाइहौं दोऊ बिधि से राम ।
जो मैं हारौं राम को, जो जीतौं तौ राम[1] ॥ ८ ॥
पलटू हम से राम से, ऐसो भा ब्यौहार ।
कोउ कितनौ चुगली करै, सुनै न बात हमार ॥ ९ ॥
पलटू जस मैं राम का, वैसे राम हमार ।
जा की जैसी भावना, ता सों तस ब्यौहार ॥१०॥

॥ बिश्वास ॥

मनसा बाचा कर्मना, जिन को है बिस्वास ।
पलटू हरि पर रहत हैं, तिन्ह के पलटू दास ॥ १ ॥
पलटू संसय छूटि गे, मिलिया पूरा यार ।
मगन आपने ख्याल में, भाड़ पड़ै संसार ॥ २ ॥
ज्यों ज्यों रूठै जगत सब, मोर होग कल्यान ।
पलटू बार न बाँकिहै, जो सिर पर भगवान ॥ ३ ॥
संत बचन जुग जुग अचल, जो आवै बिस्वास ।
बिस्वास भये पर ना मिलै, तौ झूठा पलटूदास ॥ ४ ॥
पलटू संत के बचन को, ख्याल करै ना कोइ ।
टुक मन में निस्चै करै, होइ होइ पै होइ ॥ ५ ॥

॥ सूरमा ॥

धुजा फरक्कै सुन्य में, अनहद गड़ा निसान ।
पलटू जूझा खेत पर, लगा जिकर का बान ॥ १ ॥
लगा जिकर का बान है, फिकर भई छयकार ।
पुरजे पुरजे उड़ि गया, पलटू जीति हमार ॥ २ ॥
नौबत बाजै ज्ञान की, सुन्य धुजा फहराय ।
गगन निसाना मारि के, पलटू जीतै जाय ॥ ३ ॥

---

(१) जो हारूँ तो मैं राम का हुआ और जो जीतूँ तो राम मेरे हुए ।

बखतर पहिरे प्रेम का, घोड़ा है गुरुज्ञान।
पलटू सुरति कमान लै, जीति चले मैदान ॥ ४ ॥
दसो दिसा मुरचा किहा, बाती दिहा लगाय।
काया गढ़ में पैसि कै, पलटू लिहा छुड़ाय ॥ ५ ॥
पलटू कफनी बाँधि कै, खींचो सुरति कमान।
संत चढ़े मैदान पर, तरकस बाँधे ज्ञान ॥ ६ ॥

॥ बिनय ॥

तुम तजि दीना-नाथ जी, करै कौन की आस।
पलटू जो दूसर करै, तो होइ दास की हाँस ॥ १ ॥
ना मैं किया न करि सकौं, साहिब करता मोर।
करत करावत आपु है, पलटू पलटू सोर ॥ २ ॥
पलटू तेरी साहिबी, जीव न पावै दुक्ख।
अदले होय बैकुंठ में, सब कोइ पावै सुक्ख ॥ ३ ॥

॥ भक्त जन ॥

जैसे काठ में अगिन है, फूल में है ज्यों बास।
हरि जन में हरि रहत है, ऐसे पलटूदास ॥ १ ॥
मिंहदी में लाली रहै, दूध माहिं घिव होय।
पलटू तैसे संत हैं, हरि बिन रहैं न कोय ॥ २ ॥
छोड़ै जग की आस को, काम क्रोध मिटि जाय।
पलटू ऐसे दास को, देखत लोग डेराय ॥ ३ ॥
अस्तुति निन्दा कोउ करै, लगै न तेहि के साथ।
पलटू ऐसे दास के, सब कोइ नावै माथ ॥ ४ ॥
आठ पहर लागो रहै, भजन तेल की धार।
पलटू ऐसे दास को, कोउ न पावै पार ॥ ५ ॥
सरबरि[1] कबहुँ न कीजिये, सब से रहिये हार।
पलटू ऐसे दास को, डेरिये बारम्बार ॥ ६ ॥

(१) बराबरी।

दुष्ट मित्र सब एक[1] है, ज्यों कंचन त्यों काँच।
पलटू ऐसे दास को, सुपनं लगै न आँच ॥ ७ ॥
ना जीने की खुशी है, पलटू मुए न सोच।
ना काहू से दुष्टता, ना काहू से रोच ॥ ८ ॥
काम क्रोध जिनके नहीं, लगै न भूख पियास।
पलटू उनके दरस सों, होत पाप को नास ॥ ९ ॥

॥ साध ॥

खोजत खोजत मरि गये, तीरथ बेद पुरान।
पलटू सूझत है नहीं, भेष में है भगवान ॥ १ ॥
साध परखिये रहनि में, चोर परखिये रात।
पलटू सोना कसे में, झूठ परखिये बात ॥ २ ॥
बृच्छा बड़ परस्वारथी, फरै और के काज।
भवसागर के तरन को, पलटू संत जहाज ॥ ३ ॥
साध हमारी आतमा, हम साधन के दास।
पलटू जो दोइति[2] करै, होय नरक में बास ॥ ४ ॥
पलटू तीरथ को चला, बीचे मिलिगे संत।
एक मुक्ति के खोजते, मिलि गइ मुक्ति अनंत ॥ ५ ॥
पलटू तीरथ के गये, बड़ा होत अपराध।
तीरथ में फल एक है, दरस देत हैं साध ॥ ६ ॥
जिन देखा सो बावला, को अब कहै सँदेस।
दीन दुनी दोउ भूलिया, पलटू सो दुरवेस ॥ ७ ॥
तड़पै बिजुली गगन में, कलस[3] जात है फूटि।
पलटू संत के नाँव से, पाप जात है छूटि ॥ ८ ॥
की तो हरि चरचा महैं, की तौ रहै इकंत।
ऐसी रहनी जो रहै, पलटू सोई संत ॥ ९ ॥

(१) समान। (२) दुभाँता। (३) घड़ा।

॥ पाखंडी ॥

पलटू निकसे त्यागि कै, फिरि माया को ठाट।
धोबी को गदहा भयो, ना घर को ना घाट॥ १॥
पलटू मन मूआ नहीं, चले जगत को त्याग।
ऊपर धोये का भया, जो भीतर रहिगा दाग॥ २॥
घर छोड़ै बैराग में, फिरि घर छावै जाय।
पलटू आइ के सरन में, तनिकौ नाहिं लजाय॥ ३॥
भेष बनावै भक्त का, नाहि राम से नेह।
पलटू पर-धन हरन को, बिस्वा[1] बेचै देह॥ ४॥
पलटू जटा रखाय सिर, तन में लाये राख।
कहत फिरैं हम जोगी, लरिका दाबे काँख॥ ५॥
मन मुरीद होवै नहीं, आपु कहावै पीर।
हवा हिर्स पलटू लगी, नाहक भये फकीर॥ ६॥

॥ सतसंग ॥

संगति ऐसी कीजिये, जहवाँ उपजै ज्ञान।
पलटू तहाँ न बैठिये, घर की होय जियान[2]॥ १॥
सतसंगति में जाइ कै, मन को कीजै सुद्ध।
पलटू उहाँ न जाइये, जहवाँ उपजि कुबुद्ध॥ २॥

॥ उपदेश ॥

पलटू गुनना छोड़ि दे, चहै जो आतम सुक्ख।
संसय सोइ संसार है, जरा मरन को दुक्ख॥ १॥
पलटू सीताराम से, लगी रहै वह रट्ट।
तनिक न पलक बिसारिये, चित्त परै की पट्ट॥ २॥
पलटू पलटू क्या करै, मन को डारै धोय।
काम क्रोध को मारि कै, सोई पलटू होय॥ ३॥

(१) वेश्या, पतुरिया। (२) हानि।

सुनि लो पलटू भेद यह, हँसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख में नरक निदान ॥ ४ ॥
पलटू जननी से कहै, यही हमारी सीख।
सकठा पुत्र न राखिये, जनमत दीजै बीख[1] ॥ ५ ॥
पलटू संत जो कहि गये, सोई बात है ठीक।
बचन संत के नहिं टरै, ज्यों गाड़ी की लीक ॥ ६ ॥
मन से माया त्यागि दे, चरनन लागी आय।
पलटू चेरी संत की, अंत कहाँ को जाय ॥ ७ ॥
पंडित ज्ञानी चातुरा, इनसे खेलौ दूरि।
एक साच हिरदे बसै, पलटू मिलै जरूर ॥ ८ ॥
मरते मरते सब मरे, मरै न जाना कोय।
पलटू जो जियते मरै, सहज परायन[2] होय ॥ ९ ॥
सब से नीचा होइ रहु, तजि बिवाद को तीर।
पलटू ऐसे दास का, कोऊ न दामन-गीर[3] ॥१०॥
पलटू का घर अगम है, कोऊ न पावै पार।
जेकरे बड़ी पियास है, सिर को धरै उतार ॥११॥
बिन खोजे से ना मिलै, लाख करै जो कोय।
पलटू दूध से दही भा, मथिबे से घिव होय ॥१२॥
पलटू पलक न भूलिये, इतना काम जरूर।
खामिंद कब गोहरावही, चाकर रहे हजूर ॥१३॥
आठ पहर चौंसठ घरी, पलटू परै न भोर[4]।
का जानी केहि औसरै, साहिब ताकै मोर ॥१४॥
पलटू सीताराम से, साची करिये प्रीति।
अपनी ओर निबाहिये, हारि परै की जीति ॥१५॥

(१) बिष, जहर। (२) पार। (३) पल्ला पकड़ने वाला। (४) भूल।

गारी आई एक से, पलटे भई अनेक।
जो पलटू पलटै नहीं, रहै एक की एक ॥१६॥

जल पषान के पूजते, सरा न एकौ काम।
पलटू तन करु देहरा, मन करु सालिगराम ॥१७॥

पलटू नेरे साच के, झूठे से है दूर।
दिल में आवै साच जो, साहिब हाल हजूर ॥१८॥

पलटू यह साची कहै, अपने मन को फेर।
तुझै पराई क्या परी, अपनी ओर निबेर ॥१९॥

पलटू चिन्ता लागि है, जनम गँवाये रोय।
जौं लगि छूटै फिकिर ना, गई फकीरी खोय ॥२०॥

राम मिताई ना चलै, और मित्र जो होइ।
पलटू सरबस दीजिये, मित्र न कीजै कोइ ॥२१॥

पलटू आगे मरि रहौ, आखिर मरना मूल।
राम किस्न परसराम ने, मरना किया कबूल ॥२२॥

ज्ञान देय मूरख कहै, पलटू करै बिबाद।
बाँदर को आदी दिया, कछु ना कहै सवाद ॥२३॥

सीस नवावै संत को, सीस बखानौ सोइ।
पलटू जो सिर ना नवै, बिहतर कद्दू होइ ॥२४॥

॥ मान ॥

बड़े बड़ाई में भुले, छोटे हैं सरदार।
पलटू मीठो कूप जल, समुँद पड़ा है खार ॥ १ ॥

सब से बड़ा समुद्र है, पानी हैगा खारि।
पलटू खारो जानि कै, लीन्हीं रतन निकारि ॥ २ ॥

पलटू यह मन अधम है, चोरों से बड़ चोर।
गुन तजि ऐगुन गहतु है, तातें बड़ा कठोर ॥ ३ ॥

कहत कहत हम मरि गये, पलटू बारम्बार।
जग मूरख मानै नहीं, पड़ै आप से भाड़॥ ४॥

॥ कपट ॥

पलटू मैं रोवन लगा, जरी जगत की रीति।
जहँ देखो तहँ कपट है, का सों कीजै प्रीति॥ १॥
मुँह मीठो भीतर कपट, तहाँ न मेरो बास।
काहू से दिल ना मिलै, तौ पलटू फिरै उदास॥ २॥
पलटू पाँव न दीजिये, खोटा यह संसार।
हीताई करि मिलत है, पेट महैं तरवार॥ ३॥
पलटू भेद न दीजिये, यह जग बुरी बलाय।
लिहे कतरनी काँख में, करै मित्रता धाय॥ ४॥
साहिब के दरबार में, क्या झूठे का काम।
पलटू दोनों ना मिलैं, कामी और अकाम॥ ५॥
हिरदे में तो कुटिल है, बोलै बचन रसाल।
पलटू वह केहि काम का, ज्यों नारुन फल लाल॥ ६॥
पलटू छूरी कपट की, बोलै मीठी बोल।
की टूटै की फाटही, कहिये परदा खोल॥ ७॥

॥ कामिनी ॥

मुए सिंह की खाल को, हस्ती देखि डेराय।
असिउ[1] बरस की बूढ़ि को, पलटू ना पतियाय॥ १॥
असिउ बरस की नारि को, पलटू ना पतियाय।
जियत निकोवै[2] तत्तु को, मुए नरक लै जाय॥ २॥
खरबूजा संसार है, नारी छूरी पैन।
पलटू पंजा सेर का, यों नारी का नैन॥ ३॥
माया ठगिनी जग ठगा, इकहैं[3] ठगा न कोय।
पलटू इकहैं सो ठगै, (जो) साचा भक्ता होय॥ ४॥

(१) अस्सीहू। (२) निचोड़ ले। (३) उसको।

॥ ब्राह्मन ॥

सकठा बाम्हन मछखवा, ताहि न दीजै दान।
इक कुल खोवै आपनो, (दूजे) संग लिये जजमान ॥ १ ॥
सकठा बाम्हन ना तरै, भक्ता तरै चमार।
राम भक्ति आवै नहीं, पलटू गये खुवार ॥ २ ॥

॥ महंत ॥

पलटू कीन्हो दंडवत, वै बोले कछु नाहिं।
भगत जो बनै महंथ से, नरक परै को जाहि ॥ १ ॥
पलटू माया पाइ कै, फूलि के भये महंथ।
मान बड़ाई में मुए, भूलि गये सत पंथ ॥ २ ॥
गोड़ धरावैं संत से, माया के महमंत।
पलटू बिना बिबेक के, नरकै गये महंत ॥ ३ ॥

॥ मिश्रित ॥

हिन्दू पूजै देवखरा, मुसलमान महजीद।
पलटू पूजै बोलता, जो खाय दीद बरदीद ॥ १ ॥
पलटू अपने भेद से, कारन पैदा होय।
जरि कै वन हैगे भसम, आगि न लावै कोय ॥ २ ॥
चारि बरन को मेटि कै, भक्ति चलाया मूल।
गुरु गोबिंद के बाग में, पलटू फूला फूल ॥ ३ ॥
हद अनहद दोऊ गये, निरभय पद है गाढ़।
निरभय पद के बीच में, पलटू देखा ठाढ़ ॥ ४ ॥
सुख में सेवा गुरु की, करते हैं सब कोय।
पलटू सेवै बिपति में, गुरु-भगता है सोय ॥ ५ ॥
पलटू मैं रोवन लगा, देखि जगत की रीति।
नजर छिपावै संत से, बिस्वा से है प्रीति ॥ ६ ॥
कमर बाँधि खोजन चले, पलटू फिरेऊ देस।
षट दरसन सब पचि मुए, कोऊ न कहा सँदेस ॥ ७ ॥

पलटू तेरे हाथ की, करीं परी कमान।
जो खींचै सो गिरि परै, जोधा भीम समान ॥ ८ ॥
सिष्य सिष्य सबही कहै, सिष्य भया न कोय।
पलटू गुरु की बस्तु को, सीखै सिष तब होय ॥ ६ ॥
ज्ञान ध्यान जानै नहीं, करते सिष्य बुलाय।
पलटू सिष्य चमार सम, गुरुवा मेस्तर[१] आय ॥१०॥
पलटू हरि के कारने, हम तो भये फकीर।
हरि सों पंजा लाय फिर, तीनों लोक जगीर ॥११॥
पलटू लेखे जक्त के, जोगिया गया खराब।
जोगिया जानै जग गया, दोनों देत जवाब ॥१२॥
इन्द्रि जीति कारज करै, जगत सराहै भोग।
जैसे वर्षा सिखर पर, नहीं भींजबे जोग ॥१३॥
पलटू सब की एक मति, को अब करै बिचार।
सूधे मारग मैं चलौं, हँसै सकल संसार ॥१४॥
पोथी कहते पंडिता, सबद कहत है भाट।
पलटू रहनी जो रहै, ता का पूरा ठाट ॥१५॥
पलटू सोई पीर है, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर ॥१६॥
चलते चलते पग थका, एको लगा न हाथ।
पलटू खोजै पुरुब, घर में है जगनाथ[२] ॥१७॥
पलटू नाहक भूँकता, जोगी देखे स्वान।
जक्त भक्त सों बैर है, चारो जुग परमान ॥१८॥
राम नाम के लिहे से, पलटू परा गँभीर।
हाथ जोरि आगे मिलै, लै लै भेंट अमीर ॥१६॥

---

(१) भङ्गी । (२) जगन्नाथ, त्रिलोकी-नाथ ।

लोक लाज छूटै नहीं, पलटू चाहै राम।
खोजत हीरा को फिरै, नहीं पोत का दाम ॥२०॥
पलटू सतगुरु सबद का, तनिक न करै बिचार।
नाव मिली खेवट नहीं, कैसे उतरै पार ॥२१॥
पलटू भजै न राम को, मूरख नर तन पाय।
देखो जिय की खोय[1] को, फिरि फिरि गोता खाय ॥२२॥
पलटू संपति सूम की, खरचै ना इक बुन्द।
सब कोउ पीवै कूप जल, खारी पड़ा समुन्द ॥२३॥
पलटू मो को देखि कै, लोगन को भा रोग।
मैं अपने रँग बावरी, जरि जरि मरते लोग ॥२४॥
सतगुरु बपुरा क्या करै, चेला करै न होस।
पलटू भींजै मोम नहिं, जल को दीजै दोस ॥२५॥
जानि बूझि कूआँ परै, पलटू चलै न देख।
मन माया में मिलि गया, मारा गया बिबेक ॥२६॥
पलटू उन्हें सराहिये, जिन की निरमल बुद्ध।
जोरी जारी एक नहिं, बानी कहते सुद्ध ॥२७॥
पलटू पावै खसम जो, रहै संत की खेढ़[2]।
नाचन को ढँग नाहिं है, कहती आँगन टेढ़ ॥२८॥

तुलसी साहिब

जीवन-समय—१८२० से १९०० तक। जन्म स्थान—पूना (बंबई प्रांत)। सतसंग स्थान—जोगिया गाँव (शहर हाथरस) जाति और आश्रम—दक्षिणी ब्राह्मण, भेष।

यह राजा पूना के युवराज थे जो राज-गद्दी पर बिठलाये जाने के डर से देश छोड़ कर भाग गये। इनका पता न चलने पर राजा इनके छोटे भाई बाजीराव को गद्दी देकर आप अलग हो गये। तुलसी साहिब बहुत काल तक देशाटन करते और जीवों को चिताते हुए हाथरस में आन बिराजे और वहीं अंत समय तक रह कर चोला त्याग किया। इनके

(१) आदत, बान। (२) समूह।

जीवन-चरित्र में एक अनूठी बात इनकी आप लिखी हुई यह है कि पूर्व जन्म में गुसाइँ तुलसीदास के चोले में आप ही थे और तब ही घट-रामायण को रचा परंतु चारों ओर से पंडितों, भेषों और सर्व मत वालों का भारी बिरोध देख कर उस ग्रन्थ को गुप्त कर दिया, दूसरी सर्गुण रामायण उसकी जगह समयानुसार बना दी, और घट रामायण को साढ़े तीन सौ बरस पीछे दूसरा चोला धारण करने पर प्रगट किया। इनके अनुपम ग्रन्थ घट रामायण के सिवाय रत्न-सागर, शब्दावली और पद्म सागर का अधूरा ग्रन्थ हैं जो सब बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग में पूरे जीवन चरित्र सहित छपे हैं।

॥ गुरुदेव ॥

तन मन से साचा रहै, गहै जो सतगुरु बाँहि।
काल कधी रोकै नहीं, देवै राह बताइ ॥ १ ॥
संतन की महिमा सभी, कहते माहिं लजाय।
चरन आस सब कोइ करै, भाग्न से मिलि जाय ॥ २ ॥
यह अथाह के थाह को, कोटिन करै उपाव।
सतसँग बिन जानै नहीं, दया दीन धरभाव ॥ ३ ॥
मरत जीव जो चरन से, सहज चलत के माहिं।
जो खुँदाय कुँचि के मरै, छूवत नर तन पाय ॥ ४ ॥
संत चरन परताप से, खानि राह रुकि जाय।
नर तन में सतगुरु मिलैं, मेटैं सकल सुभाय ॥ ५ ॥
अंदर की आँखी नहीं, बाहर की गइ फूटि।
बिन सतगुरु औघट बहै, कभी न बंधन छूटि ॥ ६ ॥
अबिनासी आतम कह्यो, रह्यो करम के बंद।
उलटि न चीन्हा आदि को, बिन सतगुरु की संध ॥ ७ ॥
सतगुरु संत दयाल बिन, सब जिव काल चबाय।
बाँधि करम के बस रखै, सकै न सूरति पाय ॥ ८ ॥
नर तन दुरलभ ना मिलै, खिलै कँवल रस माहिं।
खाय अमर फल अगम के, जो सतगुरु सरनाय ॥ ९ ॥
बड़े बड़ाई पाय कर, रोम रोम हंकार।
सतगुरु के परचे बिना, चारो बरन चमार ॥ १० ॥

सतगुरु संत दयाल से, करम रेख मिटि जाय।
मन तन सूरति साच से, ज्यों का त्यों रहि जाय ॥११॥

॥ सुरत-शब्द योग ॥

सुरति-सबद के भेद बिन, होय न पूरन काम।
चमर चाम की दृष्टि में, तन तत तिमिर[1] समान ॥ १ ॥
करतब तौ सब ने किया, जस जस जिन को भेद।
कर्म खेद छूटी नहीं, सूरति-सबद उमेद ॥ २ ॥
जो उपाय छल से करै, मिलै न उनका भेद।
फेर जुगन जुग में सहै, उन गति अगम अभेद ॥ ३ ॥

॥ चितावनी ॥

अरब खरब लौं दरब है, उदय अस्त लौं राज।
तुलसी जो निज मरन है, तौ आवै केहि काज ॥ १ ॥
दिना चार का खेल है, झूँठा जक्त पसार।
जिन बिचार पति ना लखा, बूड़े भौजल धार ॥ २ ॥
ज्यों माखी पर पाँव से, सहद माहिं लिपटाय।
ऐसे ही जग-जीव जड़, झारि बिषै रस खाय ॥ ३ ॥

॥ बिरह ॥

आठ पहर रोवत रही, भरि भरि अँखियाँ नीर।
पीर पिया परदेस की, जा से भँवर अधीर ॥ १ ॥
चार पाँच परपंच में, कस कस रहन हमार।
चार चुगल चुगली करैं, रहुँ बिचैन मन मार ॥ २ ॥

॥ प्रेम ॥

तुलसी ऐसी प्रीत कर, जैसे चन्द चकोर।
चोंच झुकी गरदन लगी, चितवत वाही ओर ॥ १ ॥
उत्तम औ चंडाल घर, जहँ दीपक उजियार।
तुलसी मते पतंग के, सभी जोत इकसार ॥ २ ॥

---

(१) अंधकार।

तुलसी कँवलन जल बसै, रवि ससि बसै अकास।
जो जा के मन में बसै, सो ताही के पास ॥ ३ ॥
मकरी उतरै तार से, पुनि गहि चढ़त जो तार।
जा का जा से मन रम्यो, पहुँचत लगै न बार ॥ ४ ॥
अज्ञाकारी पीव की, रहै पिया के संग।
तन मन से सेवा करै, और न दूजा रंग ॥ ५ ॥
पति को ओर निहारिये, औरन से क्या काम।
सभी देवता छोड़ कर, जपिये गुरु का नाम ॥ ६ ॥
बाक[1] ज्ञान में निपुन है, अंदर का नहि भेद।
उग्र[2] ज्ञान बिन भक्ति के, जुग जुग पावै खेद ॥ ७ ॥
भक्ति भाव बूझे बिना, ज्ञान उदै नहिं होय।
बिना ज्ञान अज्ञान को, काढ़ सकै नहिं कोय ॥ ८ ॥

॥ संत और साध ॥

सिंधु अथाह न थाह कहिं, मिलै न वा का अंत।
भटक भटक भव पच मरै, को गति पावै संत ॥ १ ॥
संतन से माँगै नहीं, घट घट जाननहार।
जीव दया हिरदे बसै, नाहक करत विचार ॥ २ ॥
पारबती या भूमि का, क्या कहुँ बरनन भाग।
दस हजार के बाद यह, संत रहै यहि जाग[3] ॥ ३ ॥
सुनु हिरदे[4] कहुँ संत की, महिमा अगम अपार।
कर प्रनाम वहि भूमि को, संकर बारम्बार ॥ ४ ॥
संत चरन अति बहुत बड़, जानत चतुर सुजान।
जो संतन हित ना करै सो नर पसू समान ॥ ५ ॥
संत चरन कारज सरै, हरै सकल विष ब्याधि।
साध सुरति चरनन रहै, टारै सकल उपाधि ॥ ६ ॥

---

(१) बाच या जुबानी। (२) तीव्र, प्रचण्ड। (३) जगह। (४) नाम एक मुख्य शिष्य का।

जो सनमुख रहै संत के, अंत कहूँ नहिं जाय।
सुरति डोरी लौ लगै, जहँ को तहाँ समाय॥ ७॥
सत सरन जो जिव रहै, गहै जो उनकी बाँह।
थाह बतावैं समुँद की, बल्ली भवजल माहिं॥ ८॥
संत मता दुरलभ कहैं, सतसँग में गोहराय।
बड़े बड़े हारे सभी, संतन की गति गाय॥ ९॥
उपदेसी वहि देस के, भेष भवन के पार।
सार समझ सुलटी कहैं, जग करि उलटि बिचार॥१०॥

॥ भक्तजन ॥

सूरज बसै अकास में, किरन भूमि पर बास।
जो अकास उलटै चढ़ै, सो सतगुरु का दास॥ १॥
अललपच्छ[1] का अंड ज्यों, उलटि चलै अस्मान।
त्यों सूरति सत सजन की, आठ पहर गुरु ध्यान॥ २॥
कोई तो तन मन दुखी, कोई चित्त उदास।
एक एक दुख सभन को, सुखी संत का दास॥ ३॥

॥ सतसंग महिमा ॥

संतन की साखी सभी, देत जुगन जुग ज्ञान।
सतसँग करके बूझ ले, करत सभी परमान॥ १॥
जल मिसरी कोइ ना कहै, सर्बत नाम कहाय।
यों घुल के सतसँग करै, काहे भरम समाय॥ २॥
बिष रँग के सँग में पगे, किया न मन को तंग।
संग मिलै मधुमालती, जब निकसै कुछ रंग॥ ३॥

॥ परिचय ॥

जगमग अंदर में हिया, दिया न बाती तेल।
परम प्रकासिक पुरुष का, कहा बताऊँ खेल॥ १॥

(१) अललपच्छ या सारदूल जो आकाश में इतने ऊँचे पर अंडा देता है कि पृथ्वी पर पहुँचने के पहिले अंडा फूट कर बच्चा उड़ जाता है।

घट अकास के मद्ध में, पंछी परम प्रकास।
समुँद सिखर सूरत चढ़ी, पावै तुलसीदास ॥ २ ॥
लख प्रकास पद तेज को, सेज गवन गति गाय।
पाइ पदम सूरत चली, पिया भवन के माँय ॥ ३ ॥
अली अकास सुरत चली, गली गगन के माँय।
धाय धमक ऊपर चढ़ी, खड़ी महल मुसकाय ॥ ४ ॥
आतम तेज अकास में, बास भवन दस माँय।
मन मारग सूरत अली, अंदर ऐन समाय ॥ ५ ॥
पदम पार पद लखि पड़ा, जानत संत सुजान।
तुलसिदास गति अगम की, सुरत लगी असमान ॥ ६ ॥
सुरत सिखर अंदर खड़ी, चढ़ी जो दीपक बार।
आतम रूप अकास का, देखै बिमल बहार ॥ ७ ॥

॥ उपदेश ॥

तुलसी या संसार में, पाँच रतन हैं सार।
साध संग सतगुरु सरन, दया दीन उपकार ॥ १ ॥
जैसो तैसो पातकी, आवै गुरु की ओट।
गाँठी बाँधै संत से, ना परखैं खर खोट ॥ २ ॥
सोना काई नहिं लगै, लोहा घुन नहिं खाय।
बुरा भला जो गुरु-भगत, कबहूँ नरक न जाय ॥ ३ ॥
दर दरबारी साध हैं, उन से सब कुछ होय।
तुरत मिलावैं नाम से, उन्हैं मिलै जो कोय ॥ ४ ॥
काम क्रोध मद लोभ की, जब लग मन में खान।
तुलसी पंडित मूरखा, दोनों एक समान ॥ ५ ॥
पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम ॥ ६ ॥

चार[1] अठारह[1] नौ पढ़े, षट[1] पढ़ि खोया मूल ।
सुरत सबद चीन्हे बिना, ज्यों पंछी चंडूल ॥ ७ ॥
तुलसी मैं तू जो तजै, भजै दीन-गति होय ।
गुरु नवै जो सिष्य को, साध कहावै सोय ॥ ८ ॥
गुरु बतावैं पुरब को, चेला पच्छिम जाय ।
अंदर टाटी कपट की, मिलै जो क्योंकर आय ॥ ९ ॥
सुरत डोरि सतगुरु गहै, रहै चरन के माहिं ।
सुन्न सुरत मिल सबदही, डोरिहि डोरि समाय ॥१०॥
सहज भाव से जो कछू, आवै अमृत भाव ।
यह सुभाव भीतर बसै, जब कुछ चलै न दाँव ॥११॥
खाय पियै उतना रखै, बाकी रखै न पास ।
और आस ब्यापै नहीं, सतगुरु का बिस्वास ॥१२॥
गृहस्थी है हिरदे दया, भूखे कछू खिलाय ।
बाक सनातन यों कहे, सभी सभी गोहराय ॥१३॥
रस इंद्री गुन स्वाद से, बंधन भया अजान ।
जान भुलानो आदि को, बादे जनम सिरान[2] ॥१४॥
स्वर्ग छाड़ि सब देव यह, नर तन माँगत झार ।
यहि बिचार मन में करै, तब पावै निरधार ॥१५॥

॥ भेद ॥

छर छत्तीसो भवन में, अच्छर ब्रह्म समान ।
स्रवन नैन मुख नासिका, इंद्री पाँच प्रमान ॥ १ ॥
छर अच्छर से भिन्न है, निःअच्छर निःनाम ।
धाम लोक चौथे बसै, जानत संत सुजान ॥ २ ॥
सुन्न अकास के भास में, स्वासा निकसत पौन ।
बंकनाल के बीच में, इंगल पिंगल पर जौन ॥ ३ ॥

(१) चार वेद, अठारह पुरान और छः शास्त्र । (२) बीता ।

सुई अग्र वह द्वार है, सुखमनि घाट कहाय।
धाइ धाइ स्वासा चढ़ै, जो जो जोग लखाय॥ ४॥
संत समुँद घर अगम को, ज्ञान जोग नहिं ध्यान।
ये तीनों पहुँचै नहीं, जा की करत बखान॥ ५॥
ज्ञान ब्रह्म आतम कहे, मन जड़ चेतन गाँठ।
तन इंद्री सुख बंध में, बहत गुनन की बाट॥ ६॥
आतम अगम अकास में, नैन निरखि मन बास।
फाँस फँसानी गुनन में, या को कहत अकास॥ ७॥
ध्यान धरत जोगी मुए, प्रानायाम अधार।
संत सिखर के पार की, भाखत अगम अपार॥ ८॥
परथम नर तत पाँच में, पिंडज में तत चार।
तीन तत्त अंडज रहै, उष्मज दो बिस्तार॥ ९॥

॥ करनी और पिछले कर्म ॥

उजला आया वतन[1] से, जतन किया करि काल।
चाल भुलानी आपनी, यों भये बंधन जाल॥ १॥
लाख बात करके कहे, नहिं मानै गुरु बैन।
चैन कहो कहँ से मिलै, समझै न सतसँग कहन॥ २॥
इन्द्री सुख रस रीति में, बिलसत जनम सिराय।
कहा कहूँ अज्ञान को, नेक न मन सरमाय॥ ३॥
अब समझे से का भयो, चिड़िया चुग गइ खेत।
चेत किया नहिं आप में, रहे कुटुम्ब के हेत॥ ४॥
नर देही तत हीन से, पिंडज माहें पसार।
सार भुलानो आपनो, खानइ खानि खुवार[2]॥ ५॥
ज्ञान ध्यान जोगी जती, नहिं कोइ पावै भेद।
खेद कर्म सुभ असुभ के, फल करनी कहे बेद॥ ६॥

(१) घर। (२) खराब।

की अपनी करनी करै, की गुरु सरन उबार।
दोनों में कोइ एक नहिं, नाहक फिरत लबार ॥ ७ ॥
कर्म करै बरियार से, तत्त छीन होइ जाय।
तत्त घटे घटि खानि में, दुख सुख माहिं बिलाय ॥ ८ ॥
नर तन तो पावै नहीं, पसु पछिन में जाय।
अस्थावर उष्मज रहै, नर तन बाद गँवाय ॥ ९ ॥
हिरदे[1] करम कराय के, देत पलीता बारि।
अंदर आगि लगाय ज्यों, दगन करे तन झारि ॥१०॥
जुगन जुगन बंधन पड़ै, कर्म काल के द्वार।
नर्क स्वर्ग की सुधि नहीं, दुख सुख बारम्बार ॥११॥
कर्म सारनी[2] बुधि बसी, सुरत रही अधीन।
आसा के बस में पड़ी, बासा बिपति मलीन ॥१२॥
कर्म आस की बास में, जोनी जोनि समाय।
जो जैसी करनी करै, सो तैसे फल खाय ॥१३॥

॥ मन ॥

मन तरंग तन में चलै, आठो पहर उपाव।
थाह कधी पावै नहीं, छिन छिन छल परभाव ॥ १ ॥
घटी बढ़ी कुछ नजर में, आय न ज्ञान बिचार।
जब तरंग उसकी उठै, ज्यों सलिता[3] धधकार ॥ २ ॥
पाँच पचीसो तीन मिलि, इच्छा कीन्ह प्रचंड।
मार मार सब कोउ करै, ज्यों दुखिया पर डंड ॥ ३ ॥
बान बिचारै जुद्ध को, मन मनसा रनभुम्म।
सबद सिरोही[4] गुरुन की, ले फोड़ै घट कुंभ ॥ ४ ॥
जल ओला गोला भयो, फिर घुलि पानी होय।
संत चरन गुरु ध्यान से, मन घुल जावै सोय ॥ ५ ॥

(१) नाम शिष्य का। (२) कुटनी। (३) नदी। (४) तलवार।

॥ मान ॥

नीच नीच सब तरि गये, संत चरन लौलीन ।
जातहिं के अभिमान से, डूबे बहुत कुलीन ॥ १ ॥
पोथी पढ़ने में लगे, चढ़ा ज्ञान का मान ।
सभा माहि मोटे भये, गुन के संग गुमान ॥ २ ॥

॥ दुष्ट ॥

मोती सज्जन को कहैं, संख असज्जन जान ।
ज्यों कनिष्ट[१] सीपी भई, ऐसे परख पिछान ॥ १ ॥
कुटिल बचन बोलै सदा, कधी न मानै हार ।
धार बह्यो बहु फिरत है, कर्म कुमति अनुसार ॥ २ ॥
कूड़ कुमति में गरक[२] है, फरक न मानै एक ।
जो कोइ अक्किल की कहै, उरभै उलटि परेत ॥ ३ ॥
अपकीरति जग में बड़ी, सब सिर डारै धूर ।
लाज कधी आवै नहीं, साची कहै न मूर[३] ॥ ४ ॥

॥ जीव की अज्ञानता ॥

यह अज्ञानी जीव की, क्योंकर करूँ बखान ।
अपनी बुद्धि बिकार की, करै न मन पहिचान ॥ १ ॥
यह जग जीव अनादि से, भटकत फिरै निकाम ।
काम बाम[४] मन में बसै, जुग जुग से भरमान ॥ २ ॥
वे दयाल जुग जुग कहैं, बहिरा सुनै न कान ।
ज्यों मतवाले मद पिये, छके नसे के माँह ॥ ३ ॥
हाय हाय कर पच मरे, कुटुँब काज अज्ञान ।
मान बड़ाई जक्त की, डूबे करि अभिमान ॥ ४ ॥
जुलमी की जाली पड़े, बड़े बड़े उमराव ।
दाँव कधी लागै नहीं, भागन कवन उपाव ॥ ५ ॥

---

(१) छोटी, दीन । (२) डूबा हुआ । (३) असल बात । (४) स्त्री ।

॥ कलियुग महिमा ॥

कलजुग सम नहिं आन जुग, संत धरैं औतार।
जीव सरन होइ संत के, भवजल उतरै पार॥ १॥
संत चरन बिस्वास से, कलजुग में निरधार।
सतजुग तो बंधन करै, कहि सब संत पुकार॥ २॥

॥ मिश्रित ॥

मन राखत बैराग में, घर में राखत राँड़।
तुलसी किड़वा नीम का, चाखन चाहत खाँड़॥ १॥
पढ़ पढ़ के सब जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय॥ २॥
लिख लिख के सब जग लिख्यो, पढ़ पढ़ के कहा कीन्ह।
बढ़ बढ़ के घट घट गये, तुलसी संत न चीन्ह॥ ३॥
तुलसी सम्पति के सखा, पड़त बिपति में चीन्ह।
सज्जन कंचन कसन को, बिपति कसौटी कीन्ह॥ ४॥
मन थिर करि जानैं नहीं, ब्रह्म कहैं गोहराय।
चौरासी के फंद में, फेरि पड़ैंगे आय॥ ५॥
एक अलख की पलक में, खलक रचा सब सोय।
जानु निरंजन काल को, जाल जगत सब कोय॥ ६॥
सुरत सैल असमान की, लख पावै कोइ संत।
तुलसी जग जानै नहीं, अति उतंग पिया पंथ॥ ७॥
सूप ज्ञान सज्जन गहै, फफर[1] देत निकार।
सार हिये अंदर धरै, पल पल करत बिचार॥ ८॥
जो तिरलोकी नाथ की, माया है बलवान।
सो सिद्धी सिध सब कहैं, आप रूप भगवान॥ ९॥
आँखी में जाले पड़े, काढ़ै कौन निकारि।
जब सथिया[2] नस्तर भरै, सुरत सलाई डारि॥१०॥

(१) भोकर। (२) जर्राह।

सुंदर सुरत सुधारि के, गुरु चरनन कर ध्यान।
भान उदय नितही लखै, संत बचन परमान ॥११॥
कलू काल की कहा कहूँ, नर नारी मतिहीन।
दीन भाव दरसै नहीं, मैली बुद्धि मलीन ॥१२॥
काल जबर जुलमी बड़ा, खड़ा रहै मैदान।
कर कमान खैंचे फिरै, मारै गोसा[1] तान ॥१३॥
करता ने काया रची, जुग जुग जग बिस्तार।
सार दियो बिसराय के, घर घर करत पुकार ॥१४॥
बड़े भक्त जग में बजैं, मँजैं[2] न मन का मैल।
खेल खिलाड़ी काल के, फँस गुमर[3] की गैल ॥१५॥
घड़ी घड़ी स्वासा घटै, आसा अंग बिलाय।
चाह चमारी चूहड़ी[4], घर घर सब को खाय ॥१६॥
जैसे को तैसा मिलै, वैसी कहै बनाय।
दोउन की बिधि यों मिलै, एक ठिकाने जाय ॥१७॥
जोंक रुधिर को पियत है, जो कोइ जल में जाय।
कँवल रबी[5] देखत खिलै, ऐसे अंग सुभाय ॥१८॥
नर देही दुर्लभ कहैं, मिलै न बारम्बार।
धार बड़ी भवसिंध की, क्योंकर उतरै पार ॥१९॥
स्वर्ग भोग पुन[6] के उदय, भोग करै भुगताय।
पुन्य भोग जब करि चुकै, फिर चौरासी जाय ॥२०॥
सूरज ब्रह्म अकास में, भास भूमि परकास।
किरन जीव यहि आतमा, सब घट कीन्हो बास ॥२१॥
माया भगवत की बड़ी, को पावै परभाव।
को लीला उनकी लखै, छल बल बहुर उपाय ॥२२॥

———

(१) तीर की गाँसी या भाला। (२) माँजैं। (३) गुमराही। (४) भंगिन। (५) सूरज। (६) पुन्य।

गुसाईं तुलसी दासजी की चुनी हुई साखियाँ जो छपने से रह गई थीं

(देखो पृष्ठ ७१-७५)

॥ नाम ॥

राम नाम आधी रती, पाप के कोटि पहार।
तुलसी जस रंजक अगिन, जारि करै तेहिं छार ॥ १ ॥
तुलसी रसना[1] राम कहु, पाप केतिक अनुमान।
जिमि पनिहारी जेवरी[2], खींचें कटत पषान[3] ॥ २ ॥
तुलसी जा के मुखन तें, धोखेहु निकरहि राम।
ता के पग की पैंतरी[4], मेरे तन को चाम ॥ ३ ॥
निरगुन तें इहि भाँति बड़, नाम प्रभाव अपार।
कहउँ नाम बड़ राम तें, निज विचार अनुसार ॥ ४ ॥
बारि[5] मथे बरु होइ घृत, सिकता[6] तें बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धांत अपेल[7] ॥ ५ ॥
मिटहिं पाप परिपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुजस परलोक सुख, सुमिरन नाम तुम्हार ॥ ६ ॥

॥ प्रेम ॥

चतुराई चूल्हे परै, जम गहि ज्ञानहिं खाय।
तुलसी प्रेम न राम पद, सब जर मूल नसाय ॥ १ ॥
तुलसी हम सों राम सों, भलो मिलो है सूत।
छाड़े बनै न सँग रहे, ज्यों घर माहिं कपूत ॥ २ ॥
रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखिगो अंग।
तुलसी चातक के हिये, नित नूतनहिं तरंग ॥ ३ ॥
गंगा जमुना सरसुती, सात सिंधु भरिपूर।
तुलसी चातक के मते, बिन स्वाँती सब धूर ॥ ४ ॥

(१) जीभ। (२) रस्सी। (३) पत्थर। (४) जूती। (५) पानी। (६) बालू।
(७) अमिट, निश्चय।

ब्याधा बधो पपीहरा, परो गंग जल जाय।
चोंच मूँदि पीवै नहीं, धिग पिये मो प्रन जाय ॥ ५ ॥
चातक सुतहिं सिखाव नित, आन नीर जनि लेहु।
ये हमरे कुल को धरम, एक स्वाँति सों नेहु ॥ ६ ॥
तुलसी केवल राम पद, लागै सरल सनेह।
तौ घर घट बन बाट महँ, कतहुँ रहै किन[1] देंह ॥ ७ ॥
जिमि मनि बिन ब्याकुल भुजँग, जल बिन ब्याकुल मीन।
तिमि देखे रघुनाथ बिन, तलफत हौं मैं दीन ॥ ८ ॥
निंदा अस्तुति उभय[2] सम, ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुन मंदिर सुख पुंज ॥ ९ ॥

॥ बिश्वास ॥

एक भरोसा एक बल, एक आस बिस्वास।
स्वाँति सलिल[3] गुरु चरन हैं, चात्रिक तुलसी दास ॥ १ ॥
भाग छोट अभिलाष बड़, करहुँ एक बिस्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन जन, खल करिहैं उपहास[4] ॥ २ ॥
कोटि बिघन संकट बिकट, कोटि सत्रु जो साथ।
तुलसी बल नहिं करि सकैं, जो सुदृष्ट रघुनाथ ॥ ३ ॥
लगन महूरत जोग बल, तुलसी गनत न काहि।
राम भये जेहिं दाहिने, सबै दाहिने ताहि ॥ ४ ॥
प्रभु प्रभुता जा कहँ दई, बोल सहित गहि बाँह।
तुलसी ते गाजत फिरहिं, राम छत्र की छाँह ॥ ५ ॥
ऊँची जाति पपीहरा, नीचो पियत न नीर।
कै याचै घनस्याम सों, कै दुख सहै सरीर ॥ ६ ॥
मसकहिं करहिं बिरंच प्रभु, अजहिं मसक तें हीन[5]।
अस बिचारि तजि संसय, रामहिं भजहि प्रबीन ॥ ७ ॥

---

(१) क्यों न। (२) दोनों। (३) पानी। (४) हँसी, मसखरी। (५) ईश्वर मच्छड़ को ब्रह्मा और ब्रह्मा को मच्छड़ से भी तुच्छ बना देता है।

॥ बिनय ॥

नाथ एक बर माँगहूँ, मोहिं कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल, कबहुँ घटै जनि नेहु ॥ १ ॥
बिनती करि अरु नाइ सिर, कहुँ कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह[1] नाथ जनि, कबहुँ तजै मति मोरि ॥ २ ॥
बार बार बर माँगहूँ, हर्षि देहु स्रीरंग।
पद सरोज[1] अनपायिनी[2], भक्ति सदा सतसंग ॥ ३ ॥
प्रनत-पाल[3] रघुबंस-मनि, करुना-सिंधु खरारि[4]।
गये सरन प्रभु राखिहैं, सब अपराध बिसारि ॥ ४ ॥
स्रवन सुजस सुनि आयहूँ, प्रभु भंजन भय भीर।
त्राहि त्राहि आरत-हरन[5], सरन-सुखद रघुबीर ॥ ५ ॥
एक मंद मैं मोह बस, कुटिल-हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहिं बिसारेऊ, दीन-बंधु भगवान ॥ ६ ॥
नहिं बिद्या नहिं बाँहु बल, नहिं खरचन को दाम।
मो सम पतित पतंग की, तुम पत राखो राम ॥ ७ ॥
सुनहु राम स्वामी सुभग, चलत चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पातकी, अंत काल गति तोरि ॥ ८ ॥
यद्यपि जन्म कुमातु तें, मैं सठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहैं, मोहिं रघुबीर भरोस ॥ ९ ॥
कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस, सुजस चारु[6] चहुँ ओर ॥१०॥
कामी नारि पियारि जिमि, लोभी के प्रिय दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहिं राम ॥११॥
भक्त कल्प-तरु प्रनत-हित[7], कृपासिन्धु सुख-धाम।
सोइ निज भक्ती मोहिं प्रभु, देहु दया करि राम ॥१२॥

---

(१) कमल। (२) अमर और अडिगम। (३) प्रण के पालने वाले। (४) खर राक्षस के मारने वाले। (५) कष्ट के हरने वाले। (६) सुंदर। (७) प्रण के पालने वाले।

अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निरबान।
जन्म जन्म रति राम पद, यहि बरदान न आन ॥१३॥
संत सरल चित जगत-हित, जानि स्वभाव सनेहु।
बाल बिनय सुनि करि कृपा, राम चरन रति देहु ॥१४॥
दीनानाथ दयाल प्रभु, तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को, सूझत और न ठौर ॥१५॥

॥ सतसंग ॥

तात स्वर्ग अपवर्ग,[1] सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग ॥

॥ उपदेश ॥

मात पिता गुरु स्वामि सिख[2], सिर धर करिय सुभाय।
लहेउ लाभ तिन्ह जन्म कर, नतरु[3] जन्म जग जाय ॥ १ ॥
तात तीन अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिज्ञान निधान मन, करहिं निमिष महँ छोभ[4] ॥ २ ॥
लोभ के इच्छा दंभ[5] बल, काम के केवल नारि।
क्रोध के पुरुष बचन बल, मुनिवर कहहिं बिचारि ॥ ३ ॥
तब लगि कुसल न जीव कहँ, सपनेहु मन बिसराम।
जब लगि भजन न राम कहँ, सोक धाम तजि काम ॥ ४ ॥
जदपि प्रथम दुख पावै, रोवै बाल अधीर।
ब्याधि नास हित जननी, गनै न सो सिसु पीर ॥ ५ ॥[6]
त्यों रघुपति निज दास कर, हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहिं, कस न भजहु भ्रम त्यागि ॥ ६ ॥
तुलसी बुरा न मानिये, जो गँवार कहि जाय।
जैसे घर कै नरदहा[7], बुरा भला बहि जाय ॥ ७ ॥

---

(१) अंतिम पद, मोक्ष-पद। (२) सीख, शिक्षा। (३) नहीं तो। (४) चलायमान, उद्बिग्न। (५) पाखंड। (६) बालक का रोग दूर करने को माता कठोर बन कर उसका फोड़ा चिरवाती है और उसके रोने की परवाह नहीं करती। (७) नावदान।

तुलसी बिलम न कीजिये, भजि लीजै रघुबीर।
तन तरकस से जात हैं, साँस सरीखे तीर ॥ ८ ॥
जो चेतन कहँ जड़ करै, जड़हि करै चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहिं, भजहिं जीव सो धन्य ॥ ९ ॥
हरि माया-कृत दोष गुन, बिनु हरि-भजन न जाहिं।
भजिय राम सब काम तजि, अस बिचारि मन माहिं ॥१०॥
तुलसी सब छल छाड़ि कै, कीजै राम सनेह।
अंतर[1] पति सों है कहा, जिन देखी सब देह ॥११॥
सब ही को परखे लखे, बहुत कहे का होय।
तुलसी तेरो राम तजि, हित जग और न कोय ॥१२॥
राम राम रटिबो भलो, तुलसी खता न खाय।
लरिकाईं तें पैरिबो, धोखे बूड़ि न जाय ॥१३॥
तुलसी मीठे बचन तें, सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन इक मंत्र है, तजि दे बचन कठोर ॥१४॥
सन्मुख ह्वै रघुनाथ के, देहु सकल जग पीठि।
तजे केंचुरी उरग[2] कहँ, होत अधिक अति दीठि ॥१५॥
काह भयो बन बन फिरे, जो बनि आयो नाहिं।
बनते बनते बनि गयो, तुलसी घर ही माहिं ॥१६॥
बातहिं बातहिं बनि परै, बातहिं बात नसाय।
बातहिं आदिहिं दीप भव, बातहिं अंत बुताय ॥१७॥
बात बिना अतिसय बिकल, बातहिं तें हरखात।
बनत बात बर बात तें, करत बात बर घात ॥१८॥
तुलसी जाने बात बिन, बिगरत हरइक बात।
अनजाने दुख बात के, जानि परत कुसलात ॥१९॥

(१) परदा। (२) साँप।

प्रेम बैर अरु पुन्य अघ, जस अपजस जय हान।
बात बीज इन सबन को, तुलसी कहहिं सुजान ॥२०॥
तब लगि जोगी जगत-गुरु, जब लगि रहै निरास।
जब आसा मन में जगी, जगत गुरू वह दास ॥२१॥
तुलसी सन्तन[1] तें सुनै, सन्तत इहै बिचार।
तन धन चंचल अबल जग, जुग जुग परउपकार ॥२२॥
मित्र के अवगुन मित्र को, पर महँ भाषत नाहिं।
कूप छाँह जिमि आपनी, रखत आपहि माहिं ॥२३॥
तुलसी साथी बिपति के, बिद्या बिनय बिबेक।
साहस सुकृत रु सत्त ब्रत, राम भरोसो एक ॥२४॥
तुलसी असमय के सखा, साहस धरम बिचार।
सुकृत सील सुभाव ऋजु[2], राम सरन आधार ॥२५॥
बिद्या बिनय बिबेक रति, रीति जासु उर होय।
राम परायन[3] सो सदा, आपद ताहि न कोय ॥२६॥
तुलसी झगरा बढ़न के बीच परहु जनि धाय।
लड़े लोह पाहन दोऊ, बीच रुई जरि जाय ॥२७॥
तुलसी निज कीरति चहहिं, पर कीरति कहँ खोय।
तिन के मुँह मसि लागि है, मिटहि न मरिहैं धोय ॥२८॥
नीच चंग[4] सम जानिबो, सुनि लखि तुलसीदास।
ढील देत महिं गिरि परत, खैंचत चढ़त अकास ॥२९॥
तुलसी देवल राम के, लागे लाख करोर।
काक अभागे हगि भरे, महिमा भयेउ न थोर ॥३०॥
जो मधु दीन्हें तें मरै, माहुर देउ न ताउ।
जग जिति हारे परसुधर[5], हारि जिते रघुराउ ॥३१॥

---

(१) सदा। (२) सच्चा, खरा। (३) उपासक। (४) पतंग, गुड्डी। (५) परसराम।

क्रोध न रसना खोलिये, बरु खोलब तरवारि।
सुनत मधुर परिनाम हित, बोलब बचन बिचारि ॥३२॥
दंभ सहित कलि-धरम सब, छल समेत व्यवहार।
स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार ॥३३॥
का भाषा का संसकृत, बिभव चाहिये साच।
काम तो आवै कामरी, का लै करिय कमाच[1] ॥३४॥
तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृति साधु सुजान।
जो बिचारि व्यवहरत जग, खरच लाभ अनुमान ॥३५॥
बड़े रतहिं लघु के गुनहिं, तुलसी लघुहिं न हेत।
गुंजा[2] तें मुकता अरुन[3], गुंजा होत न स्वेत ॥३६॥
ज्यों बरदा बनिजार के, फिरत घनेरे देस।
खाँड़ भरे भुस खात है, बिन गुरु के उपदेस ॥३७॥

॥ दुर्जन ॥

दुरजन दरपन सम सदा, करि देखो हिय दौर।
सनमुख की गति और है, बिमुख भये कछु और ॥

॥ मान ॥

स्वामी होनो सहज है, दुरलभ होनो दास।
गाडर[4] लाये ऊन को, लागी चरै कपास ॥

॥ मिश्रित ॥

भले भलाई पै लहहिं, लहहिं निचाई नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल[5] सराहिय मीच[6] ॥ १ ॥
नाम पाहरू[7] दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट[8]।
लोचन निज पद जंत्रिका[9], प्रान जाहिं केहि बाट ॥ २ ॥
ब्यापि रहेउ संसार महं, माया कपट प्रचंड।
सेना-पति कामादि भट, दंभ कपट पाखंड ॥ ३ ॥

(१) दुशाला। (२) घुंघची। (३) लाल। (४) भेड़। (५) बिष। (६) मृत्यु।
(७) पहरेदार। (८) किवाड़। (९) सिकरी, जंजीर।

संत कहहिं अस नीति प्रभु, स्रुति पुरान जो गाव।
होइ न बिमल बिबेक उर, गुरु सन किये दुराव ॥ ४ ॥
राका ससि षोड़स उगैं, तारा गन समुदाय।
सबै गिरिन दौं लाइये, बिनु रबि राति न जाय ॥ ५ ॥[1]
सुपने होय भिखारि नृप, रंक नाक-पति होय।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोय ॥ ६ ॥[2]
जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम सन सहज सनेह।
बसहु निरन्तर तासु उर, सो राउर निज गेह ॥ ७ ॥
जाहि जीव पर तव कृपा, संतत रहत हुलास।
तिन की महिमा को कहै, जे अनन्य[3] प्रिय दास ॥ ८ ॥
खेलत बालक ब्याल सँग, पावक मेलत हाथ।
तुलसी सिसु पितु मातु इव, राखत सिय रघुनाथ ॥ ९ ॥
घर कीन्हें घर होत है, घर छाड़े घर जाय।
तुलसी घर बन बीचही, रहो प्रेमपुर छाय ॥१०॥
असन बसन सुत नारि सुख, पापिहु के घर होइ।
संत समागम राम धन, तुलसी दुरलभ दोइ ॥११॥
काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि मन में खान।
का पंडित का मूरखा, दोनों एक समान ॥१२॥
माँगि मधुकरी खात जे, सोवत पाँव पसारि।
पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी, तुलसी बाढ़ी रारि ॥१३॥
मिथ्या माहुर सजन कहँ, खलहिं गरल सम साच।
तुलसी परसि परात जिमि, पारद पावक आँच[4] ॥१४॥

---

(१) चाहे पूरनमासी का चाँद सोलहो कला से उगै और समस्त तारे इकट्ठे हो जाँय और सब पहाड़ों पर आग बाली जाय तौ भी बिना सूरज के उदय हुए रात का अन्धकार नहीं जा सकता। (२) जैसे कोई राजा सपने में भिखमंगा हो जाय और भिखारी राजा इन्द्र बन जाय ऐसे ही यह सब संसार का प्रपंच झूठा है। (३) इकलौते, असदृश। (४) जैसे आग के छूते ही पारा उड़ जाता है।

चरनदासजी की छूटी हुई साखियाँ

(देखो पृष्ठ १४२-१५१)

सतगुरु के ढिंग जाय के, सनमुख खावै चोट।
चकमक लगि पथरी झड़ै, सकल जलावै खोट ॥ १ ॥

बिन दरसन कल ना पड़ै, मनुवाँ धरत न धीर।
चरनदास गुरु चरन बिनु, कौन मिटावै पीर ॥ २ ॥

ज्यों सेमर का सूवना, ज्यों लोभी का धर्म।
अन्न बिना भुस कूटना, नाम बिना यों कर्म ॥ ३ ॥

हाथी घोड़े धन घना, चन्द्रमुखी बहु नार।
नाम बिना जम-लोक में, पावत दुक्ख अपार ॥ ४ ॥

अज्ञाकारी पीव की, रहै पिया के संग।
तन मन से सेवा करै, और न दूजा रंग ॥ ५ ॥

पति की ओर निहारिये, औरन से क्या काम।
सभी देवता छोड़ करि, जपिये गुरु का नाम ॥ ६ ॥

इंद्रिन के बस मन रहै, मन के बस रहै बुद्धि।
कहो ध्यान कैसे लगै, ऐसा जहाँ बिरुद्ध ॥ ७ ॥

——: ० :——

फुटकर साखियाँ और भक्तों की

कर छटकारे जातु हौ, दुर्बल जानि कै मोहिं।
हिरदे से जब जाइहौ, तब बलो बखानौं तोहिं ॥ १ ॥

प्रीतम हम तुम एक हैं, कहन सुनन को दोय।
मन से मन को तौलिये, दो मन कभी न होय ॥ २ ॥

प्रीतम प्रीति लगाइ कै, दूर देस मत जाव।
बसो हमारी नागरी, हम माँगैं तुम खाव ॥ ३ ॥

तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तू ॥ ४ ॥
प्रेम पावरी पहिर करि, धीरज काजर देहि।
सील सिंदूर भराय करि, यों पिय का सुख लेहि ॥ ५ ॥
जो जन जाकी सरन हैं, सरन गहे की लाज।
मीन धार सन्मुख चलै, बहे जात गजराज ॥ ६ ॥
जब यह ध्याता ध्यान में, ध्येय रूप है जाय।
पूरा जानौ ध्यान तब, या में संसय नाहिं ॥ ७ ॥
ध्येय रूप होना यही, भिन्न ज्ञान नहिं होय।
छीर नीर जब मिलत हैं, सूझत नाहीं दोय ॥ ८ ॥
गहिरी नदी कुठौर है, पर्यौं भँवर बिच आय।
दीनबंधु इक तोहि बिनु, अब को करै सहाय ॥ ९ ॥
हम बासी वा देस के, जहँ जाति बरन कुल ना हैं।
सबद मिलावा होत है, देह मिलावा नाहिं ॥१०॥
आप छके नैना छके, और छके सब गात।
जा तन चितवत नैन भरि, रोम रोम छकि जात ॥११॥

॥ इति ॥